ग्रेट ब्रिटेन का आर्थिक विकास

लेखक

एन० एल० कुलश्रेष्ठ, एम० ए०, एम० कॉम०, साहित्यरत्न,
प्रोफेसर एव अध्यक्ष, अर्थशास्त्र तथा वाणिज्य विभाग,
डिग्री कालेज, चिड़ावा (राजस्थान),
(भूतपूर्व असि० प्रोफेसर ऑव कॉमर्स, सेठ जी० बी० पोदार कालेज, नवलगढ़;
लेखक—'भारतवर्ष का आर्थिक भूगोल', 'ससार का आर्थिक भूगोल'
तथा 'भारत मे सहकारी खेती')

रामप्रसाद एण्ड संस : आगरा

प्राक्कथन

ग्रेट ब्रिटेन के आर्थिक विकास का अध्ययन भारतवर्ष में हमारे लिए अनेक दृष्टियों से रुचि का विषय है। सन् १९४७ तक इस देश पर ब्रिटेन का आधिपत्य रहा और उसकी नीतियाँ अर्थशास्त्र के क्षेत्र मे उतनी ही महत्वपूर्ण समझी जानी चाहिएँ जितनी इतिहास और राजनीति मे। स्वतंत्रता प्राप्त करने के उपरान्त राष्ट्रकुल (कॉमनवैल्थ) का सदस्य होने के नाते भारत का ब्रिटेन के साथ सम्बन्ध सुदृढ रहा है और हमने आर्थिक सहयोग प्राप्त किया है। राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के तुरन्त पश्चात ही भारतवर्ष को अपनी स्वतन्त्र आर्थिक नीति का विकास करने की आवश्यकता हुई। निश्चय ही इस दिशा मे भारत ने ब्रिटेन से कुछ सीखा है। विभिन्न परिस्थितियों में ब्रिटेन ने जो नीति अपनाई और उसमें परिवर्तन किए उसकी सफलताओ और असफलताओ के प्रकाश मे हम भारतीय आर्थिक नीति पर विचार कर सकते हैं। ब्रिटेन और भारत मे समानता का आधार केवल यह नही है कि दोनों देशो मे जनतंत्रात्मक प्रणाली है बल्कि उद्योग, व्यापार तथा अनेक क्षेत्रो मे हमने ब्रिटिश पद्धतियो का अनुकरण किया है—यह हमारे ऊपर है कि उपयुक्तता अथवा अनुपयुक्तता की दृष्टि से हम आगे उन्हे अपनाए रहें या त्याग दें।

प्रस्तुत पुस्तक भारतीय छात्रों की आवश्यकताओ को ध्यान मे रखकर लिखी गई है। प्रयत्न यह किया गया है कि इसमे उन्हें ब्रिटिश आर्थिक विकास की पूरी रूपरेखा संक्षेप में मिल जाए परन्तु कुछ अधिक महत्व की बातो पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। भाषा जान-बूझकर सरल रखी गई है ताकि सामान्य पाठक भी लाभ उठा सकें। इस पुस्तक के हरेक अध्याय में लेखक का यह प्रयत्न रहा है कि ऐसी बातें पाठक का ध्यान अवश्य आकर्षित करें जिन्हें जानना सैद्धान्तिक दृष्टि से ही नहीं अपितु व्यवहार मे इस देश मे उपादेय हो सकता है। शीर्षको तथा उप-शीर्षको मे विषय-सामग्री का विभाजन करने मे इस बात का विशेष ध्यान रखा है।

छात्रों (और संभवतः प्राध्यापकों का भी) काम सरल करने की नीयत लेखक की अवश्य रही है परन्तु प्राध्यापकों का महत्व कम करने का उद्देश्य कदापि नहीं है। इस पुस्तक मे बहुत कुछ ऐसा भी है जिसे मध्यम श्रेणी के छात्र अपने प्राध्यापक की सहायता के बिना समझने में शायद कठिनाई अनुभव करें।

आर्थिक विकास का अध्ययन मूल रूप मे ऐतिहासिक तथ्यो पर आधारित होना आवश्यकीय है। इसलिए इस प्रयत्न मे मौलिकता का दावा नहीं किया जा सकता। लेखक ने विद्वान् आग्ल लेखकों के अधिकारपूर्ण लिखे अधिक से अधिक ग्रन्थो, तथा सरकारी प्रकाशनो का लाभ उठाने का प्रयत्न किया है यथासम्भव उनका यथास्थान उल्लेख भी किया गया है। निश्चय ही, विषय-वस्तु के व्यक्तीकरण मे लेखक के निजी ढंग के साथ उसकी कमजोरियाँ आना स्वाभाविक है। उन सभी लेखकों और प्रकाशकों के प्रति लेखक हृदय से आभारी है जिनके ग्रन्थों से सहायता ली गई है। विषय के विस्तृत अध्ययन के लिए छात्रो को चाहिए कि वे अपने अध्यापकों के निर्देशन मे उन ग्रन्थों का अवलोकन करें।

अनुमान है कि यह पुस्तक छात्रो को उपयोगी होगी। पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाने के लिए सुझावों के हेतु लेखक का सबको आमन्त्रण है।

२३-३-१९६१ —एन० एल० कुलश्रेष्ठ

विषय-सूची

अध्याय — पृष्ठ

ग्रेट ब्रिटेन का आर्थिक विकास

ग्रेट ब्रिटेन के प्रमुख उद्योग
लोहा एवं इस्पात
एल्यूमिनियम
भारी मशीनरी
हल्की मशीनरी
वायुयान निर्माण
मोटर के कारखाने
इंजिन निर्माण
जलयान निर्माण
सूती कपड़े की मिलें
ऊनी कपड़े की मिलें
मिट्टी व चीनी के बर्तन
शीशे के बर्तन
कोयला क्षेत्र
लोहा क्षेत्र
आर्कनी द्वीप समूह
अटलांटिक महासागर
स्कॉटलैण्ड
ग्लासगो
एडिनबरा
उ. आयरलैण्ड
बेल्फास्ट
न्यूकासिल
आयरिश सागर
लिवरपूल
हल
आयरलैण्ड
सेंट जार्ज चैनल
वेल्स
इंगलैण्ड
ब्रिस्टल चैनल
लन्दन
इंगलिश चैनल

पहला अध्याय

औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व ग्रेट ब्रिटेन की आर्थिक दशाओं का एक विहंगावलोकन

[ब्रिटेन की प्राचीन अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ, ब्रिटेन का प्राचीन ग्राम-संगठन, प्राचीन औद्योगिक प्रणालियां, गिल्ड प्रणाली का विकास, गिल्ड का संगठन, गिल्ड का प्रशासन, क्राफ्ट गिल्ड और आधुनिक व्यापारिक संगठन में अन्तर, गिल्ड प्रणाली के गुण-दोष, गिल्ड प्रथा का अन्त, घरेलू प्रणाली, घरेलू प्रणाली के लाभ, घरेलू प्रणाली के दोष, वाणिज्यवाद, प्रश्न ।]

ग्रेट ब्रिटेन के आर्थिक विकास का इतिहास वृहद् और दीर्घकालीन है । ब्रिटेन की उन्नति अचानक एकदम अथवा अल्पकाल मे ही नही हो गई थी । समृद्धि के शिखर पर पहुँचने मे उसे कम समय नहीं लगा । ब्रिटेन को आर्थिक उन्नति की दिशा मे जहाँ अनेक सुविधाएँ प्राप्त थीं वहाँ कठिनाइयाँ भी थीं । उन्नति के लिए उसे सतत् संघर्ष करना पड़ा और, जैसा कि उसके आर्थिक विकास के विभिन्न पहलुओं के अध्ययन से विदित होगा, ब्रिटेन को उन्नति की ऊँची सीढ़ियो पर चढ चुकने के उपरान्त कालान्तर मे नीचे भी उतरना पड़ा परन्तु उसने अपनी समृद्धि को पुनः प्राप्त करने के प्रयास का परित्याग नहीं किया । वस्तुतः जिन विभिन्न परिस्थितियो मे होकर ब्रिटेन आगे बढा तथा आगे चलकर जिनका भारतवर्ष के ऊपर भी प्रभाव पड़ा वही हमारे अध्ययन मे अधिक रुचि के विषय हैं।

अनेक देशो के . तमान ब्रिटेन भी प्रारंभ मे एक पिछड़ा देश था । उसकी जनसंख्या छोटे-छोटे गाँवों मे बँटी हुई थी और जीविका का प्रमुख साधन कृषि था । कृषि के पूर्व वहाँ जंगली शिकारी जातियों का आधिक्य था । मछली पकड़ना, आखेट करना और पशु-पालन कृषि के साथ-साथ चलता रहा ।

ब्रिटेन की अर्थ व्यवस्था के विकास मे प्रारम्भिक काल को हम स्वावलम्बन की अवस्था कह सकते हैं । उस समय ब्रिटेन में व्यापार नहीं होता था । देशी व्यापार का विकास भी बाद मे ही हुआ था । अन्य देशों के साथ ब्रिटेन के

व्यापारिक संबंध और भी बाद में धीरे-धीरे हुए। यह सत्य है कि औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व ही ब्रिटेन संसार का प्रमुख व्यापारी राष्ट्र बन गया था परन्तु पूँजीवादी पद्धति के विकास एवं औद्योगिक उन्नति के पश्चात् ही उसने यातायात, वाणिज्य और व्यापार में उन्नति की। वस्तुतः औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् कृषि, यातायात, वाणिज्य व्यापार सभी दिशाओं मे क्रान्ति हुई। प्रारम्भ में ब्रिटेन अपने निवासियों के साहसी स्वभाव, सामाजिक गुणों तथा राजनीतिक प्रभुत्व के कारण आगे बढा और आगे चलकर पूँजी के प्रयोग तथा नई तकनीकी जानकारी इत्यादि उसकी उन्नति मे अधिक सहायक सिद्ध हुए।

यहाँ यह कहना असंगत न होगा कि सभी सभ्य देशों की प्राचीन आर्थिक प्रणालियों मे एक समानता पाई जाती है। समय और विस्तार मे पाये जाने वाले भेद ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं तथापि उनमे पाई जाने वाली समानता का महत्त्व कम नही है।

ब्रिटेन की प्राचीन अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ

अन्य अनेक देशों की भाँति ग्रेट ब्रिटेन की प्राचीन अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ अधोलिखित थी—

१. कृषि मुख्य पेशा था। अन्य पेशों का विकास अपेक्षाकृत बहुत कम हुआ था।

२. अधिकतर जनसख्या गाँवों में रहती थी। प्रारम्भ मे विकसित कस्बे गाँवों जैसे ही थे।

३. यातायात और आवागमन के साधनों का विकास नही हुआ था। अतएव व्यापार और विनिमय अविकसित थे। ग्राम स्वावलम्बी थे। स्थानीय कृषि अच्छी होती तो उस गाँव मे खुशहाली दिखाई देने लगती तथा फसलें अच्छी न होने पर दुर्भिक्ष की दशाएँ उत्पन्न हो जाती।

४. किसान निजी लाभ के लिए अपने ही श्रम और साहस से खेती करता था। उसके परिवार के सदस्य कृषि कार्य मे हाथ बँटाते थे। पूँजी का प्रयोग बहुत सीमित था, खेत प्रायः छोटे, बिखरे हुए और खुले थे।

५. पेशे चुनने में स्वतन्त्रता नहीं थी, स्पर्द्धा का अभाव था। लगान, मजदूरियाँ और कीमतें परम्परा और प्रथाओं से सम्बद्ध थीं। समाज मे व्यक्ति का स्थान जन्म और जाति से निर्धारित होता था। उस समय समाज विच्छिन्न तो नही था परन्तु शोषण, विषमता तथा दास-प्रथा का बोलबाला था।

६. मुद्रा का प्रचलन नहीं था। अतः व्यापार जो कुछ होता था वह वस्तुओं

की अदला-बदली (barter) के रूप मे था। आवश्यकताएँ सीमित थी। आवश्यकता की अधिकांश वस्तुओ का व्यक्ति स्वयं उत्पादन करते थे। अतः जीवन-स्तर निम्न था। लगान प्रायः अनाज और श्रम द्वारा चुकाया जाता था। मजदूरियाँ वस्तुओं के रूप में दी जाती थीं।

७. उद्योग ग्रामोद्योगो के रूप मे विकसित हुआ था। विशिष्टीकरण का अभाव था। विनिमय क्षेत्र ग्राम तक ही सीमित होने के कारण श्रम-विभाजन सीमित और अपूर्ण था।

८. उद्योग छोटे छोटे कारीगरो के हाथो मे था। स्थानीय मांग के लिए ही उत्पादन किया जाता था। अतः उद्योगो मे विकास की गुंजाइश उस समय नही थी। कारीगर अपनी बहुत थोड़ी पूँजी से काम करते थे। संगठन-व्यवस्था तथा साहस का विकास नही हुआ था।

९. अधिकोषण, साख तथा वित्त-व्यवस्था का भी विकास नही हुआ था। जब गाँव मे लेन-देन का विकास हुआ तो सूदखोर साहूकार ऋणी किसान का शोषण करने लगा।

१०. सामाजिक सुरक्षा का कोई साधन नही था। देहाती मजदूर और किसान सुरक्षा के लिए ग्राम के अधिपति पर ही निर्भर थे। राजकीय हस्तक्षेप तथा सहायता का अभाव था।

मध्ययुगीन ग्राम सगठन को सामान्यतया मेनोरियल प्रणाली (Manorial System) कहा जाता है।

ब्रिटेन का प्राचीन ग्राम-संगठन (Manorial System)

ग्राम संगठन की जो प्रणाली (manorial system) मध्य-युग में इंगलैण्ड में प्रचलित थी वह वस्तुतः इंगलैण्ड तक ही सीमित नही थी वरन् पश्चिमी और मध्य योरुप मे पाई जाती थी। यह प्रणाली इगलैण्ड मे ग्यारहवी शताब्दी से भी पूर्व स्थापित हो चुकी थी।

मेनर (manor) उस भू-सम्पत्ति को कहा जाता था जिसकी इकाई प्रायः एक ग्राम होता था। कालान्तर मे इस भू-सम्पत्ति मे एक से अधिक गाँव भी सम्मिलित होने लगे और कुछ दशाओ मे इसमे विभिन्न ग्रामो के भाग शामिल होते थे। कृषि का सगठन सामंतवादी ढंग का था।

ग्राम-सगठन (manor) अथवा भू-सम्पत्ति के स्वामी को ग्राम का अधिपति (manorial lord) कहा जाता था। समस्त ग्रामवासी भूमि पर निर्भर

थे। ग्रामवासियो मे दो प्रकार के व्यक्ति थे—एक तो स्वतन्त्र, और दूसरे कृषि करने वाले दास। यद्यपि गांव के रूप मे पाई जाने वाली भौगोलिक और आर्थिक इकाई मेनर का पूर्ण स्वामी तो सम्राट् (king) ही था, परन्तु उसका प्रशासन ग्रामपति (manorial lord) के द्वारा ही होता था। ग्रामपति गांव का नियन्त्रण कारिन्दा (steward) और अमीन (bailiff) के द्वारा रखता था। गांव मे ग्रामपति की एक अदालत (court baron) होती थी जिसका अध्यक्ष कारिन्दा (steward) होता था। इस अदालत के मुख्य कार्य ये थे—(क) भू-सम्पत्ति का लेखा रखना, (ख) ग्रामपति और कृषको के बीच सम्बन्ध का निर्वाह जो प्रायः परम्परा के अनुकूल रखा जाता था, तथा (ग) विभिन्न अवसरों पर कर (taxes) तथा जुर्माने (fines) वसूल करना। सभी व्यक्ति परम्परागत प्रथाओ का पालन करने के लिए बाध्य थे। ग्रामवासियो के झगडे भी अदालत द्वारा तै किये जाते थे।

ग्राम के स्वतन्त्र वर्ग के निवासियो मे ग्रामपति, उसके कर्मचारी, सहकारी, पादरी, इत्यादि सम्मिलित थे। कृषक-दासो मे सम्मिलित व्यक्तियो के दो वर्ग थे—एक आसामी (villein) कहलाते थे, दूसरे कुटीरवासी (cottar) कहलाते थे। इन दोनो में कोई वैज्ञानिक अन्तर नही था परन्तु आसामियो की आर्थिक स्थिति कुटीरवासियो से अच्छी थी। एक पूर्ण आसामी के पास खुले खेतो की प्रायः तीस एकड भूमि होती थी जब कि कुटीरवासी के पास पाँच एकड या उससे भी कम होती। दोनो प्रकार के किसानों (villeins and cottars) को ग्रामपति की भूमि पर कार्य करना पड़ता था। उनको सप्ताह मे प्रायः तीन दिन ग्रामपति की निजी भूमि पर काम तो करना ही पड़ता था, फसल कटते समय अथवा विशेष आवश्यकता होने पर बेगार (boon work) के रूप मे अतिरिक्त कार्य भी करना पडता था। कृषक-दास स्वयं कार्य करने के बजाय अपने सम्बन्धियो को भेज सकते थे। यो तो कुटीरवासियो (cottars) को भी आसामियो की भाँति ही ग्रामपति के लिए कार्य करने को कहा जा सकता था परन्तु उनसे प्रायः बहुत कम काम लिया जाता था। अतएव वे मजदूरी करके भी आय कमा सकते थे।

कृषक-दासो से श्रम लेने के अतिरिक्त ग्रामपति उनसे कर और जुर्माना भी वसूल करता था। उन्हे गाँव छोडने की स्वतन्त्रता नही थी। यदि वे गाँव छोड कर भागते तो उन्हे पकडवा कर दण्ड दिया जाता था। ग्रामपति की आज्ञा लेकर वे गांव को छोडकर जा सकते थे और अपनी जमीन बेच सकते थे परन्तु ऐसा

करने के लिए उन्हें एक कर (chevage) देना पड़ता था। बिना ग्रामपति की आज्ञा आसामी अपने पशु भी नहीं बेच सकता था, सन्तान को पढ़ा नहीं सकता था। अपनी पुत्री के विवाह के अवसर पर आसामी (villein) को एक विशेष कर (merchet) देना पड़ता था। यदि वह मरता तो उत्तराधिकारी कर के रूप में उसका सर्वश्रेष्ठ पशु या अन्य कुछ ले लिया जाता था जिसे मृत्यु-कर (heriot) कहा जा सकता है। आसामी के लिए यह भी आवश्यक था कि वह त्यौहारों पर ग्रामपति को अण्डे इत्यादी भेंट करे। ग्रामपति उनके ऊपर कितना ही कर लगा सकते थे। आसामियों को अपने स्वामी के विरुद्ध सम्राट् के न्यायालय में भी अभियोग चलाने का अधिकार नहीं था। व्यवहार में दासों को भी परम्परा द्वारा ग्रामपति का संरक्षण प्राप्त था।

गांव की भूमि अधिकार की दृष्टि से तीन प्रकार की थी। ग्रामपति की निजी भूमि को डेमीन (demesne) कहा जाता था। गांव की एक तिहाई के लगभग भूमि ग्रामपति की निजी भूमि होती थी, शेष भूमि कृषक-दासों तथा स्वतन्त्र व्यक्तियों की समझी जाती थी।

ग्रामपति प्रसन्न होकर किसी भी दास को स्वतन्त्र घोषित कर सकता था। पादरी भी स्वतन्त्रता प्रदान कर सकता था। सिद्धान्त में द्रव्य देकर भी दास ग्रामपति से भू-स्वामित्व प्राप्त करके स्वतन्त्र हो सकता था। स्वतन्त्र व्यक्ति ग्रामपति को कर अथवा जुर्माना देने के लिए बाध्य नहीं थे। वे गांव छोड़ने के लिए स्वतन्त्र थे। वे ग्रामपति के विरुद्ध राजा या सम्राट की अदालत में मुकद्दमा भी चला सकते थे। व्यवहार में ये स्वतंत्र व्यक्ति भी ग्रामपति को यदा-कदा उपहार देते थे और ग्रामपति से पट्टे पर भूमि भी लेते थे।

गांव की भूमि प्रायः तीन प्रकार की पाई जाती थी—खेतिहर भूमि, परती जमीन और चरागाह। चरागाह जमीन का उपयोग गांव के सभी निवासी कर सकते थे। चरागाहों तथा परती जमीनों से ईंधन (जलाने की लकड़ी) भी प्राप्त करने का अधिकार मिला हुआ था। परती जमीनों में तथा फसल कटने पर कृषि-भूमि में भी पशु चराये जाते थे।

कृषि बहुत पिछड़ी अवस्था में थी। पहले दो-खेत प्रणाली (two-field-system) के अनुसार खेती होती थी, जिसमें जोत का आधा भाग परती छोड़ दिया जाता था। इसका उद्देश्य भूमि की उर्वरा शक्ति बनाये रखना था परन्तु इसमें काफ़ी भूमि व्यर्थ पड़ी रहती थी। बाद में तीन-खेत प्रणाली (three field system) का प्रचलन हुआ। इस प्रणाली में प्रतिवर्ष दो खेतों पर कृषि

होती थी और तीसरे को परती रखा जाता था। इस प्रकार तीन वर्षों के समय मे प्रत्येक खेत को विश्राम मिल जाता था। कौन सी फसल बोई जायेगी, कब बोई और कब काटी जायेगी, ये सब बातें परम्परा से निश्चित थी। रिवाज की प्रबलता इतनी थी कि लोग उसके विपरीत जाने का विचार भी नही करते थे।

हल चलाना बडा कठिन परन्तु महत्त्वपूर्ण काम था। वडा हल आठ घोडो या बैलो द्वारा तथा छोटा हल चार द्वारा खीचा जाता था। कृषि-भूमि की अपेक्षा परती भूमि पर हल अधिक जोता जाता था और उसकी मिट्टी साल मे दो या तीन बार उलटी जाती थी। साधारण किसान के पास पशु अधिक नही होते थे अतः उसे जुताई के लिए दूसरे किसानो का सहयोग लेना पडता था। पशु बहुत निम्न कोटी के पाये जाते थे। खेतो की प्रति-एकड उपज बहुत कम थी। खेती हाथ से होती थी, आधुनिक यंत्रो का प्रयोग नही हुआ था। शलजम, आलू, जिमीकन्द इत्यादि फसलो की खेती नही होती थी। सिंचाई का उपयुक्त प्रबन्ध नही था।

आवागमन के साधनो के अभाव के कारण कृषि की उपज को बाहर भेजना और उसका विपणन सम्भव नही था। बाहर से केवल कुछ ही वस्तुएँ (लोहे की बनी वस्तुएँ, मसाले इत्यादि) आती थी। समय समय पर मेले-हाट इत्यादि होते थे। मजदूरी और लगान प्रायः वस्तुओ द्वारा चुकाये जाते थे। प्रसंविदा और स्पर्द्धा के बजाय रिवाज और परम्परा का ही प्रभुत्व था।

गाँव मे ग्रामपति का मकान लकडी-पत्थर का बना होता था, गाँव मे गिर्जाघर, चक्की इत्यादि होते थे और जनसाधारण के घास-फूस के झोपडे पाये जाते थे।

इंगलैण्ड मे पाई जाने वाली और अन्य अनेक देशो मे फैली प्राचीन ग्राम संगठन प्रणाली (manorial system) के दोष बताना सरल है। मुख्य दोष ये बताये जाते हैं—

(१) दास प्रथा का पाया जाना और स्वतन्त्रता का अभाव। (२) रिवाज का इतना अधिक नियन्त्रण था कि व्यक्ति बुद्धिमानी और साहस का प्रयोग नही कर सकता था। (३) खुले खेतो की प्रणाली के भी अनेक दोष थे। सीमा सम्बन्धी झगडे बहुधा होते थे। खेतो के बीच बहुत सी भूमि व्यर्थ हो जाती थी। आलसी व्यक्तियो के खेतो मे घास-फूस उगते जो दूसरे व्यक्तियो के खेतो मे भी फैल जाते थे, इत्यादि। (४) श्रम-विभाजन का अभाव था। एक गाँव के व्यक्तियो का दूसरे गाँव के व्यक्तियों से सम्पर्क नही हो पाता था। (५) अदला बदली की प्रथा थी। मुद्रा के प्रचलन के अभाव मे बचतो और पूंजी का निर्माण

सम्भव नही था। कुल मिलाकर उस समय इंगलैण्ड में पिछड़ी हुई अर्थ व्यवस्था थी जिसमे प्रगतिशीलता के लिए गुंजायश कम थी। यह मानना पड़ेगा कि यह प्रणाली इंगलैण्ड मे चार शताब्दियों से भी अधिक रही और उसमे केवल दोष ही थे, यह बात नही है। वस्तुतः उस समय की परिस्थितियाँ ही ऐसी थी कि सुधार कठिन था, परन्तु रिवाज इतना प्रबल रहा कि यह प्रणाली अपनी उपयोगिता के काल से भी अधिक जीवित रही और उन्नति मे बाधक बन गई।

ग्राम संगठन की इस **प्राचीन प्रणाली (manorial system)** का पतन पन्द्रहवी शताब्दी मे स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगा। उसके पतन के कई कारण थे, जिनमे मुख्य ये हैं—

(क) मुद्रा का प्रचलन,

(ख) कस्बो और नगरो का विकास,

(ग) भूमि की घेरेबन्दी (enclosure movement),

(घ) महामारियों और काली-मृत्यु (black-death), तथा

(ङ) ग्रामीण न्यायालयो की समाप्ति।

१५वी शताब्दी मे उपर्युक्त कारणों पर आधारित इतने अधिक परिवर्तन हुए कि रूढि और परम्परा पर आधारित मेनोरियल प्रणाली अन्ततोगत्वा टूट गई।

मुद्रा के प्रचलन का मुख्य प्रभाव यह हुआ कि दास प्रथा का अन्त हो गया। किसान अब ग्रामपति को लगान मुद्रा द्वारा चुकाने लगे और ग्रामपति उनसे बेगार लेने के बजाय नकद मजदूरियाँ देने मे लाभ समझने लगा। ग्रामपति द्वारा आरोपित मनमाने करों तथा दण्डों और भारो के विरुद्ध किसान-वर्ग ने एक बहुत बडा आन्दोलन छेड़ा जिसके आगे रूढियो को झुकना पडा। किसानो का यह आन्दोलन (Peasant Revolt) सन् १३८१ मे हुआ था। उनकी मुख्य माँग यह थी कि उन्हे साप्ताहिक और विशेष कार्य (weekly and boon work) मे मुक्ति मिले और सेवाओ तथा लगान और मूल्यो की अदायगी वस्तुओ के बजाय द्रव्य मे निश्चित की जाये। इस परिवर्तन को कम्यूटेशन (commutation) कहा गया। यह किसान और ग्रामपति दोनो के लिए लाभप्रद सिद्ध हुआ परन्तु, कृषक दासो की सामाजिक स्थिति ऊँची हो जाने के कारण उन्हें अधिक सन्तोष हुआ।

छोटे छोटे नगरो और कस्बो का विकास भी १४वी शताब्दी मे ही होने लगा था जिनमे मजदूरों की मांग बढ़ी। ग्रामपतियो को भी सुख सुविधा की दृष्टि से नगरो मे रहना अच्छा लगा। उन्हें लगान मुद्रा मे मिल जाने के कारण गाँव मे रहना और अन्न वसूल करना आवश्यक नही रहा। ग्रामपति अपनी निजी भूमि (demesne) को भी लगान पर उठाने लगा। इस प्रकार डेमीन भूमि की समाप्ति हो गई। कृषि की अवनति न हो इस दृष्टि से ग्रामपतियो ने श्रमिको को कानून के बन्धनो द्वारा गाँवो मे रखने के प्रयत्न किये परन्तु स्पर्द्धा और प्रसंविदा के परे इन प्रयत्नो मे सफलता नही मिल सकी।

एक ओर नगरो और कस्बो मे मजदूरो की माँग बढ रही थी, गांव में परम्परागत व्यवहार अप्रिय था और दूसरी ओर महामारियो द्वारा श्रमिको की पूर्ति घटी थी। १४वी शताब्दी के मध्य मे, इंगलैण्ड मे ही नही, योरुप के अनेक देशो मे ऐसी प्लेग फैली जिसे काली मृत्यु (black-death) कह कर पुकारा जाता है। गाँवो मे यह परिस्थिति अनेक वर्षों तक चलती रही जिसके कारण खेती के लिए श्रमिक दासों का मिलना कठिन हो गया। इस कठिनाई का एक हल यह निकाला गया कि किसानो को पट्टे पर भूमि दी गई और रिवाज के बजाय लगान स्पर्द्धा और प्रसविदा पर निर्भर होने लगा।

मैनोरियल प्रणाली के विनाश का चौथा मुख्य कारण यह था कि ऊनी वस्त्र उद्योग के लिए ऊन की बढती हुई माँग तथा श्रमिको की कमी के कारण अपनी निजी भूमि को भेडें पालने के लिए घेरने लगे। चारागाहो को भी घेरा गया और किसानो को बेदखल करके उनकी जमीनो पर स्वामित्व प्राप्त करके उन पर भी भेडें पालना आरम्भ किया गया। १६वी शताब्दी के इस समावरण आन्दोलन (enclosure movement) के कारण, जिसका विस्तृत विवरण अन्यत्र दिया गया है, गाँव किसानो से खाली होने लगे और मजदूरो पर भी बुरा असर पडा।

मैनोरियल प्रणाली के टूटने का एक और कारण ग्रामीण न्यायालयो की समाप्ति था। ज्यो ज्यों किसान दास-वृत्ति से मुक्ति पाने की ओर अग्रसर हुए जमीदार (lord) को ग्रामीण अदालत लगाना लाभप्रद नही रहा। इगलैण्ड मे केन्द्रीय शासन बढ रहा था। लोगो का यह असंदिग्ध अधिकार माना जाने लगा कि वे अपने मामले राजकीय न्यायालयो में ले जा सकें। ग्रामीण अदालतो मे आने वाले झगडों में कमी होती गई और ये न्यायालय स्वतः ही बन्द होते गये।

१५वी शताब्दी के अन्त तक मध्ययुगीन जमीदारी प्रणाली (मेनोरियल प्रणाली) समाप्तप्रायः हो चुकी थी। खुले खेतो की पद्धति आगे भी चलती रही परन्तु कृषक-दासो का स्थान वैतनिक श्रमिको ने ले लिया था। जमीदार की निजी जमीनें समाप्त हो गई। अदला-बदली (barter) की प्रणाली के बजाय मुद्रा-अर्थ व्यवस्था आ गई। व्यापार बढ़ा, रूढ़ियाँ टूट गई और प्रतियोगिता-पूर्ण नए युग का विकास होने लगा।

प्राचीन औद्योगिक प्रणालियाँ

औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व इगलैण्ड मे उद्योग प्रणालियो का विकास चार सीढ़ियो द्वारा आगे बढा—

(१) गृह उद्योग (household system),

(२) गिल्ड प्रणाली (craft gild system),

(३) घरेलू प्रणाली (domestic system) तथा

(४) कारखाना प्रणाली (factory system)।

इनमें कारखाना प्रणाली का विकास और औद्योगिक क्रान्ति समान और समकालीन समझे जाते हैं।

गृह-उद्योग प्रणाली—स्वावलम्बन की अवस्था का ही एक अंग थी जिसमे व्यक्ति कृषि अथवा जीविका के अन्य साधनो, जैसे, पशु-पालन, मछली पकड़ना, आखेट करना, इत्यादि के साथ साथ ही आवश्यक वस्तुओ का गाँव मे घर पर ही निर्माण करते थे, जैसे, वस्त्र, इत्यादि। गृह-उद्योग प्रणाली मे पूँजी नाममात्र की थी और बाजार अत्यन्त सकुचित, केवल स्थानीय था।

गिल्ड प्रणाली का विकास
(Origin of the Craft Gild)

गिल्ड प्रणाली का जन्म १२वी शताब्दी मे हुआ। इस प्रणाली के उदय होने से व्यवसाय को कृषि से भिन्न आर्थिक क्रिया समझा जाने लगा। गिल्ड प्रथा सर्वप्रथम जुलाहो मे अपनाई गई, तदुपरान्त अन्य धन्धो मे। गिल्ड एक व्यावसायिक सगठन का रूप था और इस सगठन को प्रायः वैधानिक मान्यता मिली हुई होती थी। गिल्ड का मुख्य उद्देश्य व्यावसायिक नियत्रण था।

गिल्ड के उद्देश्य प्रायः निम्नलिखित हुआ करते थे—

(१) **व्यवसाय का नियन्त्रण**—गिल्ड के अधिकारी देखते थे कि उनके व्यवसाय का काम उच्च कोटि का हो। माल की किस्म गिराने वाले अपराधियो को दण्ड देने की भी व्यवस्था थी। इसी दृष्टि से मजदूरो को रात

के समय काम नही करने दिया जाता था क्योकि रात मे काम घटिया होने की सम्भावना थी। गिल्ड के अधिकारी घूम फिर कर निरीक्षण किया करते थे। कारीगरी को प्रोत्साहन देने के लिए ट्रेनिंग और शिक्षा (apprenticeship) की व्यवस्था थी। कोई भी कारीगर गिल्ड का सदस्य बने बिना कोई शिल्प-कार्य आरम्भ नही कर सकता था।

(२) शिल्प संगठन का दूसरा मुख्य कार्य उस शिल्प मे मजदूरो का वेतन निश्चित करना था। इसका मुख्य उद्देश्य श्रमिको के हितो की रक्षा करना प्रतीत होता है, परन्तु वस्तुतः इससे एक ही प्रकार के शिल्प मे वस्तु की उत्पादन लागत निश्चित और समान रह सकती थी।

(३) गिल्ड का तीसरा मुख्य कार्य वस्तु की कीमत निर्धारित करना था ताकि उपभोक्ता को उचित मूल्य पर वस्तु मिले। इस प्रकार गिल्ड केवल उत्पादको का संघ नही था वरन् मजदूरो तथा उपभोक्ताओ के हितो की रक्षा का, कम से कम आरम्भ मे, ध्यान रखा गया था।

उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त गिल्ड प्रायः निम्नलिखित कार्य भी करते थे—

(४) वे धार्मिक उत्सवो की व्यवस्था तथा देखरेख करते थे।

(५) वे मैत्री समितियो की भांति कार्य, यथा दावतो और पार्टियो का आयोजन, भी करते थे।

(६) सजावट और सास्कृतिक कार्यक्रम मे भी भाग लेते थे।

(७) अपने सदस्य कारीगरो को बाहरी स्पर्द्धा से बचाते थे। उदाहरण के लिए नगर के बाहर के गिल्ड के गैर सदस्यो को नगर मे माल नही बेचने देते थे।

(८) पंचायत कार्य (arbitration)—सदस्यो को आपस मे कानूनी कार्यवाही करने की जाजी थी। गिल्ड के सदस्यो मे यदि कोई झगडा होता तो पहले गिल्ड के अधिकारी ही फैसला करने का प्रयत्न करते थे, परन्तु यदि यह सम्भव न होता तो उनकी आज्ञा लेकर मामला न्यायालय को ले जाया जा सकता था।

गिल्ड का सगठन

गिल्ड के सदस्य तीन प्रकार के हुआ करते थे—

(क) मिस्त्री (masters या master craftsman)

(ख) प्रशिक्षित श्रमिक (journeyman) तथा

(ग) शिक्षार्थी (apprentices)।

मिस्त्री (masters) उन कुशल कारीगरों को कहा जाता था जिनकी निजी दुकान या शिल्पशाला (workshop) होती, जिसमे वे अपनी सहायता के लिए वेतन पर प्रशिक्षित श्रमिक (journeymen) रखते थे और शिक्षार्थियों (apprentices) को ट्रेनिंग दिया करते थे। मिस्त्री अपनी कारीगरी में पूर्णतया कुशल होते थे। उनके निजी औजार होते थे तथा वे अपने सहायक कारीगरों (journeymen) को काम करने के लिए आवश्यक औजारों के अतिरिक्त प्रायः जगह भी देते थे। इस प्रकार वे एक ओर पूँजीपति और दूसरी ओर कुशल कारीगर थे।

प्रशिक्षित श्रमिक जिन्हें जर्नीमैन कहा जाता था, स्थायी या अस्थायी रूप से काम करने वाले मजदूर होते थे जो मिस्त्रियों के यहाँ वेतनभोगी (employees) रहकर काम करते थे। ये जर्नीमैन साधन जुट जाने पर स्वतन्त्र दुकानें या शिल्पशालाएँ खोल लेते थे अर्थात् मिस्त्री बन जाते थे।

शिक्षार्थी (apprentices) ऐसे तरुण होते थे जो जर्नीमैन बनना चाहते थे। गिल्ड के नियमों के अनुसार मिस्त्री के लिए यह आवश्यक था कि वह उन्हें अपने पुत्र के समान समझे; उन्हें भोजन, वस्त्र, ठहरने के लिए स्थान दे तथा उन्हें सबकुछ सिखला दे, गुप्त कुछ भी न रखे। इसके बदले में शिक्षार्थियों को अपने मिस्त्री (master) का छोटे से छोटा काम भी करना पड़ता था। व्यवहार में शिक्षार्थियों से मिस्त्री प्रायः अवैतनिक मजदूरों की तरह काम लेते थे परन्तु इस शिक्षा-व्यवस्था में बुराइयों को रोकने के लिए गिल्ड और सरकार की ओर से देखभाल और नियन्त्रण रखने के कदम उठाए गए।

गिल्ड का प्रशासन (Administration)

क्राफ्ट गिल्ड का प्रशासन वार्डनों (wardens) के द्वारा होता था, जिनकी नियुक्ति या तो नगर के मेयर (mayor) के द्वारा होती थी या उनका चुनाव गिल्ड की सभा (जनरल असेम्बली) करती थी। यह सभा (assembly) नियम और आदेश बनाती थी कि गिल्ड का कार्य उनके अनुसार चलता रहे। परन्तु इन नियमों और आदेशों के लिए पहले नगर के अधिकारियों अथवा जस्टिस ऑफ पीस (Justices of Peace) की स्वीकृति लेना आवश्यक था। कहीं कहीं गिल्ड की सभा नियम और आदेश बनाने के लिए एक कौंसिल (council) नियुक्त कर देती थी। यह कौंसिल प्रायः इस बात का निर्णय भी करती थी कि अपराधी कौन है अथवा गिल्ड अपनी अदालत स्थापित कर देते थे।

क्राफ्ट गिल्ड और आधुनिक व्यापारिक संगठन (Trade Union) में अन्तर

यद्यपि क्राफ्ट गिल्ड अपने सदस्यों के हितों की रक्षा करते थे और उन्हें बाहरी स्पर्द्धा से बचाते थे परन्तु क्राफ्ट गिल्ड और श्रम संघों (trade unions) के बीच पर्याप्त अन्तर है। अन्तर की मुख्य बातें अधोलिखित हैं—

(१) गिल्ड पूरे व्यवसाय और उसमे लगे हुए सब व्यक्तियों के हितों की रक्षा के लिए स्थापित होते थे, ट्रेड यूनियन प्रायः केवल मजदूरों के हितों की रक्षा के लिए होते है।

(२) क्राफ्ट गिल्ड टैक्नीकल अधिकतर ट्रेनिंग की भी व्यवस्था करते थे परन्तु ट्रेड यूनियन अधिकतर मजदूरियो और काम की दशाओं पर ही ध्यान देते है। श्रम-सघों ने अपने कार्यों का क्षेत्र बढाया है परन्तु उनके मुख्य कार्य मजदूरियों तथा फैक्टरी मे काम की दशाओं से ही सम्बन्धित हैं।

(३) इसके अतिरिक्त क्राफ्ट गिल्ड का कार्य प्रायः किसी एक नगर तक सीमित होता था, ट्रेड यूनियन का क्षेत्र प्रायः विस्तृत होता है।

(४) ट्रेड यूनियन के उद्देश्य बहुधा राजनीतिक होते हैं, क्राफ्ट गिल्ड इन उद्देश्यों से परे कार्य करते थे।

गिल्ड प्रणाली के गुण-दोष

श्रमिकों के लिए गिल्ड प्रणाली का मुख्य लाभ यह था कि इसके अन्तर्गत उन्हें काम की ठीक दशाओं, उचित वेतन तथा वृत्ति (employment) की वाछनीय निश्चितता की सुविधाएं प्राप्त थी।

गिल्ड वस्तु की ठीक किस्म और उचित कीमत पर ध्यान देते थे। अतः उत्पादक-विक्रेता एवं ग्राहक उपभोक्ताओं, दोनो के हितों की रक्षा होती थी।

गिल्ड व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था करते थे, इस प्रकार सरकार को शिल्प-शिक्षा की पृथक् कोई व्यवस्था नही करनी पड़ती थी।

गिल्ड प्रणाली की हानियाँ भी बताई जाती है। गिल्ड का मुख्य कार्य व्यवसायिक नियन्त्रण था। जब स्वतन्त्र व्यापार की धूम हुई तो इसे व्यक्ति के स्वतन्त्र व्यापार तथा साहस मे बाधक समझा गया। यह भी कहा गया कि गिल्ड प्रथा औद्योगिक विकास को कुछ सीमा तक रोकती थी क्योंकि गिल्ड का व्यवहार स्थानीय एकाधिकार स्थापित करने जैसा था। वस्तुतः जैसा कि

लिप्सन ने कहा है, गिल्ड नियन्त्रण इङ्गलैण्ड के आर्थिक विकास में एक आवश्यक अवस्था थी।[1]

गिल्ड प्रथा का अन्त

वस्तुओं के बाजारों के बढ़ने के साथ गिल्ड प्रथा चल न सकी। गिल्ड प्रथा का अन्त होने के मुख्य कारण निम्नांकित थे—

१. **प्रशिक्षित श्रमिकों के शिल्प संघो (journeymen gilds) का विकास**—मिस्त्री और प्रशिक्षित श्रमिकों मे मजदूरी की दरो पर प्रायः झगड़ा हो जाता था। काम के घटों के लिए भी झगडा चलता था। अतः उन्होंने अपने अलग गिल्ड बना लिए परन्तु वे अधिक शक्तिशाली न बन सके।

२. **गिल्ड की सामाजिक क्रियाओं का अन्त**—गिल्ड के सदस्यों का सामाजिक क्रियाओं मे उत्साह उन्हें परस्पर मैत्री और भ्रातृत्व के बन्धन मे बाँधे रखता था, परन्तु कालान्तर में गिल्ड की आन्तरिक क्रियाओं मे शिथिलता आने लगी थी। सामाजिक क्रियाओं मे सदस्य उदासीनता दिखाने लगे थे जिसके परिणामस्वरूप संगठन सूत्र कच्चे धागे की भाँति कमजोर पड़ गया।

३. **शक्ति का दुरुपयोग और स्वार्थपरता**—गिल्ड चलाने वाले अधिकारियों ने स्वार्थवश शक्ति का दुरुपयोग किया। उदाहरणार्थ, प्रशिक्षित श्रमिकों (journeymen) के मिस्त्री बनने पर रुकावट कर दी गई; सदस्यता शुल्क बढ़ा दिया गया जिससे शिल्प के विकास मे बाधा पड़ी। बहुधा नये भर्ती होने वाले सदस्यो को गिल्ड के अन्य सदस्यो को दावत देने के लिए बाध्य किया जाने लगा जो बहुत खर्चीला होता था।

४. **सरकारी हस्तक्षेप**—विभिन्न बुराइयाँ आने पर देश की सरकार ने उनके लिए विविध कानून (सन् १४३७, १५०४, १५४७ मे) बनाकर हस्तक्षेप किया। सरकारी नियन्त्रणों का भी यह परिणाम हुआ कि गिल्ड मे शिथिलता आने लगी।

५. **व्यापारिक कंपनियों का विकास (Rise of "Livery" Compan ies)**:—[2] गिल्ड के ही कुछ सदस्य अपना अलग वर्ग बना बैठे—व्यापारी वर्ग।

---

1. "Gild control was a necessary stage in economic development."—Lipson.

२. Livery विशेष पोशाक थी जो गिल्ड के केवल धनी और महत्त्वपूर्ण सदस्य ही पहिन सकते थे। इस प्रकार गिल्ड के सदस्यों में अन्तर पड़ गया। कालान्तर मे धनी-मानी व्यक्तियों ने व्यापारिक कम्पनियां बना ली।

उन्होंने अलग कम्पनियाँ खोल ली। १६वी शताब्दी के प्रारम्भ मे ऐसी अनेक कम्पनियाँ वर्तमान थी। इस व्यापारी वर्ग को गिल्ड के सदस्य व्यवसायियो से ऊँचा समझा जाता था और शिल्प संघो की प्रतिष्ठा कम होने लगी।

६ **कारीगरो से व्यापार का छिन जाना**—"पोशाकी" कंपनियो के विकास से संबधित गिल्ड के सदस्यो पर प्रभाव डालने वाली बात केवल प्रतिष्ठा की हानि नही थी। नई कंपनिया गिल्ड के व्यवसायियो को व्यापार कार्य नही करने देती थीं। उनका कार्य केवल निर्माण (manufacture) करना रह गया।

७. **गिल्डों का एकीकरण** (Amalgamation of Craft Gilds) प्रारम्भ मे बडे बडे नगरो मे अनेको गिल्ड होते थे परन्तु कालान्तर मे इनका एकीकरण होने लगा और गिल्ड का नियन्त्रण पूँजीपतियो के हाथो मे जाने लगा। सन् १४२३ मे लन्दन नगर मे १११ विभिन्न प्रकार के गिल्ड थे परन्तु सन् १५३१ मे लन्दन मे कुल ६० गिल्ड रह गये। पूँजीपतियो के नियंत्रण होने के साथ ही घरेलू प्रणाली का विकास हुआ।

८. **नये नगरों का विकास और उनकी ख्याति**—मध्ययुग मे कस्बो का आकार बहुत छोटा और उनकी सख्या बहुत कम थी। कस्बे वस्तुतः बड़े गाँव (manor) के समान थे। कालान्तर मे व्यापार बढ़ने के साथ कस्बो का विकास हुआ। नये नगरो के विकास के कारण अनेक और विभिन्न थे। रोम-काल मे रोम वालो ने जहाँ किले बनाये वहाँ प्रायः नगर बसे। सुरक्षा का लाग नगर विकास मे मुख्य रूप से सहायक था। नदियो के संगम स्थान पर तथा सडको या सडक-नदी के मिलने के स्थान पर व्यापार के लिए अनुकूल स्थिति मिल जाने से नगरो का विकास हुआ। समुद्रन्तट से भीतरी भागो मे नदियो के मुहानो पर जहाँ उत्तम बन्दरगाह बन सकते थे नगर बस गये। भीतरी ओर नगर बसने के दो मुख्य कारण थे—पहला तो यह कि समुद्र की ओर से एकदम आक्रमण का भय कम था, दूसरे, व्यापार के लिए भीतरी भागो से वस्तुओ का सग्रह सुविधाजनक होता था। कई नगर मकान बनाने के सामान की सुलभता के स्थानो पर और अन्य कई बडे गिरजाघरो के निकट ही बस गये। नये नगरो मे सुरक्षा अधिक थी और निवासियो को कुछ विशेष अधिकार प्राप्त थे।

गिल्ड मे जिन कारीगरो को सदस्यता नही मिल सकी अथवा प्रशिक्षित श्रमिको को मिस्त्री बनने का अवसर हाथ नही लग सका वे नये नगरो मे जाकर बस गए।

इस प्रणाली का प्रारम्भ सर्वप्रथम ऊनी वस्त्र व्यवसाय में हुआ। व्यापारी साहसी कच्ची ऊन (raw wool) खरीद कर कातने वालों को देता, कतने पर उसे कातने वालों से लेकर बुनकरों को देता था। बुन जाने पर उसे देशी या विदेशी बाजारों में बेचता था। पहले पहल मशीनों का प्रयोग नहीं होता था और जब कुछ प्रारम्भ हुआ तो केवल सस्ती, सरल और साधारण मशीनें ही प्रचलन में आईं। ऊनी वस्त्र व्यवसाय में व्यापारी-पूँजीपति या मध्यवर्ती को कपड़ेवाला (clothier) कहते थे।

घरेलू प्रणाली के लाभ

घरेलू प्रणाली के विकास के कारणों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, परन्तु इस प्रणाली का उदय उसके कुछ लाभों तथा उसकी सुगमताओं के कारण भी हुआ समझा जाना चाहिए। इस प्रणाली के मुख्य लाभ निम्नलिखित बताये जा सकते हैं—

(क) खेतिहर अपने खाली समय में काम करके अपने परिवार की आय बढ़ा सकते थे, क्योंकि इस प्रणाली में घर बैठे ही काम मिल जाता था। उस समय (१५वीं और १६वीं शताब्दियों में) वहाँ के किसानों की आमदनियाँ बहुत कम थीं। इसमें परिवार के अन्य सदस्य भी काम में हाथ बटा सकते थे। इसके अतिरिक्त कारीगर का दर्जा (status) इस प्रणाली में निम्न नहीं समझा जाता था क्योंकि वह केवल मजदूरी पाने वाला श्रमिक नहीं, भूमि का स्वामी भी था।

(ख) आधुनिक औद्योगिक नगरों की गन्दगी, धुँआ धक्कड, भीड़ और बीमारियाँ उस समय नहीं थीं। गिबिन्स ने अपनी पुस्तक औद्योगिक इतिहास में इस तथ्य पर प्रकाश डाला है।

(ग) घरेलू प्रणाली में श्रम विभाजन का विकास हुआ जिसके कारण श्रमिकों की कार्यक्षमता तथा उत्पादन में तो वृद्धि हुई ही, साथ ही इसने बढ़ते हुए बाजारों के लिए व्यवसाय की पूँजीवादी प्रणाली का विकास सम्भव बनाया।

(घ) गिल्ड प्रथा के नियमन (regulation) की अपेक्षा घरेलू प्रणाली में साहसी का कारीगरों के साथ सीधा सम्पर्क और काम की देख-भाल अधिक सबल और उपयोगी सिद्ध हुए।

(ङ) घरेलू प्रणाली ने गिल्ड प्रथा और उसके एकाधिकारी स्वभाव का अन्त करके बड़े पैमाने पर औद्योगिक विकास के लिए मार्ग खोल दिया।

घरेलू प्रणाली के दोष

घरेलू प्रणाली व्यावसायिक विकास के क्षेत्र में अमिश्रित आशीर्वाद नहीं थी। इसके कई दोष भी थे—

(१) सामान्य मत के विपरीत, घरेलू प्रणाली में कारीगर को स्वाधीनता नहीं थी। उसे कच्चे माल और औजारों के लिए मालिक (employer) पर आश्रित होना पड़ता था और इसी कारण कारीगर को मजदूरी कम मिलती थी, उनका शोषण होने लगा था।

(२) इस प्रणाली के अन्तर्गत कालान्तर में पूँजीपति और कारीगर का प्रत्यक्ष सम्पर्क समाप्त हो गया और दोनों के बीच का सम्बन्ध एजेन्टों (agents) के द्वारा होने लग गया और सामाजिक असंतोष प्रारम्भ हो गया।

(३) घरेलू प्रणाली में मालिक (employer) प्रायः किसी कस्बे या नगर में रहता था और मजदूर प्रायः गावों में। इस प्रकार शहर से गाँव में कच्चा माल लाने और गाँव से शहर का बना हुआ माल ले जाने में समय और श्रम का दुरुपयोग होता था।

(४) मजदूरों में अधिक स्पर्द्धा होने पर उन्हें अधिक परिश्रम करना पड़ता था और वे अपना सब समय मजदूरी के काम में ही दे देते थे। कृषि का काम साथ-साथ चलाना कठिन हो गया। अतः उनको या तो कृषि का काम छोड़ना पड़ा या कृषि की उपेक्षा की गई।

(५) इस प्रणाली में मजदूरों को मजदूरी में बहुधा माल दिया जाता था। जो वस्तुएँ उन्हें दी जाती थीं वे प्रायः घटिया किस्म की होती थीं।

(६) घरेलू प्रणाली का एक अत्यन्त अस्वस्थ प्रभाव यह देखने में आया कि बच्चों से भी काम कराया जाने लगा और उनकी शिक्षा की उपेक्षा हुई।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि यद्यपि घरेलू प्रणाली के कुछ लाभों में सदेह नहीं किया जा सकता तथापि इस प्रणाली में व्यावसायिक शोषण प्रारम्भ हो गया था और कई अवाछनीय तत्त्व प्रवेश कर गये थे।

वस्तुत. घरेलू प्रणाली की स्थिति गिल्ड प्रणाली और फैक्टरी प्रणाली के बीच की थी। घरेलू प्रणाली में कारीगर की स्वतन्त्रता गिल्ड प्रणाली की अपेक्षा कम हो गई थी। अब करीगर कच्चे माल और औजारों के लिए पूँजीपति का आश्रित हो गया था। दूसरी ओर, पूँजी का महत्त्व और प्रयोग बढ़ चले थे तथा श्रम विभाजन का विकास हो रहा था। मशीनों और बड़े पैमाने के उत्पादन का महत्त्व समझा जाने लगा था परन्तु घरेलू प्रणाली में

इनका प्रयोग सम्भव नही हो सका। अभी केवल साधारण औजारो (हथौडे, धोकनी इत्यादि) का ही प्रयोग हुआ था और विशेष टैकनीकल सुधार नही हुए थे। परन्तु जो परिवर्तन घरेलू प्रणाली मे ही देखे जाने लगे थे उन्होने औद्योगिक क्रान्ति द्वारा इंगलैण्ड की औद्योगिक समृद्धि का मार्ग परिष्कृत कर दिया था।

वाणिज्यवाद (Mercantilism)

यह पहले बताया जा चुका है कि १५ वी शताब्दी के अन्त में मध्ययुगीन मेनोरियल प्रणाली का पतन हो गया। इस काल मे कृषि मे इतने परिवर्तन हुए, जिनमे भेड़ें चराने के लिए भूमि समावरण इत्यादि सम्मिलित थे, कि कृषि मे इन्हे १६वी शताब्दी की कृषि क्रान्ति कहा गया। जैसा कि पहले सकेत किया जा चुका है इन परिवर्तनो के गम्भीर परिणाम हुए। यह भी बताया जा चुका है कि १५वी शताब्दी मे औद्योगिक क्षेत्र मे गिल्ड प्रणाली का पतन और घरेलू प्रणाली का विकास हुआ, ऊनी कपड़े का निर्माण, तथा इन ऊनी वस्त्र और अन्य वस्तुओ का व्यापार बढा। इसके पूर्व अधिकाश विदेशी व्यापार विदेशियो के हाथो में था परन्तु ब्रिटेन के नागरिक इस बात को महत्त्व देने लगे कि विदेशी व्यापार का नियन्त्रण उनके हाथों मे हो और इसमे वृद्धि हो।

१५वी शताब्दी के अन्त की ओर ब्रिटेन के आर्थिक इतिहास मे एक मोड आता है। यहां मध्ययुगीन अर्थ व्यवस्था के खण्डहर पर वाणिज्यवाद (mercantilism) का भवन खडा किया। वाणिज्यवाद इस काल मे अपनाई गई व्यापक आर्थिक नीति थी जिसकी यद्यपि बाद मे भारी आलोचना हुई और वह तर्कपूर्ण सिद्ध नहीं हुई परन्तु वाणिज्यवाद का युग (era) ब्रिटेन के आर्थिक इतिहास मे निश्चित अवस्था थी जिसका महत्त्व उपेक्षणीय नही है।

मध्यकालीन (medieval) आर्थिक जीवन का प्रत्येक पहलू कृषि उद्योग और वाणिज्य-नियंत्रित था। मनुष्य किसी संगठन, यथा, मेनर, गिल्ड अथवा कम्पनी की इकाइयों के रूप मे कार्य करते थे।[1] आर्थिक प्रयत्नो का क्षेत्र स्थानीय था; धन की अपेक्षा धर्म को अधिक महत्त्व दिया जाता था—चर्च शक्तिशाली संस्था थी; हर एक क्रिया मे रूढि और परम्परा पर अधिक जोर

---

1 Southgate : English Economic History, ch. 8, Mercantilism, p. 67.

दिया जाता था और राष्ट्रीयता की भावना देशों के बीच भेद पैदा करने वाली सीमा तक नहीं बढ़ पाई थी। पन्द्रहवीं शताब्दी मे राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक ऐसी घटनाएँ घटी[1] कि उनके परिणामस्वरूप नीति सम्बन्धी जो व्यापक परिवर्तन हुए, जिनका हर एक क्षेत्र में प्रभाव पडा, उन्हें बाद मे 'वाणिज्यवाद' नाम दिया गया।

वाणिज्यवादी सिद्धान्तो का जोर १६ वी और १७ वीं शताब्दियों मे अधिक रहा। गिरजाघर के विरोध करने पर भी इस युग मे धन को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। नैतिकता शिथिल हो गई। रूढियाँ दुर्बल पड़ गई। राष्ट्रीयता की भावना स्पष्ट और प्रबल हो गई।

वाणिज्यवादी युग की मुख्य विशेषताएँ ये थी—

(१) राज्य (state) को सर्वोपरि माना गया और देश के राजनीतिक ओहदे (status) को ऊँचा उठाने का भरसक प्रयत्न किया गया।

(२) विदेशी व्यापार और अनुकूल व्यापारान्तर को महत्त्व दिया गया। वस्तुतः "अनुकूल व्यापारांतर" शब्द इसी युग की उपज थे। वाणिज्यवादियो की भ्रान्तिपूर्ण धारणा थी कि देश मे धन की वृद्धि करने का एकमात्र उपाय यही था कि ब्रिटेन अन्य देशो को निर्यात अधिक करे और उन देशो से आयात कम करे, क्योकि ऐसा करके वह स्वर्ण तथा अन्य बहुमूल्य धातुएँ प्राप्त कर सकता था। राष्ट्रीय कोष में उस समय स्वर्ण को अत्यधिक महत्त्व दिया गया। वाणिज्यवादियों ने स्वर्ण को एक वस्तु नही बल्कि विशेष सम्पत्ति माना और यह भूल की कि सभी देशो द्वारा वाणिज्यवादी नीति अपनाये जाने पर उनकी सब योजनाएँ विफल रहेंगी।

(३) कृषि की अपेक्षा व्यापार और पूँजी को अधिक महत्त्व दिया गया।

(४) कृषि, उद्योग, व्यापार इत्यादि सभी क्षेत्रो मे सरकारी हस्तक्षेप को सिद्धान्तः महत्त्व दिया गया और व्यवहार मे सभी क्षेत्रो मे हस्तक्षेप की नीति अपनाई गई। राष्ट्र की समृद्धि और देश की स्वर्ण निधि मे वृद्धि करने के लिए ऐसे साधनो को अपनाना भी उचित माना गया जिन्हें अन्यथा व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य में बाधक समझा जाता।

(५) राष्ट्र की शक्ति बढाने के लिए सैनिक और नौ सेना शक्ति बढ़ाने पर बल दिया गया।

---

१. इन घटनाओ में प्रमुख लम्बे युद्ध, पुनर्जागरण (Renaissance), सामन्तो का पतन, भौगोलिक अन्वेषण तथा धार्मिक सुधार इत्यादि हैं।

इस युग मे आवागमन के साधनो का विकास हुआ। राज्य द्वारा उद्योगो का नियन्त्रण किया गया। **नौ-वहन (Navigation) पद्धति का विकास** भी इसी काल मे प्रारम्भ हो गया था। नियन्त्रणकारी कानून पास किये गये। नियन्त्रित आर्थिक जीवन तो मध्यकाल मे भी था परन्तु वाणिज्यवादी युग मे नियन्त्रणो का क्षेत्र स्थानीय नही रहा वरन् पूरे देश मे उन्हें लागू किया गया। औपनिवेशिक व्यापार और उसका स्वभाव वाणिज्यवादी सिद्धान्तो की उपज थी। १६ वी शताब्दी मे ऐसी अनेक कम्पनियाँ स्थापित हुई जो या तो संयुक्त-पूँजी वाली कम्पनियाँ (joint-stock companies) थीं या नियमबद्ध साझेदारियो के रूप मे थीं। ये दोनो प्रकार की कम्पनियाँ दूर दूर देशो के साथ व्यापार करने लगी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी जिसने भारत में ब्रिटेन का प्रभाव बढाया और भारत के इतिहास को प्रभावित किया ऐसी ही एक कम्पनी थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी को अपना सर्वप्रथम अधिकार पत्र (चार्टर) दिसम्बर सन् १६०० ई० मे मिला था।

प्रश्न

1. Briefly describe the Manorial System of England. What were the main causes of its decline ?

2 Trace the origin of the Craft Gild System. Give a brief account of its working and administration Why did the system break down ?

3 Discuss the merits and demerits of the Domestic system as compared to the factory system

4. Discuss critically the essential features of the Manorial System and circumstances which led to its breakdown towards the middle of the fifteenth century.

दूसरा अध्याय

अद्योगिक क्रान्ति के प्रारम्भ काल में आर्थिक दशाएँ

[कृषि, व्यवसाय, वाणिज्य-व्यापार, प्रश्न ।]

अठारहवी शताब्दी के मध्य तक, जिसके उपरान्त ब्रिटेन मे भौतिक अभ्युदय के युग का प्रभात निकला और कृषि, व्यापार तथा व्यवसाय सभी दिशाओ मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए, ग्रेट ब्रिटेन मुख्यतया कृषिप्रधान देश था। उस समय नगरो की सख्या बहुत कम थी । आधुनिक नगरो की तुलना मे उस समय के नगर बहुत छोटे थे ।[1] लगभग अस्सी प्रतिशत जनसंख्या देहात मे गांवो मे रहती थी। कृषि ही जीविका का प्रमुख साधन था। उद्योगो का शैशव काल था। उस समय तक वस्त्र, लोहा-इस्पात, इत्यादि निर्माण व्यवसायो (manufacturing industries) का या तो समारम्भ ही नही हुआ था या वे छोटे पैमाने पर देहाती क्षेत्रो मे ही पाये जाते थे । उद्योगो का काम कृषि-श्रमिको द्वारा कृषि कार्य के साथ साथ कुटीरो मे किया जाता था। कृषि मे दुर्भिक्ष की दशाएँ असामान्य नही थी और किसानो को आंशिक बेरोजगारी का सामना करना पड़ता था। कृषि पिछड़ी दशा मे थी और उद्योगो मे नये यन्त्रो का प्रयोग प्रारम्भ नही हुआ था । व्यापार का विकास प्रगति पर था।

ग्रेटब्रिटेन की अठारहवी शती के मध्य की आर्थिक दशाओ का वर्णन तीन शीर्षको के अन्तर्गत सुविधापूर्वक किया जा सकता है :—(१) कृषि, (२) व्यवसाय, (३) व्यापार एवं वाणिज्य।

कृषि

गांवो के समीप की भूमि पहले सबको सम्मिलित समझी जाती थी । यह पिछले अध्याय मे उल्लेख किया गया था कि १६वी शती मे भूमि का समा-

1. Southgate, op cit., ch. xiv, Industrial Revolution, p. 116.

बरण आन्दोलन आरम्भ हुआ था, परन्तु उसका उद्देश्य भेडें चराने के लिए भूमि घेरना था। इस आन्दोलन का एक गम्भीर प्रभाव यह पडा कि ग्राम्य समाज का समस्त दृष्टिकोण ही बदल गया था। खेती का उद्देश्य पहले जीवन-निर्वाह समझा जाता था परन्तु १६वी शती की कृषि क्रान्ति के उपरान्त कृषि लाभ के लिये की जाने लगी। १८वी शताब्दी मे कृषि के क्षेत्र मे जो क्राति हुई उसमें व्यापक परिवर्तन हुए। ये परिवर्तन सन् १७५० के पूर्व तक स्पष्ट नही हुए थे (कृषि क्रान्ति का वर्णन अन्यत्र किया गया है)।

१६ वी शताब्दी मे समावरण आन्दोलन (enclosure movement) जिस गति पर प्रारम्भ हुआ था उसकी गति सन् १६०० और १७५० के बीच मन्द रही। सन् १७१० से १७६० तक ३,३४,६७४ एकड भूमि घेरी गई जब कि सन् १७६० से १८४५ तक ७० लाख एकड़ के लगभग जमीन घेरी गई।

सत्रहवी शताब्दी का और १८वी शताब्दी का पूर्वार्द्धकाल अर्थात् डेढ सौ वर्ष का समय कृषि मे स्थिरता का काल माना जाता है। पुराने ढङ्ग की खेती अब भी ब्रिटेन के जिलो मे प्रचलित थी जिसमे खुले खेतों (open fields) और तीन-खेतो की प्रणाली (three-field system) मुख्यतया देखने मे आते थे। त्रि क्षेत्रीय प्रणाली में खेत के एक-तिहाई भाग को क्रम से खाली (fallow) छोडा जाता था। चरागाह भूमियाँ सबकी सम्मिलित समझी जाती थी। इस भूमि पर हरेक किसान अपने पशु चरा सकता था और उसमे से अपने लिए ईंधन (fuel) भी ले सकता था। फसलो की उपज (प्रति एकड) बहुत कम थी। खादो का तथा शलजम जैसी फसलों का प्रचलन नही था। चारे की कोई फसलें नही उगाई जाती थी। खेत छोटे छोटे टुकड़ो मे बिखरे हुए थे जिनके कारण श्रम और समय का अपव्यय होता था और प्रायः झगडे हो जाया करते थे। भेडों का पालन भी अधिक नही होता था और भेडें प्रायः कमजोर तथा गिरी हुई नस्लों की थी। खेती के औजार और ढङ्ग पुराने थे। लकड़ी के हल थे और अनाज ढोने के लिए पहिए वाली छोटी छोटी गाडियाँ थी। रिवाजो का जोर था और परिवर्तनो के विषय मे लोग सन्देह-पूर्ण थे। इस काल मे कीमत स्तर भी प्रायः नीचा था जिसके कारण कृषि और पशु-पालन मे कोई विशेष प्रगति नही हो सकी।

कृषि मे प्रगति की गति मन्द तो थी परन्तु एकदम रुकी नही थी। चरागाह बनाने और कृषि सुधार दोनो दृष्टियो से कृषि भूमि का समावरण

(enclosure) चालू रहा। प्रारम्भ में समावरण आन्दोलन का इस आधार पर विरोध किया गया था कि भेड़-बकरियों के लिए भूमि घेरे जाने से दरिद्रता और दुर्भिक्ष की दशाएँ फैलती हैं, और जनसंख्या घटती है, बेकारी फैलती है, इत्यादि। ये तर्क अब अधिक प्रबल नहीं रहे थे क्योंकि खुले खेतों से होने वाली हानियों और बर्बादियों की तुलना में घिरे हुए क्षेत्रों में सुधार और अधिक उत्पादन को महत्त्व दिया जाने लगा था। रोजगार के नये क्षेत्र खुल गये थे और समावरण की प्रगति के परिणामस्वरूप अनाज का उत्पादन बढ़ा था जिसमें से निर्यात भी होने लगा था। अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ब्रिटेन लगभग पाँच लाख क्वार्टर अनाज प्रतिवर्ष रूस, हालैण्ड, इत्यादि देशों को निर्यात करता था।

१७वीं शताब्दी में वीरान और बंजर पड़ी हुई भूमि को कृषि-योग्य (reclamation) किया गया। दलदली जमीनों में चरागाह बनाये गये और खेती आरम्भ हुई। १७वीं शती में नये आविष्कारों तथा नयी विधियों द्वारा "वैज्ञानिक" खेती तो आरम्भ नहीं हो पाई थी परन्तु इस काल में कृषि की उन्नति के प्रयत्न प्रारम्भ हो गये थे। खुले खेतों की प्रणाली में कृषि सुधार सम्भव नहीं था परन्तु पट्टेधारी किसानों के घिरे हुए बड़े बड़े खेतों में कुछ प्रयोग किये गये। पशुओं की नस्ल सुधार की दिशा में भी ध्यान दिया गया। खादों तथा शलजम जैसी जड़दार फसलों की खेती के प्रयोग प्रारम्भ किये, यद्यपि उनका विस्तृत प्रयोग १८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध काल में हो पाया।

किसानों की दशा बुरी नहीं थी क्योंकि वे खाली समय में कताई, बुनाई इत्यादि अन्य धन्धों का सहारा भी लेते थे। उनके पास भूमि भी बीस-तीस एकड़ के लगभग होती थी, जिस पर प्राचीन ढङ्गों से कृषि करके भी तत्कालीन मानदण्डों के अनुसार उसे एक परिवार के लिए पर्याप्त समझा जाता था।

ब्रिटेन की जनसंख्या निरन्तर बढ़ती जा रही थी, अतः इस बात की आवश्यकता पर सामान्य रूप से विचार किया गया कि कृषि-कला में सुधार किया जाये। कृषि में वैज्ञानिक रीतियों का प्रयोग तभी सम्भव था जब खेत बड़े बड़े हों और उनमें पूँजी का विनियोग किया जाये। उस समय खेत प्रायः छोटे छोटे थे अतः बड़े बड़े चक बनाने के लिए चकबन्दी और समावरण की दिशा में कानून भी बनाये गये। किसानों में भी उत्साह था। कुछ उत्साही

व्यक्तियो ने प्रेस और प्लेटफार्म द्वारा "नयी कृषि" का विकास करने के लिए पर्याप्त प्रचार किया। जेथ्रोटल, स्मिथ, लॉर्ड टाउन्सेण्ड, आर्थर यङ्ग तथा रॉबर्ट बेकवैल इत्यादि व्यक्तियो के परिश्रम और प्रयत्नो द्वारा कृषि में जो उन्नति हुई उससे आगे चल कर १८ वी शताब्दी के उत्तरार्द्धकाल में ब्रिटेन की कृषि मे क्रान्ति आ गई।

व्यवसाय

यह काल व्यवसाय की घरेलू प्रणाली का था जिसमे कृषि के साथ साथ ही अन्य उद्योग-धन्धे भी चल रहे थे। ये उद्योग किसान अपने कुटीरो मे खाली समय मे करते थे और ये सहायक धन्धे के रूप मे चल रहे थे। औद्योगिक नगरो का विकास नही हुआ था। शक्ति (power) का विकास नही हुआ था, जहाँ आवश्यक था दाकियानूसी ईधन का उपयोग किया जाता था और आधुनिक यन्त्रो का कार्य अधिकाश हाथो से सम्पन्न होता था। मजदूरो को कच्चा माल और आवश्यक औजार प्रायः साहसी ही देते थे।

अठारहवी शताब्दी के मध्य मे ब्रिटेन का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण व्यवसाय **ऊनी व्यवसाय** था। ऊनी माल का निर्यात बढ रहा था। सन् १७०१ मे लगभग २० लाख पौण्ड मूल्य के ऊनी माल का निर्यात हुआ था और सत्तर वर्ष बाद दूने मूल्य के निर्यात हुए। यह निर्यात मूल्य कुल निर्यातो का एक चौथाई से अधिक था। ऊन की माँग बढ रही थी। भूमि का उपयोग भेडें पालने के लिए भी किया जा रहा था और भेडो की नस्लें सुधारने की ओर भी ध्यान दिया जाने लगा था। इस समय अच्छा ऊनी कपडा बनाने के लिए ब्रिटेन मे स्पेन की ऊन काम मे लाई जाती थी। सन् १७५०-६० मे ऊनी व्यवसाय के प्रमुख क्षेत्र तीन थे—(१) नार्विच (Norwich) के पूर्वी जिले (counties), (२) पश्चिमी इंगलैण्ड मे ब्रैडफोर्ड और समीपवर्ती क्षेत्र और (३) यार्कशायर का वैस्ट राइडिंग। ऊनी कपडे का निर्यात इस समय भी काफी मात्रा मे होता था परन्तु सन् १७६० के उपरान्त अधिक बढा। इंगलैण्ड और वेलस का शायद कोई भी ऐसा जिला (काउन्टी) नही था जिसमे समय के कुछ भाग मे किसान और कृषि श्रमिक ऊनी कपडे का उत्पादन कार्य न करते हो।[1] सरकार की निगाह मे ऊनी वस्त्र उद्योग इतना महत्त्वपूर्ण था कि उसके विकास के लिए कई कदम उठाये गये। उदाहरणार्थ, कच्चे ऊन के

1. Ashton, T. S. : The Industrial Revolution, ch. II the Earlier Forms of Industry, p. 29.

निर्यात और कुशल कारीगरो के प्रवास पर रोक थी; ऐसे ऊनी वस्त्र का आयात भी नही होने दिया जाता था जो ब्रिटिश ऊनी वस्त्रो मे ब्रिटेन के बाजार मे स्पर्द्धा ले। लोगों को इस बात के लिए प्रेरित किया जाता था कि वे स्वदेशी वस्त्रो को ही पहिनें, बल्कि उन्हे इसके लिए विवश किया जाता था, यहा तक कि मुर्दों को भी ऊन के सिवाय किसी अन्य प्रकार के कपड़े में गाड़ने की आज्ञा नही दी जाती थी।[1] ऊनी वस्त्र का उत्पादन कई हाथो द्वारा होता था और उसमें तकनीकी प्रगति काफी हो चुकी थी, परन्तु आधुनिक यन्त्रो का प्रयोग उस समय तक नहीं हुआ था।

लोहा व्यवसाय ऊनी व्यवसाय के बाद आता था। उस समय लोहा पिघलाने और शुद्ध करने के लिए खान के कोयले का उपयोग ईंधन की तरह भी नही होता था, उसके बजाय लकड़ी के कोयले (charcoal) का उपयोग किया जाता था। लोहे का उत्पादन कच्चे लोहे के क्षेत्रो की समीपता के ऊपर नहीं, बल्कि वृक्षो की निकटता के ऊपर अधिक निर्भर था, क्योंकि कच्चा लोहा ढोने के बजाय लकड़ी या लकड़ी का कोयला दूर तक ढोना अधिक महँगा था। १६ वीं और १७ वीं शताब्दियो मे इंगलैण्ड के दक्षिणी भागों ससेक्स और केन्ट मे लौह उद्योग विकसित हो चुका था परन्तु जहाज निर्माण और लोहा बनाने मे इस क्षेत्र के जगल समाप्त प्राय होने पर इस प्रदेश मे लौह-उद्योग गिरा और सन् १७०० के आस-पास ऐसे भागो मे विकसित होने लगा जहाँ वृक्षो की बहुतायत थी। अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक ब्रिटेन मे भट्टियो की सख्या अधिक नहीं थी और लोहे का वार्षिक उत्पादन औसतन १७,३५० टन के लगभग था। उस समय ब्रिटेन लोहे का निर्यात नहीं करता था, आयात करता था। विकास सन् १७६० के बाद निरन्तर होता गया। सन् १७६० के पूर्व लौह व्यवसाय ब्रिटेन मे वेल्स और इंगलैण्ड के दक्षिणी भागों तक सीमित था परन्तु तदनन्तर स्काटलैण्ड मे भी विकसित हुआ।

लोहा गलाकर साफ करने के लिए लकड़ी के कोयले का मिलना धीरे धीरे कठिन होता गया, खान के कोयले का उपयोग आरम्भ होने लगा। खान के कोयले का उपयोग सर्वप्रथम ब्रिस्टल मे अब्राहम डरबी ने किया और सन् १७०६ मे उसने कोक (coke) से पिघलाया हुआ अच्छी किस्म का ढला लोहा (पिग आयरन) बनाया। बेंजामिन हट्समैन (Huntsman) ने लौह-

1. Ibid.

व्यवसाय मे क्रान्ति लाने का कार्य सन् १७४० के लगभग एक दूसरी ही तरह से प्रारम्भ किया। उसने शेफील्ड मे लोहे के साथ कोयला मिला कर धातु को साफ करने की तथा इस्पात बनाने की नई पद्धति निकाली। इस्पात बनाने के लिए अच्छी कोटि का लोहा स्वीडन से आयात किया जाता था और समीपता के कारण इस्पात बनाने का काम टाइन नदी पर न्यूकेसिल के आस-पास केन्द्रित हुआ। उत्पादन की लागत अधिक थी और इस्पात का उपयोग कटलरी, उस्तरे, तलवारें, बन्दूकें, घड़ियों के पुर्जे इत्यादि बनाने मे सीमित था। लोहा बनाने में खान के कोयले का उपयोग बढने पर लोहे की वस्तुएं बनाने के उद्योग, जैसे, औजार, ताले, चोवे, सांकल इत्यादि कोयला-क्षेत्रो के निकट विकसित हुए। टेम और स्टावर नदियो की घाटियो मे दक्षिणी स्टेफर्डशायर तथा उत्तर पूर्वी वर्सेस्टरशायर लोहे की वस्तुएं बनाने का सबसे बडा क्षेत्र था। बर्मिघम हथियारो और धातु के हल्के बर्तनो के लिए ख्याति प्राप्त कर रहा था। शेफील्ड, दक्षिणी यार्कशायर और डर्बीशायर के समीपवर्ती क्षेत्रो मे भी लोहे की वस्तुओ के निर्माण-कार्य मे प्रगति हुई। लोहे की नई नई वस्तुएं भी बनी और कारीगरो की संख्या मे भी वृद्धि हुई परन्तु उत्पादन की मात्रा कच्चे माल की उपलब्धता की मात्रा तक सीमित थी और अठारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध काल के पहले उत्पादन की रीतियो मे विशेष विकास नही हुए।

खानों से कोयला निकालने का काम (Coal mining) बहुत कुछ कृषि से सम्बन्धित था और उस पर ग्राम्य स्वभाव की छाप थी। कोयले की खदानो का स्वामित्व और नियन्त्रण भू-स्वामियो के हाथो मे था। खान खोदने वाले उन दिनो तो खानो पर काम करते थे, जब खेती का काम नही होता और फसल पकने पर खुदाई का काम छोडकर चले जाते थे। खुदाई, खानो के भीतर से कोयला हटाने तथा ढुलाई की पद्धतियाँ पुरानी थी जिसमे मनुष्य श्रम सबसे अधिक होता था। खानो के गड्ढो मे पानी भरने की समस्या विकट थी। सन् १६६८ मे टॉमस सेवरी ने खानो का पानी निकालने के लिए एक पम्पिग एंजिन बनाया जिसमे वाष्प का प्रयोग होता था परन्तु इसमे शक्ति बहुत बरबाद होती थी। सन् १७०८ मे टॉमस न्यूकॅमिन (Thomas Newcomen) ने इस दिशा मे एक नए एंजिन का आविष्कार किया जिसमे बाद मे उसने तथा अन्य व्यक्तियो ने और भी सुधार किये। यह एंजिन खानो के अन्दर के पानी को बाहर निकालने के लिए ही था। कोयले का वार्षिक उत्पादन सन् १७००

मे लगभग २५ लाख टन था और सन् १७५० मे ४७३ लाख टन (बाद मे सन् १८०० मे उत्पादन लगभग १ करोड टन और आगे भी वृद्धि होती गई जिसका विवरण अन्यत्र दिया गया है)। यद्यपि सन् १७००-१७५० में भी कई प्रकार के उत्पादन कार्यों मे ईंधन के रूप मे कोयले का उपयोग आवश्यक रूप से होने लगा था परन्तु वस्तुत. १८वीं शताब्दी के बजाय १९ वीं शताब्दी को ही "कोयले का युग" कहा जा सकता है।

ऊनी व्यवसाय के अतिरिक्त अन्य वस्त्र व्यवसाय शैशव काल मे थे। उनके लिए कच्चा माल न्यूनाधिक मात्रा मे आयात करना पड़ता था। कच्चा रेशम चीन, इटली, स्पेन और टर्की से; फ्लैक्स आयरलैंड, बाल्टिक प्रदेश और उत्तरी अमेरिका से; तथा कपास लीवेंट और पश्चिमी द्वीप-समूह इत्यादि मे आयात किये जाते थे। उत्पादन कार्य ऊनी वस्त्र व्यवसाय के समान ही चलता था। सिल्क व्यवसाय का विकास कस्बो मे होने की प्रवृत्ति देखी गई, जैसे स्पिटलफील्ड्स, कावेन्ट्री, नॉर्विच और मैक्लेसफील्ड मे। लिनन और सूती वस्त्र उद्योग विस्तृत रूप मे विकसित हुए परन्तु लंकाशायर जिले मे और स्कॉटलैण्ड के निम्न प्रदेश मे स्थानीयकरण की प्रवृत्ति पाई गई। लंकाशायर जिले मे मानचेस्टर इत्यादि सूती नगरो का विकास होने लगा था। होजरी व्यवसाय का विकास हो रहा था। प्रारम्भ मे मोजो की बुनाई कुटीरो मे हाथो द्वारा होती थी और विशेषतः स्कॉटलैण्ड और वेल्स मे मोजे बुनने का काम अधिक होता था। विलियम ली ने मोजा बुनने के एक फ्रेम (stocking-frame) का आविष्कार किया जिसके बाद यह उद्योग बहुत बढ़ा। डर्बी, नाटिंघम और लीसेस्टर जिलो मे जहाँ मजदूर सस्ते मिलते थे यह काम फैला।

यद्यपि सूती वस्त्र व्यवसाय का विकास प्रारम्भिक अवस्था में ही था परन्तु १८ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे इस उद्योग मे नए नए प्रयोग और विकासोन्मुख परिवर्तन हो रहे थे। सन् १७१७ मे टॉमस लोम्बे ने एक नए प्रकार की सिल्क फैक्टरी स्थापित की जिसका भाई इटली से मशीनो की डिजाइनें लेकर आया था। सन् १७३३ मे लंकाशायर के एक घड़ी-साज जॉन के (John Lay) ने करघे मे सुधार किया। सन् १७३८ मे बर्मिघम के एक डाक्टर के पुत्र ल्यूइस पौल (Lewis Paul) ने कताई मे सुधार का नया विचार प्रस्तुत किया।

ऊपर जिन उद्योग धन्धों की सन् १७००-१७५० की स्थिति का उल्लेख किया है इनके अतिरिक्त अन्य धन्धे, जैसे मकान-निर्माण, जहाज-निर्माण, मछली पकड़ना, चमडा, कागज, छपाई इत्यादि भी थे, परन्तु उत्पादन प्रणाली और व्यावसायिक संगठन इत्यादि की दृष्टि से उनकी स्थिति भी मिलती जुलती थी।

वाणिज्य-व्यापार

उद्योगों का विकास न होने या विकास की गति धीमी होने के कारण केवल यही नही थे कि श्रम विभाजन और आधुनिक प्रकार के यन्त्रो का प्रयोग नही हुआ था, बल्कि यातायात, वाणिज्य और साख की सगठित प्रणाली का भी अभाव था। सन् १७६० के पूर्व आवागमन के साधनो की गिरी हुई अवस्था थी। जल मार्गों का उपयोग भी स्थल मार्गों की कमी के कारण किया गया था। नौकानयन कुछ नदियो मे प्रारम्भ हुआ और सन् १७५५ मे लिवरपूल के समीप एक १० मील लम्बी नौकानयन के लिए नहर खोदी गई जो प्रथम महत्त्वपूर्ण नहर थी। एक दूसरी ७ मील लम्बी नहर सन् १७६० मे वर्सले से मानचेस्टर तक बनाई गई। अधिक नहरो (Navigable Canals) का निर्माण सन् १७६० के उपरान्त ही हुआ।

समुद्री, और नदियों क जलमार्गों द्वारा तटवर्तीय और अन्तःप्रदेशीय व्यापार का भी विकास हुआ। अठारहवी शताब्दी के पूर्व देश का आन्तरिक व्यापार भी अविकसित था। कस्बा मे छोटी छोटी मण्डियां होती थी परन्तु अधिक देशी व्यापार मेलो मे होता था जो समय-समय पर यत्र तत्र होते रहते थे। कुछ घूमने वाले व्यापारी (travelling merchants) होते थे जो इन मेलो मे और औद्योगिक केन्द्रो मे सम्बन्ध स्थापित करते थे।

अधिकोषण (बैंकिंग) का अभी तक अधिक विकास नही हुआ था। बैंक ऑव इंगलैण्ड की स्थापना यद्यपि सन् १६९४ मे हुई थी और सन् १७५१ से इसे राष्ट्रीय ऋण का पूर्ण प्रबन्ध सौप दिया गया था परन्तु सन् १७५० के पूर्व तक अधिकोषण व्यवसाय प्रमुख रूप से लन्दन में सीमित था और सन् १७५९ के पूर्व तक २० पौंड से कम मूल्य का कोई नोट नही निकाला गया था। अन्य बैंको की संख्या सन् १७५० मे लन्दन के बाहर एक दर्जन से अधिक नही थी जिनमें छः से अधिक साझीदार नही हो सकते थे। सन् १७७५ के पहले समाशोधन गृह (clearing house) की स्थापना नहीं हुई थी।

विदेशी व्यापार धीरे धीरे बढ रहा था। उस समय खाद्य सामग्री मे ब्रिटेन आत्मनिर्भर था और सतुलन की दृष्टि से अनाज का निर्यातक था। ब्रिटेन विदेशो से इमारती लकड़ी, लोहा, सन इत्यादि जहाजो और मकानो के निर्माण के लिए, रेशम, रुई और रंग के पदार्थ वस्त्र व्यवसायों के लिए आयात करने के अतिरिक्त चीनी, चाय, शराब, तम्बाखू कहवा इत्यादि भी मँगाता था। ब्रिटेन विविध प्रकार का बना हुआ माल निर्यात करता

था परन्तु निर्यातों में ऊनी माल तथा लोहे और चमड़े की वस्तुएँ मुख्य थी। विदेशों से व्यापार करने के लिए कम्पनियाँ बन गई थी और यद्यपि अधिकांश व्यापार योरुप महाद्वीप के साथ ही होता था तथापि भारतवर्ष, पश्चिमी द्वीपसमूह, उत्तरी अमेरिका तथा अफ्रीका के दूरवर्ती देशों के साथ भी थोड़ी मात्रा में व्यापार हो रहा था। ब्रिटेन की गणना व्यापारिक देशों में की जाने लगी थी।

सन् १७५० तक ब्रिटेन में लोगों का जीवन-स्तर अन्य योरुपीय देशों की तुलना में तथा १८वीं शती के मानदण्ड के अनुसार तो अच्छा था परन्तु आधुनिक युग की दृष्टि से बहुत गिरा हुआ था। "वास्तव में यह काल शीघ्र-गामी आर्थिक प्रगति का समय था" परन्तु औद्योगिक उन्नति की दशाएँ परिपक्व नहीं हो पाई थीं।

प्रश्न

1. Give an account of the economic organisation of England before the advent of the industrial revolution.

2. Briefly describe the agricultural conditions in Britain in 1750.

तीसरा अध्याय

औद्योगिक क्रान्ति

[क्या 'क्रान्ति शब्द उपयुक्त है ? औद्योगिक क्रान्ति का काल, क्रान्ति पहले ही क्यों नहीं हुई ? औद्योगिक क्रान्ति के कारण—सर्वप्रथम ग्रेट ब्रिटेन मे ही क्रान्ति क्यों हुई ? औद्योगिक क्रान्ति की विशेषताएँ, कारखाना प्रणाली के धीमे विकास के कारण, औद्योगिक क्रान्ति के आर्थिक और सामाजिक प्रभाव, उन्नीसवीं शताब्दी मे ग्रेट ब्रिटेन की महत्ता के कारण, प्रश्न ।]

१८ वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध काल मे और १६ वी शताब्दी मे ग्रेट ब्रिटेन मे उद्योग, कृषि, यातायात और वाणिज्य चारो क्षेत्रो मे महान् परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनो को आर्थिक इतिहास के छात्र चार क्रान्तियो (औद्योगिक, कृषि, यातायात और वाणिज्य क्रान्तियो) के नाम से पुकारते है ।

क्या "क्रान्ति" शब्द उपयुक्त है ?

जिन औद्योगिक परिवर्तनो को हम 'औद्योगिक क्रान्ति' कहते हैं उसके विषय मे कभी कभी यह आपत्ति उठाई गई है कि उन्हें 'क्रान्ति' कहना कहाँ तक उपयुक्त है ? यह सत्य है कि जिस काल मे ये परिवर्तन हो रहे थे उस समय के अधिकाश ब्रिटिश नागरिको का उन पर ध्यान भी नही गया । वस्तुतः उद्योग कृषि और वाणिज्य, इत्यादि क्षेत्रो मे परिवर्तन पहले भी होते रहे थे। यदि दूसरी तरह से विचार किया जाये तो उद्योग की घरेलू प्रणाली का कारखाना प्रणाली (factory system) के रूप मे पूर्णतया परिवर्तन हुआ ही नही। इसके अतिरिक्त कभी कभी यह समझा जाता है कि 'क्रान्ति' शब्द का प्रयोग हिंसात्मक आकस्मिक परिवर्तनो के लिए ही किया जाना चाहिए। फ्रान्स मे सन् १७८९ मे और रूस मे सन् १६१७ मे क्रान्तियां हुई । यद्यपि फ्रेंच और रूसी क्रान्तियों के उद्देश्य और ब्रिटिश औद्योगिक क्रान्ति के उद्देश्य लगभग समान ही थे—नव आर्थिक और सामाजिक जीवन का निर्माण—परन्तु फ्रान्स और रूस मे हुई क्रान्तियां हिंसापूर्ण रक्त से सनी हुई और एक निश्चित

समय की थी। आंग्ल औद्योगिक क्रान्ति धीरे धीरे होने वाली और शान्तिपूर्ण थी।

"औद्योगिक क्रान्ति" शब्द (term) को प्रयोग लाने का कार्य सर्वप्रथम ब्लान्की (Blanqui) द्वारा सन् १८३७ मे हुआ, तत्पश्चात् जेवन्स, एन्जिल्स और कार्ल मार्क्स ने भी इस शब्द का प्रयोग किया परन्तु सामान्यतया यह समझा जाता है कि आरनोल्ड तोयनबी ने ही सन् १८८४ मे इस शब्द का प्रयोग किया। जो कुछ भी हो, १८ वी और १९ वी शताब्दी मे होने वाले ब्रिटेन के औद्योगिक परिवर्तनों के लिए 'क्रान्ति' शब्द का प्रयोग उचित और उपयुक्त है। उचित इसलिए है कि इससे लोग ब्रिटेन के तत्कालीन महान् परिवर्तनो को समझने को महत्व दें। वे परिवर्तन इतने व्यापक और प्रभावपूर्ण थे कि एक ओर देश के भौतिक अभ्युदय के रूप मे और दूसरी ओर समाज के कतिपय वर्गों के पीड़न के रूप में उनके परिणाम स्पष्ट थे। उन्होंने निर्माण (manufacture) की विधियो को ही नही बदला वरन् जीवन के ढग, सामाजिक संगठन और दृष्टिकोण को ही बदल दिया। इसीलिए 'क्रान्ति' शब्द उपयुक्त है कि औद्योगिक संगठन और पद्धति मे गम्भीर परिवर्तन हुए। वस्तुतः राजनीति में भी 'क्रान्ति' शब्द का प्रयोग हिंसा और आकस्मिकता की घटना के लिए किया जाना आवश्यक नही है। अहिंसापूर्ण राजनीतिक क्रांतियो के उदाहरण भी मिलते है। क्रांति चाहे औद्योगिक हो अथवा सामाजिक, राजनीतिक या और कोई, उसका अभिप्राय उस विशेष क्षेत्र में आधारभूत परिवर्तन लाना है। नोल्स ने लिखा है कि 'औद्योगिक क्रान्ति" शब्द का उपयोग इसलिए नहीं किया जाता है कि परिवर्तन शीघ्र हुआ बल्कि इसलिए किया जाता है कि परिवर्तन हुआ तो वह मूलभूत था।

औद्योगिक क्रान्ति का काल

औद्योगिक क्रान्ति का निश्चित समय या अवधि बताना बहुत कठिन है। ग्रेट ब्रिटेन में औद्योगिक परिवर्तन क्रान्तिकारी अवश्य थे परन्तु वे शनैः शनैः हुए और उनके पूर्ण होने में एक शताब्दी के लगभग, बल्कि उससे भी अधिक समय लगा। इस विस्तृत समय के सम्बन्ध में भी आर्थिक इतिहास के लेखकगण एकमत नहीं हैं। सामान्यतया औद्योगिक क्रान्ति के आरम्भ का समय १८ वी शताब्दी के मध्य के आसपास और पूर्ण होने का समय उन्नीसवी शताब्दी के अन्त की ओर माना जाता है। साउथगेट ने अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध (१७५०–१८५०) की अवधि को औद्योगिक

क्रान्ति का काल माना है[1]। प्रो० टी० एस० एशटन ने औद्योगिक क्रान्ति का काल सन् १७६० से १८३० तक का माना है।[2] नोल्स ने औद्योगिक क्रान्ति के दो चरण माने है। ब्रिटिश आर्थिक विकास का प्रथम काल सन् १७७० से १८४० तक और द्वितीय काल सन् १८४० से १९१४ तक माना गया है।[3] नोल्स ने लिखा है कि प्रथम चरण मे विकास यातायात के अपर्याप्त विकास के कारण सीमित था; द्वितीय चरण मे रेल मार्गों और वाष्प जलयानो के कारण मशीनरी और उत्पादन मे विशाल रूप से विस्तार हुआ और श्रम-आन्दोलन तथा व्यापारिक सगठन मे समानान्तर विकास हुए।

क्रान्ति पहले ही क्यो नहीं हुई ?

ग्रेट ब्रिटेन मे औद्योगिक क्रान्ति अठारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध के पूर्व ही क्यो नही हुई, इसके अनेक कारण थे। १८वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे भी प्रयास और कुशलता का अभाव नही था परन्तु उनके फलने फूलने मे समय लगा। कुछ प्रारम्भिक आविष्कार अपूर्ण विचार के कारण असफल रहे तथा अन्य की असफलता के कारणो मे उपयुक्त सामग्री का अभाव, श्रमिको की दक्षता अथवा मशीनो को अपना लेने की कमी तथा परिवर्तनों के सामाजिक विरोध को सम्मिलित किया जा सकता है। पर्याप्त मात्रा मे और उचित ब्याज दर पर पूँजी सुलभ न होने के कारण औद्योगिक विकास रुका रहा। विकास के लिए एक विचार की आवश्यकता थी जो इने-गिने मस्तिष्को मे नही बल्कि अधिक लोगो के मनो मे छा जाता, इसकी कमी थी। कठिनाइयाँ एकागी नही थी—कृषि का पिछड़ापन, खानो का अपर्याप्त विकास, अच्छे

---

1. During the second half of the eighteenth century and the first half of the ninteenth British industry underwent great changes—changes so remarkable in character and so extensive that the term Industrial Revolution has been applied to them." —George W. Southgate
—English Economic History, ch. xiv, p. 115.

2. "About 1760 a wave of gadgets over England......... It was not only gadgets, however, but innovations of various kinds......that surged up with a suddenness for which it is difficult to find a parallel at any other time or place.,,
Prof. T. S Ashton : The Industrial Revolution, (1760-1830),chap. III, p. 58

3 Knowles, L.C A : Industrial and Commercial Revolutions, Part II, p. 25.

कोयले की अपर्याप्त पूर्ति, कच्चे माल की कमी तथा यातायात, व्यापार और अधिकोषण मे एकाधिकारियो के प्रभाव के कारण प्रगति की कमी आदि अनेक रुकावटें थी। इन्ही कारणो से सन् १७६० के पूर्व उद्योग के ढांचे, उत्पादन की तकनीकी अथवा लोगो के आर्थिक और सामाजिक जीवन मे 'क्रान्ति' न आ सकी।

औद्योगिक क्रान्ति के कारण

सर्वप्रथम ग्रेट ब्रिटेन में ही क्रान्ति क्यों हुई ?

ग्रेट ब्रिटेन मे औद्योगिक क्रान्ति के कारणो पर विचार करने के सम्बन्ध मे यह बात उल्लेखनीय और महत्त्वपूर्ण है कि औद्योगिक क्रान्ति सर्वप्रथम ग्रेट ब्रिटेन में हुई। ग्रेट ब्रिटेन मे क्रान्ति का सूत्रपात १८वी शताब्दी के मध्य मे हुआ जब कि फ्रान्स मे और संयुक्त राज्य अमेरिका मे १९वी शताब्दी के मध्य के लगभग, जर्मनी मे १८७० के बाद और रूस मे तथा अन्य अनेक देशो मे बीसवी शताब्दी मे हो सका। सन् १७६० के पूर्व ब्रिटेन मे एक करोड़ से कम जनसंख्या थी जब कि उसी समय फ्रान्स मे ढाई करोड़ से भी अधिक थी।[1] इस प्रकार फ्रान्स मे बड़े पैमाने के उत्पादन को अधिक गुंजाइश समझी जा सकती है। फ्रान्स में पूंजी की भी कमी नही थी और अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के आरम्भ मे फ्रान्स के निर्यात और आयात ब्रिटेन के विदेशी व्यापार को तुलना में अधिक थे। उसका औपनिवेशिक और पुनर्निर्यात व्यापार भी विशाल था। तब क्या कारण थे कि औद्योगिक क्रान्ति फ्रान्स से भी पहले ग्रेट ब्रिटेन में हुई। इसके प्रमुख कारणों को तीन भागो मे इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है :—

(क) राजनीतिक और सामाजिक कारण

१. सुरक्षा और शान्ति तथा प्रशासनिक स्थायित्व
२. वैयक्तिक स्वातंत्र्य-स्वतन्त्र-जनसंख्या
३. औपनिवेशिक साम्राज्य
४. कम जनसंख्या
५. साहसी स्वभाव
६. अनुकूल सरकारी नीति और सहायता

---

१. उस समय ब्रिटेन की जनसंख्या ९० लाख और फ्रान्स की २६० लाख के लगभग थी।

(ख) आर्थिक कारण—

७. पूँजी संग्रह और ब्याजदर मे गिरावट

८. बडे और विस्तृत बाजार

९. बडे पैमाने के उत्पादन का अनुभव

१०. कुशल श्रमिकों की पर्याप्त पूर्ति

११. माँग का स्वभाव और उपयुक्त व्यवसायो का चुनाव

१२. कर-प्रणाली

१३. जल मार्गो का विकास, जहाजी यातायात, आन्तरिक और बाह्य यातायात

(ग) भौगोलिक कारण—

१४. प्राकृतिक स्थिति—द्वीपीय, मध्यवर्ती

१५. उत्तम समुद्र तट और बन्दरगाह

१६. उत्तम जलवायु

१७. प्राकृतिक साधन और शक्ति

कारणो पर विस्तार मे विचार करने के पूर्व यह कहना उचित होगा कि ग्रेट ब्रिटेन को अन्य देशो की अपेक्षा कुछ ऐसे राजनीतिक, आर्थिक और भौगोलिक लाभ प्राप्त थे कि औद्योगिक विकास मे वह अगुआ राष्ट्र बन गया। विकास के मार्ग मे एक रोडा जिस प्रकार अन्य कठिनाइयाँ भी पैदा कर देता है उसी प्रकार प्रगति का मार्ग खुलने पर उन्नति का व्यापक क्षेत्र भी मिल जाता है। ब्रिटेन के आर्थिक विकास मे ठीक यही स्थिति थी।

औद्योगिक क्रान्ति सर्वप्रथम ग्रेट ब्रिटेन मे हो हुई इसका मुख्य कारण राजनीतिक थे। सन् १६८८ के पश्चात् ब्रिटेन का सविधान जिन सिद्धान्तो पर स्थापित किया गया था, योरुप के अन्य देशो मे उन्हे १९वीं शताब्दी तक स्वीकार नहीं किया गया। वालपोल (Walpole) की बुद्धिमत्तापूर्ण नीति के कारण देश को राजनीतिक शांति के अतिरिक्त वित्तीय स्थायित्व भी प्राप्त हुआ।[1] ग्रेट ब्रिटेन को १८वी शताब्दी के अनेक युद्धो मे भाग लेना तो पड़ा था परन्तु ब्रिटेन आक्रमणो से बचा रहा था, वे युद्ध योरुप के अन्य देशो अथवा समुद्रो मे या अमेरिका इत्यादि मे हुए थे। अठारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे फ्रान्स मे हुई राजनीतिक क्रान्ति (१७८९) ने फ्रान्स के व्यावसायिक जीवन को

1. Southgate, op. cit., p. 120.

ऐसा तहस-नहस कर दिया कि उसे उसके पुनरुद्धार मे चार दशाब्दियाँ लगी। सन् १८७१ के पूर्व जर्मनी कई राज्यों मे बँटा हुआ था और उसमे इतनी विभिन्न प्रथाएँ थीं कि वह उद्योग और व्यापार का विकास ही नही कर सका। संयुक्त राज्य अमेरिका और रूस इत्यादि अन्य देश भी अपनी राजनीतिक विषम परिस्थितियो मे फँसे हुए थे।

ब्रिटेन के निवासी १६वी शताब्दी से ही व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य का आनन्द भोग रहे थे जिसके अभाव में अन्य अनेक देश औद्योगिक विकास नही कर सके। जिस दासता का अन्त ब्रिटेन मे सोलहवी शताब्दी मे हो चुका था, अधिकांश योरुपीय राष्ट्रों में अठारहवी शताब्दी के अन्त तक दासता के बन्धन शिथिल नही हुए थे। श्रमिक भूमि से वैधानिक रूप से बँधे हो तो खानों और कारखानों मे श्रम की पूर्ति होना सम्भव नही था।

ब्रिटेन को उपनिवेशों और समुद्र-पार मण्डियों का लाभ भी औद्योगिक क्रान्ति का महत्त्वपूर्ण कारण था। इतिहास के छात्रों को विदित होगा कि १७वी और १८वी शताब्दियों मे ब्रिटेन, फ्रान्स, स्पेन, पुर्तगाल और हालैण्ड भारतवर्ष और सुदूर पूर्व तथा अन्य समुद्र पार देशो मे मण्डियों पर अधिकार प्राप्त करने के प्रयत्न मे संघर्ष करते रहे थे। ब्रिटेन विजयी हुआ और अपने उपनिवेशो तथा साम्राज्यगत देशो की मण्डियो पर उसने एकछत्र अधिकार पा लिया। इनमे ब्रिटेन अपना बना हुआ माल बेच सकता था (ब्रिटेन के राजनीतिक प्रभुत्व के कारण अन्य देशो को उनमे यह लाभ नही मिलने दिया गया) और वहाँ से कच्चा माल प्राप्त कर सकता था।

पाठक भूले न होंगे, यह ऊपर कहा जा चुका है कि अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे ब्रिटेन की जनसंख्या फ्रान्स की जनसख्या की एक-तिहाई के लगभग थी। जनसंख्या की कमी औद्योगिक क्रान्ति मे इस तरह सहायक सिद्ध हुई कि ब्रिटेन को अपने बढते हुए विदेशी व्यापार के लिए मशीनरी का प्रयोग नितांत आवश्यक हो गया क्योंकि बढी हुई माँग को हाथ के काम से पूरा करना सम्भव नही था। फ्रान्स की जनसंख्या ब्रिटेन की तिगुनी के लगभग थी जबकि उसका विदेशी व्यापार सवा गुने से अधिक नही था। परिणामत. फ्रान्स उद्योग की घरेलू प्रणाली से शीघ्र ऊँचा नही उठ पाया।

ग्रेट ब्रिटेन के लोगों का साहसी स्वभाव (enterprising nature) भी इस दिशा में सहायक सिद्ध हुआ अन्यथा वे समुद्र पार हजारो मीलो दूर बिल्कुल भिन्न प्रकार के देशो मे उत्पादन और व्यापार कार्य करने का विचार भी नही

करते । उनमे लगनशीलता थी, वे परिश्रमी और ईमानदार थे और उनमें यह दृढ विचार था कि वे अपने देश की समृद्धि मे अवश्यमेव वृद्धि करेंगे।

ब्रिटेन की सरकारी नीति, जिसका विस्तृत वर्णन अन्यत्र किया जाएगा, सभी दिशाओ मे इस प्रकार की थी कि देश के औद्योगिक और व्यापारिक विकास में प्रोत्साहन मिले ।

आर्थिक कारण—उपर्युक्त राजनीतिक और सामाजिक कारणो के अतिरिक्त आर्थिक कारण भी कम प्रभावशाली नही थे। आर्थिक कारणो मे प्रमुख पूंजी की पर्याप्त पूर्ति थी। पूंजी के अभाव मे औद्योगीकरण के मार्ग मे भारत को तथा अन्य अनेक राष्ट्रों को जो कठिनाइयाँ रही हैं ब्रिटेन को नही थी। ब्रिटेन की औद्योगिक क्रान्ति अनेक नये आविष्कारों के कारण हुई जिनके बिना वहाँ उद्योग के विकास की गति निश्चय ही धीमी रहती और ये आविष्कार बिना पूंजी साधनों के सम्भव नही थे और पूंजी की कमी की अवस्था मे बडे पैमाने पर उनका प्रयोग भी सम्भव नही था। बचतो को नये प्रकार के जोखिम वाले व्यवसायो मे लगाने की तत्परता के कारण ही यह सम्भव हुआ कि ब्रिटेन अपने परिश्रम का फल चख सका।

ब्रिटेन मे पूंजी संचय के सम्बन्ध मे बहुधा विरोधी मत दिये जाते हैं। वस्तुतः ग्रेट ब्रिटेन में पूंजी का विकास अनेक कारणो से हुआ था। वहाँ के नागरिको ने कृषि के लाभो को उद्योग मे विनियोग करना प्रारम्भ किया था और कृषि मे पूंजीवादी पद्धति प्रारम्भ की गई थी। उपनिवेशों मे आग्ल निवासियो ने कृषि करके लाभ कमाये थे। समुद्रपार देशो और उपनिवेशो के साथ व्यापार करके भी वे पहले से ही लाभ कमा रहे थे। कुछ लेखको का यह कहना है कि प्राथमिक उद्योगो से पूंजी निर्मायक (manufacturing) उद्योगो की ओर बह रही थी परन्तु यह भी सत्य है कि यदि पूंजीपति उद्योगो मे हुए लाभो को उद्योगों के विकास के लिये ही फिर न लगाते (जिसे "ploughing back" या "green manuring" industry कहा जाता है) तो उसके अभाव मे विकास की प्रगति द्रुत नहीं हो सकती थी। बैंको का विकास भी इस दिशा में अनुकूल सिद्ध हुआ।

देश-विदेश में बाजारो के विस्तार के साथ साथ ब्याज-दर में गिरावट हो जाने से विनियोग के लिए प्रोत्साहन मिला।[1] यह पहले ही बताया जा चुका

1. See Ashton, op. cit., p. 58.

है कि ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व ही विदेशी व्यापार काफी बढ चुका था। उपनिवेशो और साम्राज्यगत देशो मे ब्रिटेन को मंडियो की सुविधा पहले से ही प्राप्त थी। वस्तुतः अपने बढते हुए व्यापार के कारण ही ब्रिटेन औद्योगिक क्रान्ति की ओर अग्रसर हुआ।

बड़े पैमाने पर कारोबार चलाने का अनुभव ब्रिटेन को पहले से ही था। ऊनी उद्योगो मे वह बहुत प्रगति कर चुका था। अतएव अन्य वस्त्र उद्योगो के लिए पर्याप्त मात्रा मे कुशल श्रमिक भी मिल गये और १६वी शताब्दी के अन्त मे ही मनोरियल प्रणाली के पतन के उपरान्त गाँवो के बेरोजगार लोग शहरों मे आकर बस गये थे और अकुशल (unskilled) श्रमिक सस्ती मजदूरियों पर सुलभ थे। घरेलू प्रणाली के उद्योगो मे लगे मजदूर भी नगरो में आने लगे थे।

ब्रिटेन के व्यवसायियो ने अपने अनुभव से यह बात जान ली थी कि वस्त्र तथा अन्य वस्तुएँ सीधी-सादी भले ही हो परन्तु सस्ती होनी चाहिएँ। १८वी शताब्दी में ब्रिटेन के नागरिको की माली-हालत सामान्यतया ऐसी थी कि हाथ की बनी महँगी वस्तुओं की अपेक्षा सस्ती वस्तुओं की उन्हे आवश्यकता थी और यह खुला सत्य है कि हरेक व्यक्ति ऐसी वस्तुएँ जिनके ऊपर उसे आय का अधिक भाग व्यय करना पड़ता है सस्ती मिलने पर जीवन की अधिक आवश्यकताओं की संतुष्टि के द्वारा लाभान्वित होता है—जिसे ऊँचा जीवन-स्तर कहते हैं। इसीलिए ब्रिटेन के उद्योगपतियो ने ऐसे व्यवसाय ही विकास करने के लिए चुने जिनमे बड़े पैमाने की बचतें मिलती है और जिनकी वस्तुएँ जनसाधारण की आवश्यकताएँ होती हैं। यह स्मरणीय है कि ब्रिटेन मे जिस काल मे औद्योगिक क्रान्ति हुई लगभग उसके साथ साथ कृषि मे भी क्रान्ति हो रही थी, जिसके कारण कृषको की स्थिति सुधरी और किसानो को आवश्यक्ताओं मे वृद्धि हुई थी, जिसके लिए उद्योगो का विकास किया जा सकता था।

ब्रिटेन की कर-प्रणाली भी ऐसी थी कि उससे व्यापार और उत्पादन में बाधा नही, प्रोत्साहन मिला। ब्रिटेन मे घरेलू व्यापार आन्तरिक करों से मुक्त था, जबकि फ्रान्स और जर्मनी मे अनेक प्रकार के स्थानीय कर लगे हुए थे।

इसके अतिरिक्त यह उल्लेखनीय है कि यदि ब्रिटेन मे यातायात के क्षेत्र में विकास न हुए होते तो औद्योगिक विकास भी असम्भव था। ब्रिटेन मे देशीय बाजारों का विकास नदियो, नहरो और स्थल यातायात मे विकास

के कारण हुआ और अन्य देशो की अपेक्षा उसने समुद्री जहाजी यातायात मे काफी प्रगति कर ली थी जिसके कारण विदेशी मंडियो में उसकी पहुँच सरल हो गई थी। उसकी जहाजी नीति भी औद्योगिक विकास की दिशा में महत्वपूर्ण रही। दासता का अन्त हो चुका था इसलिए गमनागमन पर रुकावटें भी नही रही थी।

भौगोलिक कारण— ब्रिटेन की औद्योगिक उन्नति मे प्राकृतिक सुविधाओ का हाथ भी अधिक रहा है। ग्रेट ब्रिटेन की स्थिति द्वीपीय और मध्यवर्ती है तथा उसकी सीमा प्राकृतिक है। समुद्री यातायात का विकास उसकी द्वीपीय स्थिति और कटे-फटे समुद्रतट के कारण ही हुआ जिससे व्यापार तथा उद्योग के विकास का द्वार खुल गया। एक ओर उसे समुद्री शक्ति बढाने मे सुविधा हुई, दूसरी ओर सुरक्षा की। दोनो ही औद्योगिक समृद्धि मे सहायक हुए।

ऊँचे अक्षाशो मे समुद्र मे स्थिति और गरम जलधारा (गल्फ स्ट्रीम) के सयोग के कारण ब्रिटेन की जलवायु भी उत्तम है जिसके कारण श्रमिको की कार्यक्षमता, वस्त्र व्यवसाय, मछली उद्योग और कृषि पर अनुकूल प्रभाव पड़े हैं। ब्रिटेन का समुद्र और नदियो के जलमार्ग जमते नही है, मछलियाँ सड़ती नही हैं, धागा टूटता नही है और मजदूर परिश्रम से घबराते नही हैं।

इनके अतिरिक्त ग्रेट ब्रिटेन के औद्योगिक विकास मे एक महत्वपूर्ण बात यह थी कि उसे प्रचुर प्राकृतिक साधन प्राप्त थे। यह आज सर्वविदित है कि लौह-उद्योग के विकास के बिना अन्य उद्योगो का विकास असम्भव नही तो बहुत कठिन अवश्य है। लौह-उद्योग के विकास के लिए उसके साधन पर्याप्त थे। लौह पिघलाने की शक्ति के लिए ब्रिटेन मे पर्याप्त कोयला था, उसकी कोयले की और लोहे की खानें पास पास थी तथा वेल्स, नार्थम्बरलैंड और स्कॉटलैंण्ड मे समुद्रतट के समीप थी जिसके कारण यातायात मे सुगमता थी। वहाँ मशीनें और वाष्प ऐंजिन (Steam engines) बनाने के लिए पर्याप्त लोहा था और लोहा गलाने के लिए कोयले की कमी नही थी। और जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, इस सबके लिए साहस और पूँजी की भी कमी नही थी। तब क्या था, नये नये प्रयोग (experiments) हुए, आविष्कार किये गये[1]

---

१. संसार मे सर्वप्रथम इंगलैण्ड मे हुए आविष्कार तथा फ्रेंच क्रान्ति से सम्बन्धित फ्रान्स का आर्थिक स्वतन्त्रता का विचार, ये दो महान् शक्तियाँ थी जिन्होंने १८वी और १९वी शताब्दी मे ग्रेटब्रिटेन के आर्थिक विकास पर अत्यधिक प्रभाव डाला।

मशीनें बनी तो एक के बाद एक उद्योग विकसित होते गये।

निस्सन्देह ब्रिटेन मे औद्योगिक क्रांति के किसी एक या दो कारणों को महत्त्व नही दिया जा सकता, सभी कारणो के सम्मिलित प्रभाव से ही वहाँ 'क्रांति' हुई जिसने ग्रेट ब्रिटेन को औद्योगिक राष्ट्रों का अगुआ और एक महान् राष्ट्र बना दिया।

औद्योगिक क्रान्ति की विशेषताएँ

औद्योगिक क्रांति के अन्तर्गत वे सब महान् परिवर्तन सम्मिलित किये जाते हैं जो इस आन्दोलन के कारण औद्योगिक संगठन प्रणाली और रीतियों में हुए। औद्योगिक क्रान्ति की विशेषताओं को उसके "परिणामो" से भिन्न समझने मे कठिनाई अवश्य होती है क्योकि एक-दूसरे की परस्पर प्रतिक्रिया होने के कारण कारणों और परिणामो मे अन्तर बतलाना कठिन होता है।[1]

जनसंख्या में वृद्धि, विज्ञान का उद्योग मे प्रयोग, गहराई और विस्तृत रूप में पूँजी का उपयोग, ग्राम्य जनसंख्या का नगरी समुदायों मे परिवर्तन तथा नये सामाजिक वर्गों का विकास, मुख्य रूप से ये परिवर्तन हैं जो प्रायः औद्योगिक क्रान्तियो में सर्वत्र देखे गए हैं। परन्तु एशटन का कथन है कि भिन्न भिन्न स्थानो तथा समय सम्बन्धी परिस्थितियों के अनुसार आन्दोलन की गतिविधि प्रभावित हुई है।[2] ग्रेट ब्रिटेन मे कीमतो के रुख, नीति सम्बन्धी परिवर्तनो और परिवहन (transport) में होने वाले सुधारों का भी इस प्रसङ्ग मे ध्यान रखा जाना चाहिए। ब्रिटेन की औद्योगिक क्रांति मुख्यतया कोयले, लोहे और परिवहन की शक्ति से जुड़ी हुई थी। ज्योंही ब्रिटेन मे वाष्प शक्ति का उद्योग मे प्रारम्भ किया गया, विकास का द्वार खुलता गया।[3]

वाष्प (steam) के लिए कोयले की आवश्यकता हुई और कोयले का महत्व बहुत बढ़ गया। यही नही कोयला-क्षेत्रों के समीप जनसंख्या का घनत्व बहुत बढ़ गया। वाष्प शक्ति का प्रयोग लोहे की मशीनो मे ही किया जा सकता था अतः इंजीनियरिंग और लौह उद्योगों का विकास हुआ। रसायनिक

---

1. "The Industrial Revolution is to be thought of as a movement, not as a period of time ..... its character and effects are fundamentally the same."
—Prof. T. S Ashton, op. cit., chap. VI, p. 142.

2. "But in each case the course of the movement has been affected by circumstances of time and place." —Ibid, p. 142.

3. Knowles : Industrial and Commercial Revolutions p.17

उद्योगो की स्थापना भी लगभग साथ-साथ ही हुई जिससे कोयले का महत्व और भी बढ़ गया। परिवहन की रीतियो मे सुधार हुए बिना कोयला, लोहा तथा लोहे की भारी वस्तुओ को ढोना सम्भव नही था अतः यातायात के नये साधनो का विकास हुआ। वस्तुतः प्रारम्भिक विकास होने पर कोयला, लोहा, वाष्प, रसायनिक पदार्थ, मशीनरी और यातायात के सुधरे हुए साधन, सबका एक दूसरे की उन्नति पर प्रभाव पड़ा।

नोल्स के शब्दो मे "तथाकथित 'औद्योगिक क्रांति' मे छः महान् परिवर्तनो अथवा विकासो का समावेश हुआ जो एक दूसरे पर निर्भर थे।"[1] ये परिवर्तन निम्नलिखित थे:—

१. इन्जीनियरिंग का विकास—वाष्प एंजिन बनाने और उनकी मरम्मत करने के लिए, वस्त्र उद्योगो की मशीनें बनाने के लिए, खानो से कोयला निकालने की मशीनो तथा औजारो और लोकोमोटिव इत्यादि के बनाने के लिए इंजीनियरो की आवश्यक्ता हुई और इंजीनियरिंग उद्योगो का विकास हुआ।

२. लोहा-इस्पात व्यवसाय का विकास—इंजीनियरिंग के लिए पर्याप्त मात्रा में अच्छी किस्म का लौह बनाने (iron making amd smelting) की आवश्यक्ता थी। अतः लोहा बनाने मे हुई क्रान्ति दूसरा विकास था जो लगभग मशीनें बनाने के पहले हुआ। यह स्मरणीय है कि लोहे के कारखानों का विकास शायद असम्भव था यदि पहले से होते आ रहे युद्धो के कारण लोहे की अधिक मांग न हुई होती और साथ ही वाष्प शक्ति और वाष्प-इंजन का विकास न हुआ होता।

३. वस्त्र व्यवसायों का विकास—तीसरा परिवर्तन या विकास तब हुआ जब वस्त्र उद्योगो मे यन्त्रो की शुरुआत हुई। पहले कताई की मशीनें चली और जब सूत की अधिकता होने लगी तो उस सूत का उपयोग करने के लिए शनैः शनैः बुनने का यन्त्र प्रचलन मे आया। पहले सूती वस्त्र उद्योग मे मशीनो का प्रयोग हुआ और फिर ऊन, फ्लैक्स और सिल्क उद्योगो मे।

---

1. "The so-called 'Industrial Revolution' comprised six great changes or developments all of which were interdependent.' —Knowles, L. C A.. Industrial Commercial Revolutions, Part II Industrial Revolution caused by Machinery, p. 20.

४. रसायनिक व्यवसायों का विकास—वस्त्र उद्योगो के विकास से चौथे प्रकार के विकास की आवश्यकता हुई। वस्त्र उद्योगों की प्रगति के समानान्तर धुलाई (bleaching), रङ्गाई (dyeing), फिनिश करने (finishing) और छपाई (printing) में उन्नति आवश्यक थी। इस प्रकार रसायनिक उद्योगों की रचना हुई। पहले से ही स्थापित और विकसित हो रहे इंजीनियरिंग उद्योगो से रसायनिक उद्योगो के विकास मे सहायता मिली।

५. कोयले की खानों के काम का विकास (Coal Mining)—कोयले की खानों के काम का विकास औद्योगिक क्रान्ति में समाविष्ट पाचवाँ मुख्य परिवर्तन था। कच्चा लोहा गलाने के लिए भट्टियों में कोक के रूप में कोयले की आवश्यकता थी, पिग आयरन से इस्पात बनाने के लिए और वाष्प उत्पन्न करने के लिए भी कोयले की आवश्यकता थी। अतः कोयले की खानों का विकास हुआ। यह भी सत्य है कि यदि खानो से पानी निकालने के लिए स्टीम पम्पिङ्ग इंजन का आविष्कार न हुआ होता तो खान-उद्योग का इतना विकास सम्भव नहीं हो पाता। इन सबके लिए पूँजी की भी आवश्यकता थी। वस्तुतः सन् १६६४ मे बैंक ऑव इंगलैण्ड की स्थापना के बाद विकास कार्य प्रारम्भ होने लगा था।

६. यातायात के साधनों में विकास—कारखानो में बडे पैमाने पर मशीनरी का उत्पादन, ब्लास्ट भट्टियों में लोहे का उत्पादन, इंजीनियरिंग उद्योगों और रसायनिक कारखानों की स्थापना और कोयले की खदानो का कार्य सम्भव ही नही होता यदि परिवहन की रीतियो में भी साथ साथ सुधार न होता जिसके कारण कोयले और लोहे की खानों पर श्रमिको के लिए भोजन पहुँचाने, कच्ची धातुएँ, ईंधन, कच्चे माल और अन्य सामग्री को ढोने की सुगमता हो गई तथा बने हुए माल के वितरण के ढंग मे भी उन्नति हुई।

वस्तुतः, जैसा कि नोल्स ने लिखा है, दो अवधियो में परिवहन के साधनों की अवस्थाओं के अनुसार औद्योगिक क्रान्ति के दो युग थे।[1] औद्योगिक क्रान्ति के प्रथम युग या चरण मे सडकों और आंतरिक जलमार्गों का विकास हुआ। और वह मुख्यतः कोयला और लोहे की खानो, इंजीनियरिंग उद्योगो तथा कपड़े के कारखानों के प्रारम्भिक विकास से सम्बन्धित है। द्वितीय चरण मे वाष्प से चलने वाले जलयानो और रेलो के चालू होने के साथ-साथ मशीनरी और

१. इसका संकेत पहले ही इस अध्याय मे "औद्योगिक क्रान्ति का काल" शीर्षक के अन्तर्गत किया जा चुका है।

उत्पादन मे बहुत विस्तार हुआ। यातायात के विकास का व्यापारिक संगठन के स्वरूपो तथा श्रम आन्दोलन पर क्रमिक प्रभाव पड़ा जैसा कि निम्न तालिका से विदित होगा[१] :—

अवधि (Periods)	प्रभावित उद्योग (Trades affected)	व्यापारिक संगठन का स्वरूप	श्रम आन्दोलन (Unions)
(१) पक्की सडको और नाव्य नहरो का काल (१७७०-१८४०)	सूती वस्त्र, ऊनी वस्त्र उद्योग, इंजीनियरिंग और धातु संबधी उद्योग, खनिज उद्योग, रसायनिक उद्योग,	एकाधिकारी व्यापारी या पारिवारिक फर्म। साझेदारी	स्थानीय सघ। मैत्री समितियाँ। श्रम संघ आदोलन मे क्रातिपूर्ण प्रारम्भ।
(२) रेलमार्गो तथा वाष्प जलयानो का काल (१८४०-१९१४)	अन्य उद्योगो मे मशीनरी का विस्तृत प्रयोग। नये उद्योगो का विकास— पोत-निर्माण, रेल्वेज, एसिड और बेसिक स्टील, बिजली के सामान।	संयुक्त पूँजी वाली कम्पनियाँ तथा संयुक्त पूँजी वाली बैंकें। एकीकरण और समामेलन का विकास: (क) राष्ट्रीय (ख) अत र्राष्ट्रीय। मिलन (combinations) बैंको में समामेलन।	एक एक उद्योग मे राष्ट्रीय श्रम सघ। विभिन्न उद्योगो के राष्ट्रीय फैडरेशन। अन्तर्राष्ट्रीय क्रिया।

इस प्रकार यातायात के विकास के प्रथम काल मे औद्योगिक क्रान्ति अपूर्ण और विकास सीमित रहा और यातायात की उन्नति के दूसरे प्रहर मे पूर्ण हुआ।

---

१ Knowles, L C. A., op cit., p. 25.

कारखाना प्रणाली के धीमे विकास के कारण (Slow Progress of the Factory System)

यह कहा जा चुका है कि औद्योगिक क्रान्ति के पूर्ण होने मे एक शताब्दी से भी अधिक समय लगा। औद्योगिक क्रान्ति की विशेषताओ मे सम्मिलित एक विशेषता यह भी थी कि उद्योग मे पूँजी का अधिक प्रयोग, मशीनो, श्रम विभाजन तथा बडे पैमाने का उत्पादन आरम्भ हुआ। संक्षेप मे ये कारखाना प्रणाली की विशेषताएँ हैं। औद्योगिक क्रान्ति उद्योग मे घरेलू प्रथा (Domestic System) के *स्थान पर कारखाना प्रणाली लाई।*

ग्रेट ब्रिटेन मे घरेलू प्रणाली के स्थान पर कारखाना प्रणाली की स्थापना इतनी धीरे धीरे हुई जितनी अन्य देशों मे बाद मे कहीं नही हुई। इसका मुख्य कारण यह था कि जहाँ ब्रिटेन ने अपने प्रयोग छोडे वहाँ अन्य देश आरम्भ कर सके। उन्होंने औद्योगिक विकास का कार्य प्रायः रेल मार्गों के विकास के साथ साथ किया जिससे परिवर्तन शीघ्र सम्भव हो सके।[1] नोल्स ने लिखा है कि यद्यपि परिणामतः औद्योगिक दशाओ मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए परन्तु वे अचानक नहीं हुए।

कारखाना प्रणाली के धीमे विकास के कारण क्या थे? नोल्स ने इसके चार प्रमुख कारण बताये हैं—

(१) श्रमिकों की घरेलू धधों को छोड़ने के प्रति उदासीनता—जैसा कि अन्यत्र बताया जा चुका है घरेलू प्रणाली का विकास मनोरियल प्रणाली और गिल्ड प्रणाली के पतन के उपरांत हुआ था। इसके अन्तर्गत श्रमिक स्वच्छन्दता की सांस ले सकते थे। उसे पूँजीपति मालिक (employer) के स्थान पर बैठ कर काम नहीं करना पड़ता था बल्कि कृषि के साथ साथ खाली समय मे अपने परिवार के सदस्यो की सहायता से अपनी रुचि के अनुसार कम या अधिक काम कर सकता था। घरेलू प्रणाली के भी दोषो और कारखाना प्रणाली के भी अनेक गुणों की अपेक्षा श्रमिकों मे उस समय घरेलू धन्धों के प्रति लगाव था। और जब कारखाना प्रणाली चालू हुई तो एक दम नही हो गई—पहले घरेलू औजारो मे सुधार देखे गए जैसे कताई के लिए जैनी और बुनाई के लिए फ्लाइंग शटल, फिर जब कारखाने खुले तो वे छोटे छोटे थे

1. "In no country was the transition so slow as in this country. Other nations were able to begin where Great Britain left off in her experiments......"

—Knowles, L. C. A., op. cit., p. 78.

और उनमे श्रमिको को ऐसे समूहो मे रखा जाता था कि काम की देखभाल हो सके और श्रमिको के लिए सामान चुराना सम्भव न हो, तब श्रमिको की कमी की दशाओ मे नये सुधरे हुए यन्त्र काम मे आये और बड़े बड़े कारखाने स्थापित हुए।

(२) **फैक्टरी उत्पादन की दिशा में मालिको (employers) की उदासीनता**—घरेलू प्रणाली के अन्तर्गत थोडी सी पूँजी लगाकर भी पूँजीपति को श्रमिको के ऊपर प्रभुत्व प्राप्त था और लाभ भी कम नही थे। दूसरी ओर कारखाना प्रणाली मे महँगी मशीनें खरीदनी पड़ती, काम के लिए फैक्टरी की इमारत ऊँची लागत पर बनवानी पडती अथवा भारी किराया देना पड़ता, कोयला, रोशनी, ढुलाई इत्यादि की व्यवस्था करनी पड़ती और प्राय: बैंक से ब्याज पर पूँजी उधार लेनी पडती। इस पर भी भारी जोखिमे थी—मजदूर काम पर ही न आते, काम बीच मे ही छोड देते और झगड़े हो जाते। आरम्भ मे उत्पादन की वह स्थिति तो थी नही कि पूँजी का शीघ्र उलटफेर सम्भव होता, अतः साहसी कारखाना प्रणाली की दिशा मे उदासीनता धारण किये था। परन्तु साथ ही फैक्टरी प्रणाली के लिए प्रोत्साहन भी मिलते गये, यथा, श्रमिको के साथ झगडे होने पर सुधरे हुए यन्त्रो के प्रयोग के लिए। बुनाई के काम मे पूँजीपति नई मशीनो का उपयोग करने मे अधिक हिचकिचाते भी नही थे।

(३) **जनसंख्या में वृद्धि**—मशीनरी के उपयोग मे आने में देरी का एक मुख्य कारण यह था कि १६ वी शताब्दी मे जनसख्या मे वृद्धि हुई जिससे सस्ते श्रमिक अधिक सख्या मे सुलभ हो गये और मशीनरी की शुरुआत करने की आवश्यकता तीव्र नही रह गई। जनसख्या मे वृद्धि के अनेक कारण थे जिनमे प्रमुख ये हैं: (क) १६वी और १७वी शताब्दी मे इंगलैण्ड मे फैली हुई अनेक महामारियाँ १८वी शताब्दी मे समाप्त प्राय: हो गई थी; (ख) गिल्ड प्रणाली के अन्तर्गत प्रशिक्षण काल (apprenticeship period) मे विवाह पर प्रतिबन्ध थे। विभिन्न कार्यो के अनुसार प्रशिक्षण काल २१ वर्ष से २४ वर्ष की आयु मे समाप्त होता था जिसमे शिक्षार्थी (apprentices) विवाह नही कर सकते थे। सन् १७२० के बाद इस प्रथा का पतन होता गया और सन् १८१३ मे प्रशिक्षण (apprenticeship) समाप्त कर दिया गया। (ग) बुद्धिमानी की दृष्टि से भी श्रमिको के लिए विवाह करना और सतानें होना बुरा नही था, क्योंकि प्रारम्भ मे परिवार मे जितने अधिक सदस्य होते माता-

पिता को उतनी ही अधिक मदद मिलती या सन्तानो को फैक्टरी मे काम मिल जाने के कारण मजदूरियो से कुल आय अधिक होती, (घ) फैक्टरी प्रणाली प्रारम्भ होने के साथ-साथ श्रमिकों को गाँवो की अपेक्षा शहरो और कस्बो मे अलग-अलग मकान और छोटे परिवार होने से (privacy) भी अधिक मिली, (ड) चिकित्सा विज्ञान मे उन्नति और खाद्यान्नो की पूर्ति मे वृद्धि के साथ साथ बच्चों की ही मृत्यु दरो मे कमी नहीं हुई वरन् जीवन के दृष्टिकोण मे ही आशा की किरण फूटने लगी थी। अनुमानतः ग्रेट ब्रिटेन का जनसख्या सन् १७५० मे साठ लाख के लगभग थी, सन् १८०१ की जनगणना के अनुसार यह ६० लाख हो गई, सन् १८५१ तक दुगुनी हो गई और सन् १६०१ तक उसकी भी दुगुनी हो गई।

(४) लोह इंजीनियरिंग तथा कोयला की खानो के उद्योगों में विकास की मन्द गति—यों तो युद्ध सामग्री की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लोहे की वस्तुएँ पहले से ही बनाई जा रही थी परन्तु मात्रा की दृष्टि से तथा अशुद्धियो को दूर करने की दृष्टि से लौह उद्योग के विकास मे काफी समय लगा। इस उद्योग मे लकड़ी के बजाय कोयले का उपयोग अब्राहम डर्बी ने ब्रिस्टल मे सन् १७०६ मे किया परन्तु सन् १७६० तक इसका अधिक प्रचलन नहीं हुआ और व्यावसायिक रूप मे लोहे को शुद्ध करने मे कोयले का सफल उपयोग सन् १७८३-८४ मे कॉर्ट (Cort) के द्वारा ही हो पाया। अधिक मात्रा मे लोहे का उत्पादन करने के लिए कोयले की आवश्यकता हुई परन्तु कोयला-खान उद्योग का विकास भी बहुत धीरे-धीरे हुआ। खान उद्योग का मुख्य समस्या गड्ढो मे पानी भर जाने की थी और उनमे श्रमिक कृषि से बचे हुए समय मे ही मिलते थे। यातायात का अपर्याप्त विकास भी बहुत बड़ी कठिनाई थी। इन सब कारणो से लौह उद्योग कोयला खान उद्योग के साथ ही धीरे-धीरे हो उठ सका। परिणामस्वरूप इंजीनियरिंग उद्योगो का विकास भी मन्द गति से हुआ। मशीनो का प्रयोग सर्वप्रथम सूती वस्त्र उद्योग में हुआ, अन्य उद्योगों मे बहुत बाद मे हुआ। स्टीम इंजन के प्रयोग और विकास मे भी काफी समय लगा।

नोल्स ने औद्योगिक परिवर्तनो की धीमी गति के विषय मे लिखा है, "मशीनरी के आगमन मे मशीनो की कमी और उनका असन्तोषजनक होने से ही बाधा नही हुई बल्कि फैक्टरियो में काम करने के प्रति श्रमिको की अरुचि, उन व्यक्तियो द्वारा जो मशीनो से घायल हो जाने से डरते थे विद्रोह तथा

मशीनें तोड़े जाने की संभावना, जनसंख्या में वृद्धि होने से मजदूरों की सख्या में वृद्धि जो फैक्टरी की अपेक्षा घरेलू कार्य अधिक पसन्द करते थे, इन सबका समदिशाई प्रभाव हुआ।"[1]

सन् १८४० तक ग्रेट ब्रिटेन कृषि प्रधान देश की अपेक्षा एक औद्योगिक देश हो गया था। सन् १८४० वह वर्ष कहा जा सकता है जिसमें कोई व्यक्ति सन् १७५० वर्ष की दशाओं से तुलना करके अन्तर स्पष्ट रूप से समझ सकता था। मालगाडी द्वारा माल ढोने की मात्रा,खान खुदाई मे गहराई और उत्पादन, भट्टियो के उत्पादन की मात्रा, वाष्प शक्ति का प्रयोग, बडे पैमाने का उत्पादन, सभी दृष्टियो से सन् १८४० तक विकास की गति स्पष्ट हो गई थी और ग्रेट ब्रिटेन उस दिशा मे कदम बढ़ा रहा था जिधर अभ्युदय, समृद्धि और महानता हाथ फैलाये हुए थे। उसकी प्रगति धीमी परन्तु दृढ़ थी।

औद्योगिक क्रान्ति के आर्थिक और सामाजिक प्रभाव (Economic and Social Effects of the Industrial Revolution)

"औद्योगिक क्रान्ति" शब्द का उपयोग इसलिए नहीं किया जाता कि परिवर्तन की गति-विधि शीघ्र थी बल्कि इसलिए किया जाता है कि परिवर्तन हुआ तो वह मूलभूत था।[2] इस परिवर्तन के आर्थिक और सामाजिक परिणाम मुख्यया अधोलिखित हैं—

(१) **नए उद्योगों का विकास**—जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, नए व्यवसायो का जन्म हुआ, जैसे इंजीनियरिंग उद्योग, रसायनिक उद्योग, इत्यादि। बडे-बडे व्यवसायो के साथ साथ छोटे छोटे सहायक उद्योगो का भी विकास हुआ।

(२) **वाणिज्य में क्रान्तिकारी परिवर्तन**—उद्योगो के जन्म और विकास के साथ ही अथवा उसके परिणामस्वरूप वाणिज्य मे महान् परिवर्तन हुआ।

---

1. 'Not merely was the coming of machinery retarded by the deficiency of machines, their unsatisfactory nature, but the dislike of the hands to work in factories, the possibility of riots and machine-breaking by those who thought they would be injured, and the increase of population which provided a large number of hands always more ready to take up home wotk than factory work, all worked in the same directions." —Knowles, op. cit, p. 77.

2. Knowles, op. cit., p. 79.

ग्रेट ब्रिटेन बड़े पैमाने के उत्पादन और विश्व विनिमय का केन्द्र बन गया। ब्रिटेन कच्चे मालों के लिए समुद्रपार देशों पर निर्भर होने लगा जैसा पहले नहीं था। अब वह, उदाहरणार्थ, कपास और ऊन विदेशों मे मँगाने लगा और अपने बने हुए माल की बिक्री के लिए उन देशों पर निर्भर होने लगा। उन्नीसवी शताब्दी मे वह भोजन सामग्री के लिए धीरे धीरे विदेशो पर निर्भर होता गया। बदले मे उसने कोयला, निर्मित वस्तुओं तथा जहाजी और वित्तीय (Shipping and financial) सेवाओं का निर्यात किया। विनिमय का पैमाना इतना बढा कि पहले स्वप्न मे भी जिसकी कल्पना नही थी। नई नई और भारी भारी वस्तुएँ व्यापार मे आई और विदेशी व्यापार का एकदम नवीन स्वरूप दिखाई देने लगा। आयात निर्यात व्यापार मे वृद्धि के कारण ही विदेशी विनिमय (foreign exchange) का विकास हुआ।

(३) **नए जिलों का महत्व**—सन् १७५० से पूर्व इगलैण्ड के दक्षिणी जिले घनी और महत्त्वपूर्ण समझे जाते थे परन्तु अब उत्तरी जिलो में नये व्यवसायो का विकास होने से उनका महत्व बढ़ गया। १८वी शताब्दी के प्रारम्भ मे अधिक महत्त्वपूर्ण जिले मिडिलसेक्स, सोमरसेट, डेवन, वैस्ट राइडिंग, लिंकनशायर, नारफोक और सफोक थे। सन् १८०० तक लकाशायर और वैस्टराइडिंग ऑव यार्कशायर अधिक घने बस गये और सबसे अधिक घने प्रथम दो जिले समझे जाने लगे। स्काटलैण्ड मे लनार्कशायर जिला नये रूप में विकसित हुआ। दक्षिण वेल्स मे भी लौह उद्योग के विकास के कारण जनसंख्या में वृद्धि हुई। इंगलैण्ड के दक्षिण-पूर्व और दक्षिण-पश्चिम के पुराने वस्त्र व्यवसाय के जिलो का महत्व घट गया।

(४) **नगरों का विकास**—लोहा और कोयला के क्षेत्रो मे, नए औद्योगिक क्षेत्रो मे तथा यातायात के केन्द्रों पर नये नगर बस गये परन्तु क्योकि इन नगरों को बसाने की कोई पूर्व योजना नही थी, गन्दी बस्तियों (Slums) का जन्म हुआ। मकान बेढंगे बने, नालियो तथा सफाई की कोई व्यवस्था नहीं हुई। पीने के पानी का भी उचित प्रबन्ध सन् १८५० तक प्रायः किसी नए बसे नगर मे नही हो पाया। परिणामतः गन्दगी फैली और अनेको प्रकार की बीमारियाँ फैलने लगी। इस सबका श्रमिकों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा, नगरो में मृत्यु दर भी बढ़ी।

(५) **व्यवसाय की घरेलू प्रणाली का पतन और फैक्टरी प्रणाली का विकास**—औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व ब्रिटेन मे उद्योग-धन्धे प्रायः कृषि के साथ

साथ किसान अपने घरो मे ही चलाते थे (घरेलू प्रणाली का वर्णन पहले हो किया जा चुका है)। औद्योगिक विकास के साथ यह सम्भव नही रहा क्योकि बढ़ते हुए उत्पादन के लिए श्रमिको के पास यन्त्र, कच्चा माल इत्यादि जुटाने के साधन नही थे। उद्योग शक्ति की सुलभता के स्थानो मे केन्द्रित होने लगा। बड़े बड़े कारखानो की छतो के नीचे श्रमिक को काम करना आवश्यक होगया। यहाँ यह स्मरणीय है कि कृषि मे भी छोटे किसानो का निर्वाह कठिन हो गया था क्योकि उसमें भी स्पर्द्धा और पूँजी का प्रवेश हुआ। कृषि और उद्योग धंधे साथ साथ चलाना संभव न रहा। यन्त्रो का प्रयोग और निर्माण की नई विधियाँ कारीगर कारखानो में आकर सीखने लगे। बहुधा श्रमिक का कार्य नीरस होने लगा।

(६) पूँजीपति और श्रमिकों के सम्बन्धों में परिवर्तन—घरेलू प्रणाली में भी पूँजीपति और मजदूर थे परन्तु कारखाना-प्रणाली में उनमें पहले के स सम्बन्ध न रहे। मालिक और मजदूर (employer and employed) दो वर्ग हो गए। श्रमिक का व्यक्तित्व पहले जैसा न रहा। अब वह यन्त्रो के पहिए का पुर्जा बनकर रह गया—न उसके पास जमीन-जायदाद, न द्रव्य, न घर। काम की दशाएँ नीरसतापूर्ण हो गई। मजदूरो की सख्या (पूर्ति) अधिक होने से मजदूरियाँ कम दो जाती थी और काम अधिक लिया जाता था। उनके प्रति दुर्व्यवहार भी होता था। श्रमिक का शोषण और असन्तोष तथा श्रमिक और पूँजीपति का अप्रत्यक्ष सम्बन्ध इन सबके परिणामस्वरूप मजदूरों में वर्ग-चेतना प्रकट हुई और वर्ग संघर्ष का जन्म हुआ। श्रम सघो का विकास हुआ (जिन्हें प्रारम्भ मे अवैध समझा जाता था)। यातायात के विकास के साथ साथ श्रम-आन्दोलन का क्षेत्र भी बढा।

उपर्युक्त मुख्य प्रभावो से ही सम्बन्धित कुछ अन्य प्रभावो पर भी दृष्टिपात किया जा सकता है :

(७) श्रम विभाजन के विकास, पूँजी और यन्त्रो के प्रयोग का कुल प्रभाव यह हुआ कि उत्पादन में वृद्धि हुई, लागत कम हुई, वस्तुएँ सस्ती मिलने के कारण जीवन स्तर ऊँचा हुआ।

(८) पूँजीपतियो के वर्ग के अतिरिक्त समाज मे एक नये मध्यम वर्ग का जन्म हुआ। दुकानदार, बैंकर, ठेकेदार, इत्यादि इस श्रेणी में सम्मिलित किए जा सकते हैं।

(६) व्यावसायिक संगठन के स्वरूप की दृष्टि से एकाकी व्यापारी या साहसी और साझेदारी के बजाय संयुक्त पूंजी वाली कम्पनियाँ अधिक प्रचलन में आईं और व्यवसायियों के संगठन, एकीकरण और समामेलन देखे जाने लगे, यद्यपि उनका अधिक विकास बाद में हुआ।

(१०) उद्योगों के स्थानीयकरण या केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति औद्योगिक क्रांति की विशेषता कही जा सकती है।

(११) प्रारम्भ में तो नहीं परन्तु औद्योगिक क्रांति के द्वितीय चरण में अति उत्पादन और औद्योगिक संकटों की घटनाएँ भी हुईं जो उत्पादकों तथा श्रमिकों दोनों के लिए अहितकर थीं।

औद्योगिक क्रान्ति के जो परिणाम हुए उनमें से बुरे प्रभावों पर जोर देने की प्रवृत्ति अधिक लेखकों की देखी जाती है। वस्तुतः इसमें इन्कार नहीं किया जा सकता है कि औद्योगिक विकास का युग माता के प्रसूतिकाल की भाँति दर्दों और कठिनाइयों से भरा हुआ था परन्तु यह कहना कि वे सब परेशानियाँ जो सन् १७६० के पश्चात् तथा १६वीं शताब्दी में देखी गई औद्योगिक क्रांति के ही कारण थीं सत्य को आक्रान्त करना होगा। सच तो यह है कि कठिनाइयाँ सन् १७६० के पहले भी कम नहीं थीं परन्तु सन् १७६० के बाद श्रमिकों में और समाज में पहले से ही चली आ रही उन सब कठिनाइयों के प्रति जागरुकता और चेतनता पैदा हुई थी।

हानियाँ—औद्योगिक क्रांति की जिन हानियों की ओर ऊपर संकेत किया जा चुका है उनके अतिरिक्त मुख्य हानियाँ संक्षेप में ये थीं : (क) धन के वितरण में असमानताएँ, (ख) कार्य के प्रति श्रमिक की रुचि, सरसता और स्वच्छन्दता का लोप, (ग) स्त्रियों की पुरुषों की आय पर निर्भरता, (घ) संक्रांतिकालीन सामाजिक विस्थापन तथा (ङ) दरिद्रता अथवा अकिंचनता में वृद्धि। खाद्य सामग्री की दृष्टि से ब्रिटेन अन्य देशों पर निर्भर हो गया।

लाभ—औद्योगिक विकास के प्रत्यक्ष लाभों के अतिरिक्त कुछ अप्रत्यक्ष लाभ भी हुए परन्तु वे निर्विवाद नहीं हैं। ऐसे लाभों में सम्मिलित किया जाने वाला पहला लाभ यह था कि बालकों के काम की दशाओं का नियमन आरम्भ हुआ और उनकी शिक्षा की ओर ध्यान गया। इसके अतिरिक्त निवास की जगह और काम की जगह पृथक् पृथक् हो जाने से मनुष्य सामाजिक मूल्यों को महत्त्व देने लगा। कारखानों में काम की दशाओं और सफाई इत्यादि पर ध्यान दिया गया; यंत्रों की सहायता और काम की दशाओं में सुधार होने से श्रमिक की

कार्य क्षमता मे वृद्धि हुई और उसकी मजदूरी भी बढी। रोजगार के नए नए साधन खुल गए थे, वस्तुएं सस्ती मिलने लगी थी। इनके कारण मजदूर सुखी और संपन्न तो होने ही लगा साथ ही वह अपनी दशाओ के प्रति सचेत भी हुआ।

ग्रेट ब्रिटेन की औद्योगिक क्रांति के प्रभाव एकदेशीय नही थे। एक के बाद एक विश्व के अनेक राष्ट्र ग्रेट ब्रिटेन के औद्योगिक विकास से लाभ उठा कर औद्योगीकरण की दिशा मे प्रगति करने लगे। समस्त संसार परस्पर सपर्क में आया और एकबारगी इसका प्रभाव आर्थिक सम्बन्धो मे समानता लाने की दिशा मे पड़ा। ग्रेट ब्रिटेन स्वय एक शक्तिशाली महान् राष्ट्र बन गया और उस काल मे अपनी ही नही यूरोप की भी रक्षा नेपोलियन से कर सका। प्रथम महायुद्ध मे भी अपनी महान् शक्ति के कारण विजयश्री उसी के पक्ष मे रही। उन्नीसवी शताब्दी के अन्त तक ग्रेट ब्रिटेन महान् शक्तियो मे अग्रुआ देश और *औद्योगिक दृष्टि से ससार का कारखाना (workshop) बन चुका था।*

१६ वीं शताब्दी मे ग्रेट ब्रिटेन की महत्ता के कारण
(Causes of the the Supremacy of Great Britain during the 19th Century).

सन् १७८६ से १६१४ तक के समय मे ग्रेट ब्रिटेन ने बहुमुखी महत्ता प्राप्त करली थी। ससार की मण्डियों मे उसके बने हुए माल की माँग थी; औद्योगिक विकास के लिए विश्व के देश ब्रिटेन के ऊपर निर्भर थे; जहाजी, बैंकिंग और वित्तीय सेवाओ के लिए भी वे उसके ऊपर आश्रित हो गए थे; और ग्रेट ब्रिटेन का साम्राज्य इतना बढ़ गया था कि, यह कहा जाने लगा था, उसमे कभी सूर्यास्त नही होता था। ग्रेट ब्रिटन की इस प्रभुता के मुख्य कारण, औद्योगिक कारणो के अतिरिक्त (जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है), निम्नलिखित है—

(क) *नई औद्योगिक तकनीकी मे अग्रणी*—ग्रेट ब्रिटेन में नये-नये आविष्कार हुए। यद्यपि इन आविष्कारो की लागत भी उसे भुगतनी पड़ी और अन्य देशों को उनसे अपने औद्योगिक विकास मे बहुत सरलता हुई परन्तु ब्रिटेन को अपने प्रथम आविष्कारो से एक स्थायी लाभ हुआ कि वहां दक्ष कारीगरो और कुशल श्रमिको की एक सेना तैयार हो गई जो तकनीकी मे निरन्तर सुधार और प्रगति करते गए तथा लाभ के साथ उसका उपयोग कर सके। उसकी मशीनें सभी

देशों को निर्यात होने लगी और अपने माल की अच्छी किस्म के लिए ब्रिटेन विख्यात हो गया।

बड़े पैमाने पर मशीन-उद्योगों के विकसित होने के कारण ब्रिटेन में अनेकों सहायक उद्योग-धन्धे फले-फूले और अधिकोषण, वित्त इत्यादि में भी शीघ्र प्रगति हुई। प्रथम प्रारम्भ का वेग और उद्योग-वाणिज्य की विविध शाखाओं मे उसका अनुभव प्रगति की दौड़ मे उसे आगे रखता गया।

(ख) कोयले की पर्याप्त पूर्ति तथा कोयला क्षेत्रों की उत्तम भौगोलिक स्थिति—प्रचुर मात्रा मे कोयला मिलने का महत्व ब्रिटेन के लिए अत्यधिक था। ब्रिटेन को उससे सस्ती शक्ति मिलती रही और अन्य उद्योगों के साथ ही उसे लौह उद्योग तथा रसायनिक उद्योगों के विकास मे सरलता रही। ब्रिटेन के लिए कोयले का महत्त्व तब अधिक समझ में आ सकता है जब हम देखते हैं कि १९वी शताब्दी में फ्रांस की औद्योगिक उन्नति कोयले की कमी और अधिक लागत के कारण रुकी रही। ब्रिटेन मे लोहा गलाने के लिए कोयला अच्छी कोटि का उपलब्ध था और उसके कोयला-क्षेत्रों की भौगोलिक स्थिति ऐसी थी कि उसे औद्योगिक केन्द्रों तक पहुँचना सरल था। अनेक उद्योग कोयला क्षेत्रों के समीप ही विकसित हो गये थे परन्तु ब्रिटेन मे कच्चे लोहे के क्षेत्र भी समीप ही स्थित थे। कोयला-क्षेत्र प्रायः नदियों अथवा समुद्र तट अथवा दोनों के ही समीप थे, अतः जल मार्गों द्वारा कोयला ढोना न केवल सरल था बल्कि सस्ता भी था।

(ग) जहाजी यातायात का विकास—यों तो ब्रिटेन अनेक देशों से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित कर चुका था परन्तु इस्पात के जलयानों के निर्माण मे अग्रणी रहने से ब्रिटेन को दोहरा लाभ रहा। उसके जहाज अपना अपना माल ढोने के लिए सभी देश मांगते थे जिससे ब्रिटेन को विदेशी विनिमय (foreign exchange) का लाभ होता था। परन्तु इससे भी अधिक लाभ यह था कि विदेशों से जहाजी सम्बन्धों के कारण ब्रिटेन को अपना विदेशी व्यापार बढ़ाने तथा औद्योगिक विकास करने मे बहुत लाभ रहा। ब्रिटिश जहाज जिस किसी देश का माल ढोकर भाड़ा प्राप्त करने मे ही रुचि नहीं रखते थे बल्कि ब्रिटेन के विदेशी व्यापार मे वृद्धि करने के लिए कटिबद्ध थे। ग्रेट ब्रिटेन की जहाजी नीति का लक्ष्य भी यही था। ब्रिटिश जहाज स्वदेश का बना हुआ माल अन्य देशों को ले जाते थे और विदेशों मे कच्चा माल ब्रिटेन को लाते थे।

(घ) विश्व भर में उसके वित्तीय संबंध—फ्रांस ही एक ऐसा देश था जिसका विदेशी व्यापार ग्रेट ब्रिटेन के मुकाबले का था, अन्यथा १९वीं शताब्दी

मे ब्रिटेन का विदेशी व्यापार सब देशो से बढ़ा चढ़ा था । विदेशी व्यापार के सम्बन्धो के कारण विश्व भर मे ब्रिटेन के वित्तीय सम्बन्ध हो गए। ब्रिटेन के स्वीकृत बिल वाणिज्य मे अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा बन गए। लन्दन अधिकोषण (banking) का केन्द्र बन गया और बैंको की शाखाएँ अधिकाश देशो मे स्थापित हो गई। इसके कारण सभी देशो से सौदो के भुगतान ब्रिटेन के लिए बहुत सरल हो गये और इस दृष्टिकोण से विदेशी व्यापार के मार्ग मे कोई रुकावट नही हुई।[1]

(ङ) विदेशो मे ब्रिटिश पूँजी के विनियोग (investments)—ग्रेट ब्रिटेन मे पूँजी के संचय और विकास के कारणो पर अन्यत्र प्रकाश डाला जा चुका है। ब्रिटेन मे साहसियो की भी कमी नही थी। व्यापारिक सम्बन्ध जुड़ जाने से ब्रिटेन की पूँजी समुद्र पार दूर दूर देशो की ओर प्रवाहित हुई। विदेशो में ब्रिटिश पूँजी से कम्पनियाँ स्थापित हुईं जो उन देशो मे खानो, बागानो (plantations) मे ही नही रेल मार्गों, डॉक, बिजली के कारखानों, तारघरो, टेलीफोन इत्यादि अनेक प्रकार के कार्यों में पूँजी लगाकर विकास-कार्य करने लगी। एक दृष्टि से इससे ब्रिटिश पूँजीपतियो को लाभांश और ब्याज के रूप मे लाभ हुए परन्तु इससे भी अधिक ब्रिटेन के हितो को यो लाभ हुआ कि उसे विदेशी विनिमय का लाभ होता था, उन देशो का कच्चा माल ब्रिटेन मे पहुँचाना और विदेशी मण्डियो मे ब्रिटेन का बना हुआ माल बेचना बहुत आसान हो गया था, एक प्रकार से उसे एकाधिकार ही मिल गया था। विदेशो मे स्थापित ब्रिटिश कम्पनियाँ केवल मशीनो के लिए ही नही, अन्य प्रकार के माल के लिए ब्रिटेन को ही आर्डर देती थी और अपने देश के ही इंजीनियर, डाइरेक्टर इत्यादि नियुक्त करती थी।[1]

इस तथ्य का विस्मरण नही किया जा सकता कि १९वी शताब्दी मे ब्रिटेन के बने हुए माल की किस्म अपनी उत्तमता के लिए कोई समानी नही रखती थी परन्तु पूर्व प्रारम्भ का लाभ, प्रचुर मात्रा मे कोयले की पूर्ति, जहाजी यातायात का विकास, विश्व भर मे उसके वित्तीय सम्बन्ध तथा विदेशो मे बढ़ी हुई मात्रा मे ब्रिटिश पूँजी के विनियोग, इन सब कारणो का सम्मिलित प्रभाव[1] यह हुआ कि विगत शताब्दी मे ग्रेट ब्रिटेन की महानता का मुकाबला करने वाला और कोई देश नही था। उसकी शान को कोई छू तक नही गया था।

---

1. Ibid, p. 167.

प्रश्न

1. What do you understand by the term 'Industrial Revolution'? Why did the industrial revolution occur first in England ?

2. "The so-called 'Industrial Revolution' comprised six great changes or developments all of which were interdependent." Explain.

3. What were the causes of the slow growth of the factory system in England ?

4. Discuss the economic and social effects of the Industrial Revolution in the nineteenth century in England.

5. "The term 'Industrial Revolution' is used not because the change was quick but because when aocomplished the change was fnndamental." Elucidate this statement

6. What were the causes of the supremacy of Geat Britain during the 19th century ?

7. Discuss the principal features of the Industrial Revolution in England.

अध्याय ४

प्रमुख उद्योगों का विकास

[आविष्कार और तकनीकी विकास, सूती वस्त्र उद्योग, कोयला खान उद्योग, लोहा-इस्पात उद्योग, प्रश्न।]

औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व ग्रेट ब्रिटेन मे औद्योगिक दशाओ तथा प्रणालियो का सक्षिप्त परिचय दूसरे अध्याय मे दिया जा चुका है। पिछले अध्याय मे यह बताया जा चुका है कि सन् १७६० के पश्चात् ग्रेट ब्रिटेन मे उद्योग मे क्रान्ति-पूर्ण परिवर्तन हुए। पहले से ही स्थित उद्योगो की प्रगति, नए, नए-और सहायक उद्योगो का विकास, उत्पादन की नई प्रणाली, संगठन के नए स्वरूप, उत्पादन की मात्रा मे अतिशय वृद्धि, इत्यादि सभी दृष्टियो से ब्रिटेन मे औद्योगिक विकास हुआ। विकास का मुख्य कारण (अथवा विशेषता) नये-नये आविष्कारो का प्रयोग तथा तकनीकी परिवर्तन था। इस अध्याय मे नये आविष्कारो और तकनीकी परिवर्तनो का सक्षिप्त परिचय देकर ग्रेट ब्रिटेन मे प्रमुख उद्योगो के एक ऐतिहासिक विकास एव उनकी वर्तमान स्थिति का वर्णन किया गया है।

आविष्कार और तकनीकी विकास

आविष्कारो और टैक्नीकल परिवर्तनों का बोध तत्कालीन पेटेण्टो (Patents) के पजीयन से हो सकता है। सन् १७६० के पूर्व शायद ही कोई वर्ष था जिसमे स्वीकृत पेटेण्टो की सख्या एक दर्जन मे अधिक हुई हो। सन् १७६६ मे यह सख्या एकदम इकत्तीस (३१) हो गई और सन् १७६९ मे ३६। तदनन्तर कुछ वर्षों मे औसत संख्या इससे कम रही। सन् १७८३ में पेटेण्टो की संख्या ६४ थी, बीच बीच मे उच्चावचन हुए, परन्तु प्रवृत्ति वृद्धि की ओर ही रही। सन् १७९२ मे यह सख्या ८५, सन् १८०२ मे १०७, सन् १८२४ मे १८० और उसमे अगले वर्ष २५० हो गई। कहा जाता है कि युद्धकाल में प्रायः नये आविष्कार होते हैं परन्तु ब्रिटेन में उपर्युक्त आविष्कार

शांतिकालीन थे।[1] टेक्नीकल प्रगति और नवीन विधियों का प्रारम्भ यद्यपि कृषि, लौह उद्योग, खानों, इंजीनियरिंग, रसायनिक उद्योग, यातायात तथा अन्य उद्योगों में बहुत कुछ साथ-साथ चल रहे थे परन्तु वस्त्र उद्योगों में परिवर्तन सबसे अधिक द्रुत गति से हुए।

वस्त्र व्यवसाय—वस्त्र उद्योग में सन् १७६० के पूर्व ही नई विधियों का आविष्कार और प्रयोग आरम्भ हो गया था। सन् १७३३ में लकाशायर के एक घड़ी साज जॉन के (John Kay)[2] ने करघे में एक साधारण महत्त्वपूर्ण सुधार किया और उसे फ्लाई शटिल (fly-shuttle) कहा गया। फ्लाई-शटिल द्वारा करघे पर बैठा हुआ अकेला बुनकर अब उतना कार्य कर सकता था जितना पहले दो करते थे। इसके प्रयोग में आरम्भ में कई कठिनाइयाँ आईं परन्तु सन् १७६० तक यह सामान्य चलन में आ गया। कताई के क्षेत्र में भी अनेक सुधार करने के प्रयत्न किये गये क्योंकि बुनाई के क्षेत्र में सुधारों के कारण सूत (yarn) की माँग बढ़ गई थी। इस दिशा में पहली व्यवहारिक सफलता ब्लेकबर्न के निवासी बुनकर बढ़ई जेम्स हरग्रीव्ज (Hargreaves) को मिली। उसने सन् १७६४ से सन् १७६८ के मध्यकाल में हाथ से चलने वाली कताई की एक साधारण मशीन बनाई जिसका नाम अपनी पत्नी के नाम पर उसने "जेनी" (Jenny) रखा। 'जेनी' के द्वारा एक स्त्री (अथवा पुरुष) प्रारंभ में एक साथ ही छः सात और बाद में सौ १०० धागे तक कात सकती थी। हरग्रीव्ज ने अपनी मशीन 'जेनी' को पेटेण्ट कराने से पहले ही बनाना और बेचना आरम्भ कर दिया था। इसलिऐ सन् १७७० में जब उसने पेटेण्ट कराया तो भी अदालतों का यह निर्णय रहा कि उसका कोई विशेषाधिकार नहीं हो सकता। "जेनी" को पहले नाटिंघम में और तदनन्तर लकाशायर में बहुत उत्साह से अपनाया गया। "जेनी" की विशेषता यह थी कि वह कम स्थान घेरती थी, गृह उद्योग में भी उसका उपयोग संभव था क्योंकि उसे कुटिया में लगाना भी संभव था, वह सस्ती भी थी और कई गुना सूत उसके द्वारा उत्पादन करना सरल हो गया था। परन्तु उसका सूत पहले जैसा ही मोटा और कमजोर था।

---

१ Ashton, op. cit, p. 91.
२. Ibid, p 33.

रिकार्ड आर्कराइट[1] (Richard Arkwright) ने कताई की महत्त्वपूर्ण विधि निकाली। उसने सन् १७६८ में 'वाटर-फ्रेम' (water-frame) का निर्माण किया जिसका पेटेण्ट उसे सन् १७६९ में मिला। उसका 'फ्रेम' आरम्भ में पानी की शक्ति से चलता था इसलिए उसे 'वाटर-फ्रेम' कहा गया, परन्तु बाद में अन्य प्रकार की शक्ति से चलाया गया। इससे धागा मजबूत बनता था और सस्ता भी पड़ता था परन्तु क्योंकि श्रमिक बिना शक्ति के उसका उपयोग नहीं कर सकता था इसलिए आरम्भ से ही उसका प्रयोग फैक्टरियों और मिलों में अधिक हुआ। आर्कराइट शीघ्र ही नाटिंघम चला गया जहाँ होजरी व्यवसाय में सूत की माँग अधिक थी। उसने होजरी उद्योगपतियों की सहायता से सन् १७७१ में क्रोमफोर्ड में जल-चालित फैक्टरी स्थापित की जिसमें शीघ्र ही ६०० व्यक्तियों को रोजगार दिया जाने लगा। सन् १७७५ में आर्कराइट ने इस दिशा में और भी सुधार किया तथा नई रीति का पेटेण्ट कराया। डर्बीशायर और लंकाशायर में नई मिलें स्थापित की और धीरे-धीरे अन्य जिलों में भी आर्कराइट की कताई की नई विधियाँ मिलों में अपनाई गई।

सन् १७८५ के लगभग कताई में नये सुधार द्वारा स्थिति में पुनः परिवर्तन हुआ। बोल्टन के एक जुलाहे सेम्युअल क्रॉम्पटन (१७५३-१८२७) ने बहुत सुन्दर सूत बनाने में अपूर्व सफलता प्राप्त की। परन्तु आर्कराइट के पेटेण्ट की विस्तृत शर्तों के कारण क्रॉम्पटन को पेटेण्ट कराने में कठिनाई हुई। सन् १७८५ में आर्कराइट के दोनों पेटेण्ट अधिकार रद्द कर दिये गये। इसी वर्ष वाट (Watt) के वाष्प एंजिन का प्रथमतः प्रयोग कताई में किया गया। सन् १७९० के बाद वाष्प द्वारा चालित बड़े-बड़े कारखाने कस्बों और शहरों में स्थापित हुए। देहाती क्षेत्रों में भी औद्योगिक विकास रुका नहीं क्योंकि पानी से चलने वाली फैक्टरियों में अच्छा सूत काता जाता था परन्तु शहरी क्षेत्रों में विकास द्रुत गति से होता गया। सन् १७८२ में मानचेस्टर में केवल दो सूती मिलें थीं, सन् १८०२ में ५२ बावन हो गईं। और सन् १८११ तक अवस्था यह हो गई कि लंकाशायर में बने सूती माल का अस्सी प्रतिशत कस्बों में कते सूत द्वारा उत्पादन होने लगा।

---

1 Richard Arkwright (born in 1732, died in 1792) was a barber and wig maker of Preston in Lancashire, see Ashton op. cit. p. 71.

बुनाई के धन्धे मे पहले से ही लाभ था। परन्तु सन् १७८० के बाद इस दिशा मे भी परिवर्तन हुए। सन् १७८५ मे एडमण्ड कार्टराइट (Edmund Cartwright) ने शक्ति-चालित करघे (power-loom) की रीति निकाली जिसे घोडो, जल-पहियों (water wheels) अथवा वाष्प-एंजिनो द्वारा चलाया जा सकता था। यह करघा फैक्टरी उत्पादन के लिए अनुपयुक्त था और उसके विस्तृत उपयोग के पूर्व उसमे पर्याप्त सुधारो की आवश्यकता थी। विलियम रेडक्लिफ़ (Redcliffe) और टॉमस जॉन्सन ने सन् १८०३ और १८०४ मे तथा कुछ वर्षों पश्चात् होरोक्स (Horrocks) एव रॉबर्ट्‌न (Roberts) ने करघे मे अनेक सुधार किये तथापि सन् १८१३ मे भी ब्रिटेन मे शक्ति-चालित करघो की संख्या २,४०० से अधिक नही थी जबकि उसी समय हाथ-करघो की संख्या उसके सौगुने के लगभग थी। सन् १८२० मे शक्ति-करघो (power-looms) की संख्या १४ हजार और सन् १८३३ मे एक लाख हो गई। हाथ करघों पर काम करने वाले बुनकरो की दशा बहुत दयनीय हो गई।

कताई की मशीनों मे भी सुधार होता गया। इसके दो मुख्य कारण थे: पहला यह कि लकड़ी के स्थान पर लोहे का प्रयोग होना गया; दूसरे जल शक्ति की बजाय वाष्प शक्ति का उपयोग किया जाने लगा। कताई और बुनाई में ही नही, सूती वस्त्र उद्योग पर आधारित सहायक उद्योगों मे भी तकनीकी प्रगति हो रही थी।

सूती वस्त्र उद्योग मे कताई बुनाई मे होने वाले नये प्रयोग अन्य वस्त्र उद्योगों मे भी किये गये परन्तु सूती उद्योग की तुलना मे अन्य वस्त्र उद्योगो, जैसे, ऊन, रेशम, इत्यादि मे तकनीकी प्रगति बहुत धीमी थी। रेशमी उद्योगो मे नये तकनीकी प्रयोग अठारहवीं शताब्दी के अन्त में ही व्यावसायिक सफलता के स्तर तक पहुँच सके। ऊनी वस्त्र उद्योग मे नई विधियों के उपयोग सर्वप्रथम वैस्टराईडिंग में किये गये। 'जिनी' कताई यन्त्र यार्कशायर में सन् १७७३ में अपनाया गया परन्तु दक्षिण-पश्चिमी भागो में सन् १७९० तक पहुँच सका। सन् १८०० में यार्कशायर में कताई-बुनाई इत्यादि के लिए फैक्टरी प्रणाली विकसित होने लगी परन्तु पूर्वी और दक्षिण-पश्चिमी क्षेत्रों में ऊनी कपड़ा बनाने में नई रीतियो को बहुत धीमी गति पर अपनाया गया।

खान व्यवसाय—खान उद्योग में सबसे अधिक महत्वपूर्ण सुधार १८ वी शताब्दी के अन्त में स्टीम पम्पिंग इंजनो का प्रारम्भ था। पहले खानों में पानी भरने से कोयला, कच्चा लोहा इत्यादि खनिज खोद निकालना बहुत कठिन

था परन्तु वाट (Watt) के सुधार से वाष्प से चलने वाले पानी निकालने वाले इजन काम में लाये जाने लगे। धीरे धीरे मानवी श्रम के स्थान पर खानो से खनिज पदार्थ निकालने का कार्य वाष्प यंत्रो द्वारा होने लगा। जॉर्ज स्टीफेंसन ने सन् १८२० में ढुलाई का यत्र बनाया परन्तु उस समय छोटे लड़के कम मजदूरी पर मिल जाते थे इसलिए उसका विस्तृत उपयोग नही हो सका। सन् १८४० के बाद खान सम्बन्धी कानूनो के पास हो जाने के बाद इस दिशा में सस्ते शिशु-श्रमिक मिलने बन्द हो गये। सन् १८६२ में तारो की रस्सियाँ ढुलाई मे सहायक होने लगी। लोह पटरियो का प्रयोग १७६७ में प्रारम्भ हुआ था। खानो में प्रकाश और हवा इत्यादि की ओर भी ध्यान दिया जाने लगा। खान उद्योग की तक्नीकी में विकासो का कारण केवल यह नहीं था कि चतुर्मुखी विकास हो रहे थे बल्कि प्रमुख यह था कि कोयला तथा अन्य खनिज पदार्थों की माँग बढ़ती जा रही थी।

लोह-इस्पात उद्योग— सन् १७५६-६३ के युद्ध काल में युद्ध सामग्री की माँग बढने के कारण लोहे के नये कारखाने स्थापित हुए जिनमे ब्रोसले (Broseley) और कैरन (Carron) मे स्थापित कारखाने मुख्य थे। कैरन आयरन वर्क्स की पहली भट्टी १ जनवरी १७६० मे प्रज्ज्वलित की गई थी। सन् १७८३ ८४ में हेनरी कॉर्ट (Cort) ने दो पेटेण्ट कराए। कॉर्ट की नई रीतियाँ लोह उद्योग के लिए ही नही अपितु तक्नीकी विकास के इतिहास में उल्लेखनीय घटना थी। उसकी रीतियाँ संक्षेप में ये थी कि पहले ढले हुए लोहे को कोक मे गरम करके पिघलाया जाता था और लोहे की छड़ों से हिलाकर उससे कारबन तथा अशुद्धियो के अश को जलाया जाता था। अन्त में उसे लोहे के रोलरो (rollers) के मध्य से दबाकर निकाला जाता था। हंट्समैन ने शेफील्ड में ढले हुए लोहे को शुद्ध करने की तरकीब पहले ही निकाली थी। वाट ने अपने स्टीम-एजिन के द्वारा एक झुका हुआ हथौडा (tilt hammer) बनाया जो एक मिनट में ७½ हड्रेडवेट भारी सिर से तीन सौ चोटें (blows) लगाता था। लोहा सस्ता भी था। उसका उपयोग बढ़ता गया। सन् १७७९ मे पहला लोह पुल बनकर तैयार हुआ था। रेल यातायात के विकास के पश्चात् तो उसमें प्रगति होती गई और लोह उद्योग का महत्व बढ़ता गया। सन् १८५५-५६ में हेनरी बिसीमर (Bessemer) ने इस्पात बनाने की नई रीति निकाली जिसमे कॉर्ट की विधि की प्रघूनन (puddling) क्रिया की आवश्यकता

नहीं रही। बाद में खुली भट्टी (open-hearth) की विधि और बिजली की भट्टी उपयोग में आई।[1]

तकनीकी विकास और आविष्कारों का ऊपर जो संक्षेप में वर्णन किया है उससे ब्रिटेन के प्रमुख उद्योगों के विकास का परिचय प्राप्त करना सरल होगा।

सूती वस्त्र उद्योग (Cotton Textile Industry)

अठारहवीं शताब्दी के पूर्व सूती वस्त्र उद्योग ब्रिटेन में बहुत कम महत्व का था। यों तो १६ वीं शताब्दी के अन्त के बाद इंगलैण्ड में सूती कपड़ा बनाया जाता था परन्तु वह बहुत ही गिरी हुई अथवा प्रारम्भिक अवस्था में था। उस समय रुई पश्चिमी द्वीपसमूह तथा अन्य क्षेत्रों से आयात की जाती थी परन्तु पूर्ति अनिश्चित थी। रुई के व्यापार में फ्रान्सीसी और डच व्यापारी आंग्ल व्यापारियों से स्पर्द्धा करते थे। ब्रिटेन में वस्त्र उत्पादकों का ऊनी और रेशमी वस्त्र उद्योगों से अधिक लाभ था। विदेशों से सूती वस्त्र का आयात होता था। भारत का सूती माल इङ्गलैण्ड में लोकप्रिय था।[2]

यह उल्लेखनीय है कि ब्रिटेन में सूती वस्त्र सजावट के लिए काम में आता था। वहाँ न तो रुई का उत्पादन होता था और न ही सूती कपड़ों की अधिक माँग थी तो भी सन् १७०० ई० के उपरान्त ग्रेट ब्रिटेन में सूती वस्त्र उद्योग का विकास होता गया। इसके कारण राजनीतिक, आर्थिक, भौगोलिक इत्यादि अनेक थे।

सन् १७०० के पश्चात्, विशेषकर १८ वीं शताब्दी के मध्यकाल से, ब्रिटेन में सूती वस्त्र उद्योग के विकास और उसकी उन्नति के मुख्य कारण यथोलिखित थे—

१. विदेशी सूती माल के आयात पर प्रतिबन्ध—सन् १७०० में भारतीय तथा पूर्वी देशों से आयात होने वाले कुछ प्रकार के सूती माल पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। यदि भारत से सूती माल का व्यापार स्वतन्त्र रूप से चालू रहता तो ब्रिटेन में सूती वस्त्र उद्योग का इतनी तेजी से विकास होना सम्भव नहीं था।[3] सन् १७२१ और १७३६ में प्रतिबन्ध और कड़े कर दिये गये।

---

१. बिजली भट्टी का प्रयोग सर्वप्रथम सन् १८७८ में सर विलियम सीमेन्स ने किया था।

२. देखिए साउथगेट, पूर्व उद्धृत, अध्याय १५ पृष्ठ १२७,।

3. Ibid.

प्रतिबन्ध इस प्रकार के थे कि छपे हुए सूती माल का बिलकुल आयात नही हो सकता था। सफेद सूती वस्त्र (केलिको) और मलमल से स्पर्द्धा प्रभावहीन थी क्योंकि उनके आयात पर भारी कर लगे हुए थे।

२. **भारत मे आन्तरिक अशान्ति**—भारत सूती वस्त्र का प्रमुख उत्पादक था परन्तु सन् १७०७ मे औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् भारत मे जो अशान्ति रही और यहाँ प्रभुत्व स्थापित करने के लिए फ्रान्सीसियो और अगरेजो मे जो युद्ध होते रहे उनके कारण भारतीय सूती माल की पूर्ति रुक गई और आग्ल व्यापारी अपने व्यापार के लिए अपने देश के सूती वस्त्र उत्पादन का सहारा लेने लगे। कपास उत्पादक अन्य देशो मे सूती वस्त्र उद्योग की स्थापना हो नही पाई थी जो ब्रिटेन से स्पर्द्धा लेती।

३. **सयुक्त राज्य अमेरिका को सस्ती कपास**—ब्रिटेन के सूती वस्त्र उत्पादको को यू० एस० ए० के दक्षिणी राज्यो मे पर्याप्त मात्रा मे अच्छी और सस्ती कपास मिलने से बहुत प्रोत्साहन मिला।

४. टेंकनीकल और वैधानिक कठिनाइयो को दूर करने के लिए सन् १७२१ मे लगाई गई बन्दी सन् १७७४ मे हटा दी गई। इसका प्रभाव यह पड़ा कि ब्रिटेन के वस्त्र उद्योग के विस्तार के लिए **विदेशी टेंकनीकल जानकारी** सुलभ हो गई।

५. **कताई-बुनाई के नये आविष्कार**—इस अध्याय के प्रारम्भ मे वस्त्रो द्योग सम्बन्धी तकनीकी विकास का उल्लेख किया जा चुका है। नये आविष्कारो से ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग को बहुत लाभ हुआ। नये यन्त्रो से उत्पादन अधिक होने लगा और लागत कम हुई।

६. **सहायक उद्योगों का विकास**—रसायनिक उद्योगो के विकास के कारण ब्लीचिंग, रगाई और छपाई के कार्यो मे प्रगति हुई। इञ्जीनियरिंग उद्योगो के कारण यन्त्रो की सुलभता और मरम्मत सम्भव थी।

७. **उपनिवेशों मे बिक्री-क्षेत्र और कच्चे माल के स्रोत**—ब्रिटिश साम्राज्य बढ़ता जा रहा था और साम्राज्यगत देशो तथा उपनिवेशो मे ब्रिटिश सूती माल के लिए बिक्री-क्षेत्र (मण्डियाँ) मिले। साथ ही उन क्षेत्रो से कच्चे माल की सुविधा मिली।

८. **रुई के आयात मे समुद्री यातायात की सुविधा**—आरम्भ से ही ब्रिटेन व्यापार के लिए उत्तम सामुद्रिक जहाजो का स्वामी था। उसकी **जहाजी नीति** भी ऐसी थी कि कच्चे माल का आयात हो और निर्मित माल

का निर्यात हो। ह्विटने की जिनिंग प्रक्रिया (ginning process) के आविष्कार से यह लाभ हुआ कि कपास या रुई की गाँठो के रूप मे आयात होने लगा।

६. भौगोलिक सुविधाएं—ब्रिटेन मे सूती वस्त्र उद्योग की स्थापना के लिए कुछ विशेष सुविधाएँ प्राप्त थी, जैसे, आर्द्र जलवायु, जलशक्ति और कोयले का सस्ता ईंधन इत्यादि। सूत को धुलाई के लिए ब्रिटेन मे पहाडी नदियो का जल पर्याप्त मात्रा म प्राप्त है।

अन्य सुविधाएं—उपर्युक्त कारणो के अतिरिक्त कुछ अन्य कारण भी सूती वस्त्र उद्योग की उन्नति मे सहायक सिद्ध हुए। उदाहरण के लिए ब्रिटेन मे उस समय ऊन का अभाव था अतः ऊनी वस्त्र उत्पादको का ध्यान व्यापार की दृष्टि से सूती वस्त्रोद्योग की ओर गया। ऊनी वस्त्र उद्योग की प्राचीनता के कारण कुशल कारीगर भी मिले। सयुक्त पूँजी वाली कम्पनिया और अधिकोषण के विकास से सहायता मिली। विदेशी व्यापार पहले से ही बढा हुआ था अतः विदेशी मडियों में सूती माल बेचने के लिए उन्हे विशेष प्रयत्न करने की आवश्यकता नही थी। ब्रिटेन में साहसियो की कमी नही था। अवसर का लाभ उठाना वे जानते थे।

क्षेत्र—ब्रिटेन मे सूती वस्त्र उद्योग मुख्यतया लकाशायर तथा समीपवर्ती क्षेत्रो मे केन्द्रित है। 'लकाशायर' चेशायर और डर्बीशायर मे मिलाकर ब्रिटेन के सूती वस्त्रोद्योग मे लगे हुए कारीगरो के ८५ प्रतिशत के लगभग पाए जाते हैं। शेष का अधिकाश वेस्टराइडिंग और स्कॉटलैण्ड म है। सूती वस्त्र के प्रमुख केन्द्र बोल्टन, आल्डहम, राचडेल (Rochdale) बर्नले, प्रेस्टन, बरो, मानचेस्टर स्टॉकपोर्ट, ली (Leigh) ब्लकबर्न, नल्सन, इत्यादि है।

लंकाशायर में सूती वस्त्र उद्योग क स्थानीकरण के प्रमुख कारण—भौगोलिक हैं। लंकाशायर मे इस उद्योग के केन्द्रित हो जाने के मुख्य कारण ये हैं: (१) नम पछुआ हवाओ से इस प्रदेश को आर्द्रता मिलती रहती है जो कताई के लिए आवश्यक समझी जाती है (यद्यपि आजकल शुष्क प्रदेशो मे वातावरण मे कृत्रिम साधनो से भी आर्द्रता उत्पन्न की जाने लगी है, परन्तु १८वी शताब्दी में ये साधन अप्राप्त थे और यह तो मानना ही पड़ेगा कि कृत्रिम साधनो की कुछ लागत भी होती है)।

(२) लकाशायर अमरीकी बन्दरगाहो से समीप पड़ता है जहाँ से सस्ती कपास सुलभ थी।

(३) इस प्रदेश के समीप कोयला, चूना, जल शक्ति, इत्यादि की सुविधाएं प्राप्त थी। मध्य पेनाइन पर्वत श्रेणी से बहने वाली नदियाँ धुलाई और रंगाई के लिए श्रेष्ठ जल प्रदान करती हैं। (इन नदियों से अब सस्ती बिजली की प्राप्ति भी होती है।

(४) इस प्रदेश के लिवरपूल बंदरगाह की स्थिति बहुत ही उत्तम है जिसे सन् १८९४ में मानचेस्टर शिप कैनाल द्वारा मानचेस्टर से मिला दिया गया।

(५) अन्य कारण भी कम महत्व के नहीं हैं, जैसे, पैतृक कला प्राप्त दक्ष श्रमिकों की प्राप्ति, चेशायर प्रदेश से नमक की प्राप्ति, ओल्डहम इत्यादि नगरों से यन्त्रों की प्राप्ति, उत्साही और दूरदर्शी साहसी, इत्यादि, ये कारण उन कारणों के साथ साथ समझे जाने चाहिएँ जिनके कारण ब्रिटेन में सूती वस्त्र उद्योग का विकास हुआ जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

उन्नति काल—सन् १७०० के उपरान्त ब्रिटेन में सूती वस्त्र उद्योग का निरन्तर विकास होता गया (कारणों पर पहले ही प्रकाश डाला जा चुका है)। भारतवर्ष जो पहले ब्रिटेन को बहुत अच्छी किस्म का सूती वस्त्र निर्यात करता था १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ से काफी मात्रा में सूती वस्त्र ब्रिटेन से मँगाने लगा। ब्रिटेन ने सूती वस्त्र उद्योग के विकास के लिए आरम्भ में संरक्षणवादी नीति अपनाई थी, यह स्मरणीय है। परन्तु बाद में उसने निर्बाध नीति अपनाई क्योंकि उसके हित में यही था।[१]

ब्रिटेन में सूती वस्त्र उद्योग की उन्नति विविध पहलुओं से देखी जा सकती है, यथा (१) कारखानों की संख्या बढ़ी, (२) रोजगार में वृद्धि हुई, (३) सहायक उद्योगों का विकास हुआ, (४) कच्चे माल का आयात बढ़ता गया और (५) सूती वस्त्र के निर्यातों की मात्रा और मूल्यों में वृद्धि हुई। करघों और तकुओं की संख्या में वृद्धि हुई तथा कारखानों में शक्ति तथा यन्त्रों का उपयोग बढ़ा। वस्त्र की किस्म में निरन्तर सुधार होता गया और वस्त्र-उत्पादन की नई विधियाँ अपनाई गई।

सन् १८०० से १८६० तक वस्त्रोद्योग सरलता से प्रगति करता रहा। सन् १८६० में संयुक्त राज्य अमेरिका में गृह युद्ध छिड़ जाने के कारण अच्छी कोटि की सस्ती अमरीकी कपास ब्रिटेन के लिए दुर्लभ होगई अतः वह भारतवर्ष और मिस्र से आयात करने लगा। भारतीय कपास अमरीकी कपास के

---

१. भारत के उद्योग के लिए यह नीति विपरीत सिद्ध हुई।

प्रभाव को पूरा नही कर सकी। सन् १८७५-७६ काल की मन्दी के कारण इस उद्योग को फिर हानि पहुँची। सन् १८८० से १९१३ तक उद्योग की उन्नति होती रही।

सन् १९१३ मे ब्रिटेन मे सूती वस्त्र उद्योग की स्थिति बहुत अच्छी थी। उस समय इस उद्योग मे आठ लाख से अधिक शक्ति करघे थे, तकुओं की संख्या ६ करोड से कुछ कम थी, छः लाख से अधिक मजदूरों को रोजगार इस उद्योग मे मिला हुआ था; ब्रिटेन का सूती कपड़े का उत्पादन विश्व भर मे सबसे अधिक था और उसके कुल निर्यात व्यापार का लगभग चतुर्थांश सूती वस्त्र का था।

प्रथम महायुद्ध काल : कठिनाइयाँ—यह स्मरणीय है कि ब्रिटेन का सूती वस्त्र-उद्योग मुख्यतया निर्यात व्यापार के कारण ही विकसित होता गया। इसी लिए सन् १९१४ मे प्रथम महायुद्ध छिड़ते ही ब्रिटेन के सूती वस्त्र उद्योग को संकट का सामना करना पडा। जहाज युद्ध मे लग गये। जहाजो की कमी के कारण एक ओर तो कच्चे माल के आयात सम्भव नहीं हो सके और दूसरी ओर कपडे का निर्यात करना सम्भव नहीं था। श्रमिक और पूँजी युद्ध सम्बन्धी व्यवसायो मे लग गये। इस प्रकार उत्पादन कम हुआ। युद्ध काल मे वस्त्र के अभाव के कारण मूल्यों मे वृद्धि होती गई जिसे रोकने के लिए नियन्त्रण लगाने पडे।

युद्ध समाप्त हुआ तो ब्रिटिश माल की माँग फिर बढी। इसका एक कारण यह भी था कि चाँदी के भाव ऊँचे हो जाने से पूर्वी देशो मे क्रय शक्ति बढ़ गई थी। परिणामतः सन् १९१९ से १९२० तक ब्रिटेन म सूती वस्त्र उत्पादकों को पर्याप्त लाभ मिले। इन वर्षों मे अधिक माग युद्ध काल म रुकी हुई माँग के कारण भी थी। परन्तु अनेक देशो म, युद्ध काल मे सूती वस्त्र का उत्पादन होने लगा था, यह ऐसा तथ्य था जिसका ब्रिटिश सूती वस्त्रोद्योग पर गम्भीर प्रभाव पड़ा।

सन् १९२० के पश्चात् ब्रिटेन मे सूती वस्त्र उद्योग का पतन—सन् १९२० के पश्चात् इस उद्योग की अवनति होने लगी। सन् १९३० तक हालत बहुत गिर गई। द्वितीय विश्व-युद्ध छिड़ने के समय एक बार दशा कुछ सुधरी परन्तु प्रथम महायुद्ध की सी कठिनाइयाँ फिर आ गई, बल्कि पहले से भी अधिक सङ्कट का सामना करना पडा। सन् १९४५ मे (अर्थात् युद्धोपरान्त) निर्यातो मे वृद्धि हुई, यातायात की कठिनाइयाँ भी कम हो गई और विकास हुआ परन्तु सन्

१९५१-५२ में मन्दी ने ब्रिटिश वस्त्र व्यवसाय को फिर हानि पहुँचाई। युद्ध पूर्व की दशाएँ तो अब आना सम्भव ही प्रतीत नहीं होता, यद्यपि ब्रिटिश सूती वस्त्र व्यवसाय मे तकनीकी प्रगति होती रही है।

पतन के कारण— सन् १९२० के पश्चात् ब्रिटिश वस्त्र-उद्योग के पतन के मुख्य कारण निम्नलिखित है—

(१) **जापान तथा अन्य पूर्वी देशो मे वस्त्र व्यवसाय का विकास हुआ।** युद्ध काल मे (१९१४-१८ में) जब ब्रिटेन युद्ध की तैयारियो में लगा रहा, अन्य देशो ने औद्योगिक विकास किया। विशेष कर जापान ब्रिटेन का प्रतिद्वन्द्वी बन गया। बहुत अधिक मूल्यानुसार आयात कर चुकाने पर भी जापानी कपड़ा भारतवर्ष मे ब्रिटिश कपडे की अपेक्षा अधिक बिकने लगा था। भारत में भी सूती वस्त्र उद्योग की स्थापना हो चुकी थी और प्रथम महायुद्ध काल में उसमें विकास हुआ था।

(२) **युद्धों का प्रभाव**—युद्ध काल में पूंजी और श्रम शक्ति युद्ध की दिशा में लगने के कारण व्यवसाय की प्रगति में खाई पड गई। यातायात की सुविधाओ की कमी का भीषण प्रभाव पड़ा। युद्ध-काल मे ग्रेट ब्रिटेन के कई ग्राहक देशो की क्रय-शक्ति कम हो जाने से (युद्ध ने उन देशो पर विनाशकारी प्रभाव डाला था) युद्धोपरान्त भी ब्रिटेन का कपड़ा अधिक मांग में न रहा, विशेषकर द्वितीय विश्वयुद्ध तो ग्रेट ब्रिटेन का महान् दुर्भाग्य समझा जा सकता है जिसके कारण ब्रिटिश कारखाने भी नष्ट हुए थे। युद्ध कालो में अनेक देशो से व्यापारिक सम्पर्क बहुत कम हो गया और कपास का आयात भी न हो सका।

(३) **मन्दी का आघात**—सन् १९२९ से १९३३ की अवधि में संसार के अधिकाश देशो की भाँति ब्रिटेन के उद्योग को भी भारी क्षति पहुँची और सूती वस्त्र उद्योग उसके प्रभाव से बचा न रहा। सन् १९५१-५२ में मन्दी ने ब्रिटिश सूती उद्योग को फिर हानि पहुँचाई। (मन्दी का सामान्य प्रभाव यह पडता है कि वस्तुएँ सस्ती हो जाने से उत्पादको को हानि होती है और बहुत से कारखाने बन्द हो जाते हैं।)

(४) **विदेशों मे सरक्षण कर**—अनेक देशो ने ब्रिटिश सूती माल के आयात पर कर लगा दिये। कपास उत्पादक देशो ने भी बहुधा कपास के निर्यात पर कर लगाये। दोनो प्रकार से ब्रिटिश सूती वस्त्र व्यवसाय को हानि पहुँची।

(५) भारत में स्वदेशी-आन्दोलन अंगरेजी राज्य का मूलोच्छेदन करने के लिए भारत मे 'स्वदेशी अपनाओ' आन्दोलन छेडा गया था। खादी और चर्खा स्वतन्त्रता सग्राम के मुख्य अस्त्रों के रूप मे अपनाये गये थे। इसके कारण भारत में ब्रिटिश वस्त्र की माँग घट गई।

(६) बढी हुई लागत — ब्रिटिश सूती वस्त्र व्यवसाय की अवनति का मुख्य कारण यह था कि ब्रिटेन का कपडा विदेशी बाजारो मे अन्य देशो के कपडो की अपेक्षा महँगा था क्योंकि उसकी उत्पादन लागत अधिक हो गई। एक तो यों ही ब्रिटेन को कच्चा माल (कपास) बाहर से मँगाने के कारण अधिक नही तो यातायात व्यय अधिक देना पडता, प्रायः कपास पर उन देशो द्वारा लगाया हुआ निर्यातकर तथा कपडे पर आयात कर देना पडता। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन मे अन्य देशो की अपेक्षा मजदूरियाँ अधिक हैं। इस कठिनाई की दशा मे ब्रिटेन ने अपना ध्यान केवल उच्च कोटि के कपडे के उत्पादन पर केन्द्रित किया है।

परिणाम यह हुआ कि सन् १९३७ की अपेक्षा सन् १९५७ मे सूती वस्त्र उद्योग में रोजगार साठ प्रतिशत रह गया है। सन् १९५७ मे उत्पादन सन् १९३७ के उत्पादन का पचास प्रतिशत था।

वर्तमान स्थिति—यद्यपि सन् १९२० मे ब्रिटिश सूती उद्योग निरन्तर अवनति करता गया है परन्तु अब भी वह ब्रिटेन के उपभोक्ता वस्तु व्यवसायों मे सबसे बड़ा है और निर्यात व्यापार की दृष्टि से उसका महत्वपूर्ण भाग है। सन् १९५७ मे इस उद्योग मे वहाँ २५६ हजार व्यक्तियों को रोजगार मिल रहा था। सन् १९५७ मे इस उद्योग मे ३३९ हजार टन कपास का उपभोग हुआ[१] जिसका आधे से अधिक संयुक्त राज्य अमेरिका से आयात किया गया था। दूसरा सबसे अधिक कपास सप्लाई करने वाला देश सूडान था। हाल मे ब्रिटिश कपड़े के नये गुणा के कारण उसका महँगा कपड़ा भी विदेशों में दूर-दूर बिक जाता है। सन् १९५७ मे ब्रिटेन ने ४५६० लाख वर्ग गज कपड़ा, जिसका मूल्य ६ करोड पौंड (£ 60 m.) था, विदेशो को भेजा था।

---

१. सन् १९३७ मे ६३९ हजार टन कपास लगी थी।

सूत, धागा इत्यादि मिलाकर सूती उद्योग के कुल निर्यात ६० मिलियन पौंड (६ करोड पौंड) मूल्य के थे।[1]

ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग का भविष्य उज्ज्वल प्रतीत नही होता क्योंकि लगभग सभी कपास उत्पादक देशो मे इस उद्योग की प्रगति हो रही है और उनमें उत्पादन की लागत अपेक्षाकृत कम है।

कोयला उद्योग (Coal Mining Industry)

ब्रिटेन मे यो तो कोयला सात-सौ वर्ष पहले ही निकाला जाने लगा था परन्तु कोयला उद्योग का सत्रहवीं शताब्दी से संगठित व्यवसाय के रूप मे विकास हुआ जबकि यूरोप के अन्य देशो मे उसका विकास लगभग दो-सौ वर्ष बाद हुआ। अपने महत्व के कारण कोयला ब्रिटेन का काला हीरा (black diamond) समझा जाता रहा है।

आरम्भ मे कोयले का उपयोग घरेलू कामों मे ही होता था। उस समय यातायात के यान्त्रिक साधनो के अभाव म कोयला ढोना एक दुष्कर कार्य था। जब लोहा शुद्ध करने मे कोयले का प्रयोग हुआ, वाष्प-एंजिन का आविष्कार हुआ और शक्ति के रूप मे कोयले का उपयोग बढ़ा तो उद्योग, यातायात और वाणिज्य मे क्रान्ति आ गई। खानो से कोयला निकालने के लिए, खानो का पानी बाहर निकालने के लिए और कोयला ढोने के लिए अनेक आविष्कार हुए जिनसे खान उद्योग को ही लाभ नही हुआ बल्कि अन्य उद्योगो का विकास होता गया। ज्यो ज्यो औद्योगिक उन्नति होती गई, कोयला की मांग बढती गई और कोयले की खानों का विकास हुआ। इसी आधार पर यह कहा जाता है कि इंगलैण्ड का आर्थिक इतिहास उसके कोयला-खान-उद्योग की कथा है।

खान सम्बन्धी तकनीकी विकास का सक्षिप्त वर्णन इस अध्याय मे पहले ही किया जा चुका है।

ब्रिटेन मे कोयले का उत्पादन बढ़ने पर और ईंधन और शक्ति के रूप मे ससार मे कोयले का उपयोग बढने पर ब्रिटिश कोयला जगत के अनेक देशो को निर्यात किया जाने लगा। सन् १६१० के लगभग तक संसार के कोयला

---

1. Source . Britain and Official Handbook, 1959 edition, p. 326.

बाजार में ब्रिटिश कोयले का ही प्रभुत्व था। सन् १९१३ मे, जबकि ब्रिटेन मे कोयले का उत्पादन उच्चतम शिखिर पर था, कोयला उद्योग का उत्पादन २८७० लाख टन, निर्यात ९४० लाख टन और रोजगार ११०७ हजार व्यक्ति, था।[1]

ब्रिटेन में कोयला खान व्यवसाय का विकास बहुत पहले ही हुआ, इस तथ्य का अर्थ यह हुआ है कि वहाँ की अच्छी और ऊपरी खानो की प्राय: खुदाई हो चुकी है और अब घटिया और गहरी खानो मे कोयला प्राप्त करना पड़ता है। ऐसी दशा में उत्पादकता बनाये रखने के लिए ऊँचे विनियोगो की आवश्यकता पड़ती है।

प्रथम महायुद्ध काल में विशेषकर मजदूरो तथा यन्त्रों एव अन्य पूँजी साधनों की कमी के कारण कोयला खान उद्योग नीचे गिरा और सुधार नही किये जा सके। इसके अतिरिक्त अन्य देशो में शक्ति के अन्य साधनो का विकास होने तथा यूरोपीय देशो में सस्ता कोयला मिलने के कारण ब्रिटिश कोयले के निर्यात भी गिरे। सन् १९२५ मे ब्रिटेन ने केवल ६७० लाख टन कोयला निर्यात किया था।

समामेलन (amalgamation) द्वारा कोयला-उत्पादन के व्यय घटाने के प्रयत्न सन् १९१९ मे साकी आयोग (Sankey Commission) से प्रारम्भ हुए। सन् १९२५ में दूसरा प्रमुख कोयला आयोग नियुक्त किया गया जिसने इस व्यवसाय के सुधार के लिए महत्वपूर्ण सिफारिशे की। सन् १९३० मे एक एक्ट (Coal Mines Act) द्वारा उत्पादन की बड़ी और कुशल इकाइयो का निर्माण करने के लिए कमिश्नर रखे गये। सन् १९३८ के कोयला कानून (Coal Act) द्वारा खनिज कोयले का स्वामित्व राज्य के हाथो मे आ गया और कोयला आयोग का यह कानूनी उत्तरदायित्व हो गया कि व्यवसाय का सुचारु रूप से सगठन करने के लिए कोयला उत्पादन मे लगी विभिन्न इकाइयों की संख्या और कम की जाय। इस दिशा मे अधिक प्रगति नही हो पाई थी कि सन् १९३९ मे द्वितीय विश्व-युद्ध छिड गया।

राष्ट्रीय कोयला बोर्ड (National Coal Board)—सन् १९४२ मे सरकार ने इस उद्योग पर पूर्ण नियत्रण कर लिया परन्तु खानों का स्वामित्व

1. Ibid, p. 286.

पूर्ववत् (of colliery undertakings) चालू रहा। १ मई १६४६ को कोयला उद्योग राष्ट्रीयकरण एक्ट को शाही स्वीकृति मिल गई। १ जनवरी १६४७ को कोयला उद्योग की कुल सम्पत्ति (assets) राष्ट्रीय कोयला बोर्ड के सुपुर्द करदी गई। खानो का प्रबन्ध, वित्त-व्यवस्था, बिक्री व्यवस्था, श्रम-सम्बन्ध, सुरक्षा स्वास्थ्य-कल्याण तथा विकास और अनुसंधान की देखरेख करता है। बोर्ड का कार्य नो डिवीजनो (divisions) मे बँटा हुआ है जिनके अन्तर्गत खानो का प्रबन्ध समूहो मे पचास क्षेत्रो मे किया जाता है।

उत्पादन—ब्रिटेन के प्रमुख कोयला क्षेत्र ये हैं: (१) यार्कशायर, डर्बीशायर और नाटिंघमशायर क्षेत्र, जिससे कुल उत्पादन का लगभग ४५ प्रतिशत प्राप्त होता है, (२)डरहम और नार्थम्बरलैण्ड क्षेत्र, (३) दक्षिण वेल्स क्षेत्र, और (४) स्कॉटलैण्ड के क्षेत्र। अन्य महत्वपूर्ण कोयला क्षेत्रो मे लंकाशायर और वैस्ट मिडलैण्ड्स (स्टैफर्डशायर तथा वारविकशायर) सम्मिलित हैं। उत्तरी आयरलैण्ड मे कोई कोयला क्षेत्र नही है।

राष्ट्रीय कोयला बोर्ड के प्रयत्नो से सन् १६४७ से गहरी खानो का उत्पादन बढा है। सन् १६४७ मे गहरी खानो से प्राप्त कोयला १८७० लाख टन था, सन् १६५४ मे २१४० लाख टन था। तब से उत्पादन लगभग स्थिर रहा है, सन् १६५७ में २१०० लाख टन था। इसके अतिरिक्त, खुली खानो का सन् १६५७ मे १३६ लाख टन था। ब्रिटिश कोयला उद्योग मे श्रमिको की गंभीर कठिनाई रही है। सन् १६५७ मे कोयला खानो मे औसत रोजगार ७१० हजार था जिसमे स २८५ हजार मजदूर ऊपरी खानो पर थे।[१]

यूनाइटेड किंगडम (U K) मे कोयले के उपभोग का स्वरूप (pattern) संक्षेप मे निम्न तालिका से जाना जा सकता है—

---

१. सन् १६१३ के उत्पादन और रोजगार के आँकडो से तुलना कीजिए। देखिए इस पुस्तक के इसी अध्याय का पृष्ठ ६७।

तालिका

यूनाइटेड किंगडम मे सन् १६५७ में कोयले का उपभोग[1]

(लाख टनों में)

गैस	२६४	लोहा-इस्पात	५६
बिजली	४६५	इंजीनियरिंग तथा अन्य उद्योग	३१६
रेलवेज	११४	घरेलू तथा अन्य	६०७
कोक-भट्टियाँ	३०७	कुल	२१३२

कुल पूर्ति का पंचमाश से अधिक बिजली बनाने मे उपभोग होता है।

समुद्री व्यापार—सन् १६१३ से कोयले का निर्यात व्यापार बहुत घट गया है, सन् १६३८ से भी कम हुआ है। अन्य कारणों के अतिरिक्त इसका एक प्रमुख कारण आन्तरिक उपयोग मे वृद्धि होना भी है। सन् १६५७ मे ६६ लाख टन कोयला निर्यात किया गया (सन् १६१३ मे ६४० लाख टन किया गया था)[2]। सन् १६५७ मे ब्रिटिश कोयला खरीदने वाले मुख्य देश डेनमार्क, आयरिश रिपब्लिक, फ्रान्स और नीदरलैंड्स थे। कोयला ब्रिटेन म बाहर से मँगाया भी जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका से विभिन्न वर्षों मे उसने कोयला आयात किया है। सन् १६५५ मे ११५ लाख टन और सन् १६५७ मे २६ लाख टन कोयला आयात किया गया था।

ब्रिटेन को अधिक्तर कोयला खानो से अच्छी कोटि का कोयला मिलता है। दक्षिण वेल्स मे एन्थ्रेसाइट कोयला मिलता है जो जलाने में ज्वाला-शक्ति अधिक होने के कारण सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है। नार्थम्बरलैण्ड और डरहम कोयला क्षेत्रों से भी एन्थेसाइट या अर्द्ध-एन्थेसाइट किस्म का कोयला मिलता है। मध्य स्काटलैण्ड में कैनल किस्म का कोयला पाया जाता है जो जलाने के लिए घटिया माना जाता है परन्तु गैस बनाने की दृष्टि से उत्तम होता है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि ग्रेट ब्रिटेन में प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कोयला क्षेत्र के समीप प्रायः किसी महत्वपूर्ण व्यवसाय का विकास हुआ है। उदाहर-

1. Britain : An Official Handbook, 1959.
2. Ibid.

एगर्थ, यार्कशायर (West Riding of Yorkshire) में ऊनी व्यवसाय, नाटिंघम में रसायन और वस्त्र व्यवसाय, डर्बी तथा नाटिंघम के कोयला क्षेत्रो के समीप शेफील्ड के लोहे के कारखाने स्थित है जो उस कोयले का उपयोग करते हैं। नार्थम्बरलैण्ड और डरहम कोयला क्षेत्रों के समीप पोत निर्माण, बन्दूकें और रेल का सामान बनाने के कारखानो का विकास हुआ है। स्कॉटलैण्ड के कोयला क्षेत्रो के समीप लोहा इस्पात व्यवसाय और पोत निर्माण व्यवसाय विकसित हुए हैं। दक्षिण वेल्स मे टिन प्लेट बनाने और कई प्रकार की धातुएँ गलाने का काम होता है। लंकाशायर के कोयला क्षेत्रों के समीप सूती वस्त्र, इंजीनियरिंग तथा रसायनिक व्यवसायो का विकास हुआ है। कम्बरलैण्ड मे लोहा-इस्पात, और स्टैफर्डशायर मे मिट्टी के बर्तन बनाने का उद्योग (Pottery Industry) कोयला क्षेत्रो के समीप विकसित हुए हैं।

लोहा-इस्पात उद्योग
(Iron and Steel Industry)

ब्रिटेन की गणना विश्व के इस्पात उत्पादक देशो मे तीसरी की जाती है। सत्रहवी शताब्दी से ही यहाँ इस व्यवसाय का विकास प्रारम्भ हुआ था और उन्नीसवी शताब्दी के अन्त तक अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुका था। ब्रिटेन प्रथम देश समझा जाता है जहाँ कच्चा लोहा पिघलाने के लिए कोयले का प्रयोग किया गया और ब्रिटिश आविष्कारको के अनुसन्धानो द्वारा न केवल ब्रिटेन के लोहा-इस्पात उद्योग मे वरन् संसार भर मे क्रान्तिकारी विकास हुए।

स्थानीयकरण—ग्रेट ब्रिटेन मे लोहा इस्पात व्यवसाय के स्थानीयकरण पर मुख्य रूप से निम्नलिखित बातो का प्रभाव पडा है—

(१) कोयला क्षेत्रो की समीपता,
(२) कच्चे लोह क्षेत्रों की समीपता,
(३) चूना और भट्टियो के योग्य मिट्टी की सहज उपलब्धि,
(४) नदियो और समुद्र-तट की समीपता,
(५) यातायात की सुविधाएँ और इंजीनियरिंग का विकास, इत्यादि।

कुछ क्षेत्रो मे कच्चे लोहे के अभाव मे आयात किये हुए कच्चे लोहे पर निर्भर होना पडता है।

कच्चे लोहे के क्षेत्रो के समीप स्थित लिंकनशायर और नार्थम्पटनशायर लोहा-इस्पात व्यवसाय की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है जहाँ से ब्रिटेन का लगभग एक-तिहाई लोहा मिलता है। लोहा-इस्पात व्यवसाय के अन्य प्रमुख

क्षेत्र शेफील्ड, पश्चिमी और दक्षिणी यार्कशायर, लंकाशायर, डरहम, मिडलैण्ड, दक्षिणी वेल्स, क्लाइड नदी का बेसिन, लीसेस्टरशायर, कम्बरलैण्ड, वैस्टमोरलैण्ड, आक्सफोर्ड और रटलैण्ड हैं।

विकास—औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व लोहा बनाने का काम ब्रिटेन में बिखरा हुआ था। लोहा गलाने के लिए लकड़ी का कोयला काम में लाया जाता था। लकड़ी का अधिक उपयोग होते-होते लकड़ी की इतनी कमी अनुभव प्रतीत की जाने लगी कि उसके अभाव में लौह उद्योग की उन्नति रुक गई। लोहे की माँग बढ़ती जा रही थी और खानों से कोयले का उत्पादन भी बढ़ रहा था, अतः लोहा गलाने के लिए खान के कोयले को उपयोग में लाने की ओर ध्यान गया।

सन् १७५० तक लोहा-इस्पात व्यवसाय का जो विकास हुआ उसका वर्णन अध्याय दो में किया जा चुका है। इस अध्याय के 'तकनीकी विकास' खण्ड में लोहा-इस्पात व्यवसाय की तकनीकी प्रगति का परिचय दिया जा चुका है। लोहा-इस्पात व्यवसाय के विकास में उसे समझना आवश्यक है, उसे यहाँ दुहराया नहीं गया है। यह बताया जा चुका है कि अब्राहम डर्बी और बेंजामिन हट्समैन ने लोहा-इस्पात व्यवसाय में कोयले का उपयोग बढ़ाकर इस व्यवसाय की उन्नति में महान् कदम बढ़ाया। कोयला खानों के विकास से मार्ग सरल हो गया।

लोहा गलाने की भट्टियों में सुधार हुआ। सन् १८२१ के पश्चात् रेलों का विकास होने और सन् १८५० के बाद जलयानों (ships) में लोहे का उपयोग आरम्भ होने से लोहा-इस्पात की माँग बहुत बढ़ गई। विदेशों में भी रेलवेज और पोत-निर्माण का विकास करने के लिए ब्रिटिश निर्मित माल की माँग बढ़ी। सन् १८७० में ब्रिटेन इस्पात उत्पादक देशों में प्रथम था, अन्य देश तो आरम्भ कर रहे थे जिसके लिए वे स्वयं ब्रिटेन की सहायता ले रहे थे।

सन् १७२० में ब्रिटेन का ढले हुए लोहे (पिगआयरन) का उत्पादन लगभग १७ हजार टन था और सन् १८७१ में लगभग ६५ लाख टन हो गया था।

सन् १८५५ में हेनरी बिसीमर ने लोहे से कार्बन की मात्रा कम करके इस्पात बनाने में सफलता प्राप्त की जिसे बिसीमर प्रक्रिया कहा जाता है। इस विधि से बने इस्पात को तेजाबी इस्पात कहा जाता था। इस प्रक्रिया का उपयोग

फासफोरस-रहित कच्चे लोहे मे ही किया जाता था। इंगलैण्ड मे ऐसा कच्चा लोहा प्रायः नही मिलता था, अतः स्वीडन और स्पेन से मँगाना पडता था। फासफोरस-युक्त लोहे से इस्पात बनाने की प्रक्रिया का विकास टॉमस और गिलक्रिस्ट ने किया। तत्पश्चात् खुले-चूल्हे की पद्धति का विकास हुआ और सन् १८७८ मे सर विलियम सीमेन्स (Siemens) ने लोहा गलाने के लिए बिजली की भट्टी निकाली। तकनीकी प्रगति का क्रम रुका नही, प्रगति होती रही। सन् १८८० के पूर्व इस्पात का औसत वार्षिक उत्पादन नौ लाख टन से कम था। सन् १९१३ मे सत्तर लाख टन के लगभग हो गया। इस समय तक संयुक्त राज्य अमेरिका और जर्मनी ने भी पर्याप्त प्रगति कर ली थी। सयुक्त राज्य अमेरिका का उत्पादन ब्रिटेन से बहुत अधिक हो गया था।

प्रथम महायुद्ध काल (१९१४-१८) मे युद्धकालीन सामग्री के लिए लोहा-इस्पात की माँग बढ़ने के कारण लोहा-इस्पात के कारखानो को बहुत लाभ हुए, उत्पादक कम्पनियो के अंशो के मूल्य बढ़ गये। परन्तु बाद मे श्रमिको की मजदूरियाँ भी बढ़ी, सरकार ने इस्पात के मूल्य पर नियन्त्रण लगाये और व्यापार पर भी प्रतिबन्ध लगाये गये।

प्रथम महायुद्ध समाप्त होने के पश्चात् लोहा इस्पात के निर्मित माल को माँग घटी। सन् १९२० से ब्रिटेन के लोहा-इस्पात उद्योग को कई कठिनाइयो का सामना करना पडा जिनमे प्रमुख ये हैं—

१. इस्पात के मूल्य घटे। सन् १९२९ के बाद की मन्दी तो बहुत ही गम्भीर थी।

२. विदेशो मे ब्रिटिश इस्पात माल की माँग घटी जिससे उसके निर्यात व्यापार को भारी क्षति हुई। इसके कई कारण थे : (क) अन्य देशो मे लोहा-इस्पात का बढा हुआ उत्पादन, (ख) युद्ध की ध्वसात्मक क्रिया के कारण कई ग्राहक देशो की क्रय शक्ति मे कमी, (ग) ब्रिटिश इस्पात का अपेक्षाकृत अधिक मूल्य, इत्यादि।

३. ब्रिटिश इस्पात का उत्पादन-व्यय सयुक्त राज्य अमेरिका और जर्मनी की अपेक्षा अधिक था क्योंकि इन देशो मे प्राकृतिक सुविधाएँ अधिक उपलब्ध थी। दूसरे, उन्होने इगलेण्ड के औद्योगिक सगठन के दोषो से सबक सीखकर उनका निराकरण आरम्भ से ही कर लिया था। उदाहरण के लिए उन्होने उत्पादन की बडी इकाई (बडे कारखानो) पर जोर दिया और भट्टियाँ आधुनिकतम प्रकार की बनाई, इत्यादि। तीसरे, उन देशो मे उपलब्ध लोहा अच्छी

किस्म का था। चौथे, उन देशो मे इंगलैण्ड की अपेक्षा कोयला सस्ता था। इसके अतिरिक्त ग्रेटब्रिटेन मे मजदूरी अधिक थी जबकि काम के घण्टे कम थे, ब्रिटिश उद्योग मे पूँजी का विनियोग आवश्यकता से अधिक (over-capitalization) था।

१८ सन् १९३० तक ब्रिटिश लोहा-इस्पात उद्योग की हालत काफी गिर गई थी जिसका उपर्युक्त कारणो के अतिरिक्त एक कारण यह भी था कि यूरोप के प्रमुख इस्पात उत्पादक देशो ने मिलकर ऐसा संगठन बनाया था जिससे ब्रिटेन को विदेशी व्यापार मे हानि हुई। विवश होकर ब्रिटेन को भी स्वतन्त्र-व्यापार नीति का परित्याग करना पड़ा।

सन् १९३० मे इस उद्योग के विकास के लिए सरकारी तौर पर महत्वपूर्ण कदम उठाये गये। कीमतो को स्थिर रखने और निर्यात बढ़ाने की ओर ध्यान दिया गया। सन् १९३४ मे लोहा इस्पात के व्यापार के पुनर्गठन की दृष्टि से ब्रिटिश आयरन एण्ड स्टील फैडरेशन की स्थापना हुई। द्वितीय विश्व युद्ध (१९३९-४५) छिड़ जाने पर स्थानीय माँग बढ़ने से आरम्भ मे लाभ दिखाई दिये परन्तु निर्यात व्यापार की दृष्टि से तथा विध्वंसकारी प्रभावो से युद्ध का इस्पात उद्योग पर बुरा असर पड़ा। सन् १९४६ मे लोहा इस्पात की उत्पादन शक्ति बढ़ाने के लिए पुनः प्रयत्न किये गये जिसमे सफलता मिली। आधुनिकीकरण और विकास का कार्य बड़े पैमाने पर किया जा रहा है और यह योजना है कि सन् १९६३ तक इस्पात (crude steel) का उत्पादन लगभग २८० लाख टन हो जाये जिसमे मे ५० लाख टन का निर्यात हो सके। सन् १९४९ मे लोहा-इस्पात उद्योग कानून द्वारा सन् १९५१ तक इस उद्योग का अधिकाश सार्वजनिक स्वामित्व मे ले लिया गया था परन्तु सन् १९५३ मे नये कानून द्वारा निजी कम्पनियो को ही स्वामित्व लौटा दिया गया था।

वर्तमान स्थिति—इस समय ब्रिटेन संसार के चार प्रमुख इस्पात उत्पादक देशो मे गिना जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत रूस का इस्पात का उत्पादन ब्रिटेन से अधिक है। पश्चिमी जर्मनी ब्रिटेन के मुकाबले का है।[1]

---

१. सन् १९५१ मे विश्व के इस्पात उत्पादन का ४५ प्रतिशत सयुक्त राज्य अमेरिका मे, १६ प्रतिशत सोवियत रूस मे, ९ प्रतिशत यू० के० से तथा ६ प्रतिशत पश्चिमी जर्मनी से प्राप्त हुआ था।

ग्रेट ब्रिटेन विशेष रूप से अपने इस्पात की अच्छी किस्मो के लिए विख्यात है। सन् १९४६ में पिग आयरन का उत्पादन ७८ लाख टन और इस्पात का १२७ लाख टन था। सन् १९५७ मे पिग आयरन का उत्पादन बढ़कर १४३ लाख टन और इस्पात का २१७ लाख टन हो गया। सन् १९५७ मे लोहा-इस्पात के प्रत्यक्ष रूप से होने वाले निर्यात ३६ लाख टन थे जिसका मूल्य २१३० लाख पौंड था। अप्रत्यक्षतः होने वाले निर्यात लगभग ४४ लाख टन थे जो इस्पात-उपभोग करने वाले व्यवसायो द्वारा निर्मित इस्पात के माल के रूप में थे। सन् १९५७ मे लोहा इस्पात मे रोजगार पाने वाले व्यक्तियो की संख्या ४,६०,००० थी।

ब्रिटिश लोहा इस्पात उद्योग की यह विशेषता है कि वह कोयला-क्षेत्रो के समीप केन्द्रित है जहाँ प्रायः अच्छी कोटि का कोयला सुलभ है परन्तु पहली कठिनाई तो यह है कि कच्चे लोहे के ब्रिटेन के भण्डारो के धीरे-धीरे समाप्त होते जाने से उसे कच्चा लोहा स्वीडन, उत्तरी अफ्रीका इत्यादि से मँगाना पडता है। दूसरी मुख्य समस्या श्रमिको की कमी तथा उत्पादन व्यय की अधिकता है। यदि दूसरी समस्या का समाधान हो सका तो भविष्य मे दीर्घ काल तक ब्रिटिश इस्पात उद्योग की उन्नति होती रहेगी क्योकि ससार के अनेक नये स्वतन्त्र हुए राष्ट्र औद्योगीकरण की दिशा मे प्रयत्नशील हैं।

प्रश्न

1. Estimate the services of Arkwright, Cartwright, Crompton and Kay to the British Industry.

2 Trace the growth and development of the Cotton Textile Industry in England Why was this industry localised in Lancashire?

3. "The economic history of England can well be interpreted as the story of her coal mining." Discuss this statement

4. Give a brief account of the historical development of the Iron and Steel of Great Britain. Write a few lines about its present position and examine its future prospects.

5 "Great Britain lost her leadership in one staple industry after another as modern industrialism spread over the world." Discuss.

अध्याय ५

कृषि का विकास

[समावरण ग्रान्दोलन, कृषि क्रान्ति, कृषि क्रान्ति की विशेषताएँ, कृषि क्रान्ति का कृषकों पर प्रभाव, ग्रांग्ल कृषि क्रान्ति से भारत के लिए सबक, कृषि क्रान्ति और औद्योगिक क्रान्ति का सम्बन्ध, ग्रन्न कानून, सन् १८५० के बाद ब्रिटिश कृषि की दशा, उत्पादन, सरकारी कृषि नीति, प्रश्न ।]

अठारहवी शताब्दी के मध्य तक ग्रेट ब्रिटेन की कृषि मे जो विकास हुए उनका संक्षिप्त परिचय अध्याय एक और दो म दिया जा चुका है । वस्तुतः १८वीं शताब्दी तक ग्रेट ब्रिटेन एक कृषि प्रधान देश था परन्तु उसके बाद, यद्यपि कृषि मे व्यापक और महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, कृषि गौण व्यवसाय रह गया और ग्रेट ब्रिटेन संसार का महान् औद्योगिक राष्ट्र बन गया ।

कृषि की अपेक्षा उद्योग की अधिक उन्नति पर ध्यान देने के अनेक कारण थे । यह सर्वविदित है कि कृषि उत्पादन मे वृद्धि करने के प्रयत्न किये जायें तो उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने लगता है जब कि निर्माण व्यवसायों मे लागत घटती है । कृषि के क्षेत्र मे ब्रिटेन की प्राकृतिक कठिनाइयाँ भी थीं— ग्रेट ब्रिटेन की जनसख्या अधिक थी और भूमि का क्षेत्रफल कम था । दक्षिण-पूर्वी भागों को छोड़कर देश की अधिकांश भूमि कृषि की फसलें उगाने के लिए कम उपयुक्त थी। ब्रिटेन मे श्रमिकों की मजदूरियाँ भी अन्य देशों की अपेक्षा प्रायः अधिक रही हैं। इसके अतिरिक्त यूरोप के कुछ देशों तथा साम्राज्यगत देशों से, कम से कम आरम्भ मे, सस्ता अनाज मिल जाने के कारण उसने औद्योगिक विकास की ओर अधिक ध्यान दिया । जैसा कि अन्यत्र बताया जा चुका है ब्रिटेन मे औद्योगिक विकास के लिए परिस्थितियाँ भी अनुकूल थीं ।

सन् १७५० तक की ब्रिटिश कृषि की अवस्था तथा उसके विकास का विवरण अध्याय एक और दो मे दिया जा चुका है । सन् १७५० के लगभग आंग्ल कृषि मे जो विकास हुए उन्हे कृषि-क्रान्ति कहकर पुकारा जाता है ।

कृषि क्रान्ति की अनेक विशेषताओं में एक प्रमुख विशेषता समावरण आन्दोलन (Enclosure Movement) की प्रगति थी। यहाँ पहले समावरण आन्दोलन के सम्बन्ध में समझ लेना सहायक सिद्ध होगा।

समावरण आन्दोलन
(Enclosure Movement)

ब्रिटेन के आर्थिक विकास के इतिहास में जमीन घेरने का आन्दोलन (समावरण आन्दोलन) दो बार हुआ। पहली बार यह तेरहवीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ था जिसका प्रभाव पन्द्रहवी शताब्दी तक अधिक स्पष्ट नहीं हो पाया था। दूसरी बार यह आन्दोलन अठारहवीं शताब्दी में हुआ जिसे कृषि क्रान्ति का अङ्ग समझा जाता है।

प्रथम बार के भूमि समावरण आन्दोलन के द्वारा खुले खेतों की प्रणाली (open field system) का अन्त हो गया और किसान के ऊपर से सामुदायिक नियन्त्रण हट गया। यह समय मनोरियल प्रणाली के पतन का काल था। इस समय के समावरण आन्दोलन की चार मुख्य बातें थीं—

१. बिखरे हुए खेतों की चकबन्दी और बाड़ा बन्दी ;
२. कृषि योग्य भूमि का पशुचर भूमि की भाँति प्रयोग;
३. भूमि के प्रति लगाव, अधिक भूमि के ऊपर स्वामित्व पाने के प्रयत्न,
४. व्यर्थ पड़ी हुई भूमि को उपयोग में लाना और संयुक्त अधिकारों (common rights) की समाप्ति।

तेरहवीं शती में प्रारम्भ होने वाले इस आन्दोलन का मुख्य कारण ऊन की बढ़ती हुई माँग थी। अधिकतर कृषि भूमि को पशुचर भूमि में बदल दिया गया क्योंकि कृषि की अपेक्षा भेड़ें पालना अधिक लाभदायक था। इसके अतिरिक्त भेड़ें पालने के काम में कृषि कार्य की अपेक्षा बाहरी मजदूरों की कम आवश्यकता होती थी अतः बढ़ती हुई मजदूरियाँ नहीं देनी पड़ती थीं। पुराने भू-स्वामियों (manorial lords) ने नये पूँजीवादी ढंग पर अधिकतर कृषि भूमि पर भेड़ें पालना प्रारम्भ कर दिया।

पहले शिकमी काश्तकार (tenant) को गाँव की सम्मिलित भूमि (common land) इस्तैमाल करने का अधिकार था परन्तु अब भूमि-समावरण आन्दोलन के उपरान्त उसका कोई अधिकार नहीं रहा। अतः उन्होंने इस आन्दोलन के विरुद्ध आवाज उठाई।

इस दिशा में कानून पास किये गये। सन् १२३५ में एक कानून बनाया गया जिसके अनुसार यह स्वीकार किया गया कि भूस्वामी (lord) व्यर्थ जमीनो (waste lands) को निजी अधिकार में ले सकता है परन्तु यह आवश्यक कर दिया गया कि उसे अपने काश्तकारो के लिए पर्याप्त चरागाह छोडने पड़ेंगे।

लगभग एक शताब्दी तक समावरण आन्दोलन अनुकूल वातावरण में चलता रहा। परन्तु तदुपरान्त जनता मे इसके विरुद्ध भावनाएँ उठी और सरकार को भी हस्तक्षेप करना पडा। सन् १४८९ में एक कानून बनाया गया और कृषि भूमि को चरागाह बनाना वर्जित कर दिया गया। सन् १५१४ में एक और एक्ट द्वारा इस उपाय को और भी अधिक दृढ कर दिया। सन् १५१७ और सन् १५४८ में इस विषय का अध्ययन करने के लिए आयोग (कमीशन) नियुक्त किये गये। परिणामस्वरूप सन् १५५२, १५५४, १५६२ और १५९३ में नये एक्ट बनाये गये परन्तु सन् १६२४ में उनको रद्द कर दिया गया।

भेड पालने के लिए जमीन घेरने के आन्दोलन का विरोध होने का मुख्य कारण निर्धनो की दुर्दशा थी। मजदूरो की माँग कम हो जाने से मजदूरियाँ कम हो गई थी। बेरोजगारी से पीड़ित श्रमिक रोजगार की तलाश में इधर-उधर फिरने लगे। उनकी कहीं पूछ नहीं थी। यदि वे कस्बो में नये विकसित हो रहे ऊनी वस्त्र उद्योग में काम पाने के लिए जाते तो शिल्प सङ्घ (craft guilds) उन्हें बुरी दृष्टि से देखते थे। इसके अतिरिक्त उस समय ऊनी व्यवसाय मे भी रोजगार देने की इतनी क्षमता नहीं थी कि कृषि से विस्थापित समस्त लोगो को रोजगार दिया जा सकता। देहात में कोई धन्धा नहीं था। अतः देहातो में शरीर से समर्थ भिखारियो और निर्धनो की संख्या बढ़ने लगी।

यह स्मरणीय है कि यद्यपि समावरण आन्दोलन को काफी महत्त्व दिया गया और उसका प्रभाव भी गम्भीर पड़ा परन्तु सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक इंगलैण्ड की आधी भूमि से भी अधिक पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इसी पृष्ठभूमि में हम यह समझ सकते हैं कि दूसरी बार समावरण आन्दोलन किस प्रकार आरम्भ हुआ।

दूसरे आन्दोलन का काल १८वीं शती के मध्य से १९वीं शती के मध्य तक (१७५०-१८५०) समझा जाता है। इस समय समावरण आन्दोलन के लिए अनुकूल दशाएँ मुख्यतया निम्नलिखित थीं—

(१) ब्रिटिश पार्लियामेण्ट में भूमिपतियों का अधिक प्रभाव था और वे भूमि के समावरण में रुचि रखते थे अतः कानून बनाना सरल था,

(२) आदम स्मिथ प्रभृति अर्थशास्त्रियों ने खुले खेतो की प्रणाली के दोषो तथा कृषि की बर्बादी को कम करने की दृष्टि से समावरण आन्दोलन का समर्थन किया,

(३) औद्योगिक क्रान्ति ने ब्रिटेन के निवासियो की आवश्यकताओं और दृष्टिकोण में अन्तर ला दिया था,

(४) कृषि मे पूँजी लगाना प्रारम्भ हो गया था; और

(५) आधुनिक वैज्ञानिक कृषि का जन्म हो चुका था जिसके लिए बड़े बड़े खेतो की आवश्यकता होती है।

इन दशाओं का परिणाम यह हुआ कि समावरण आन्दोलन का नया स्वरूप प्रकट हुआ।

इस काल मे भी छोटे-छोटे खेतो को बड़े खेतो मे बदलने की क्रिया मुख्य थी। औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप ऐसी जनसंख्या अधिक हो गई जो खाद्यान्नों और कच्चे माल के लिए दूसरो पर आश्रित हो गई। यह बढ़ी हुई माँग कृषि के पुराने तरीको से पूरी होना सम्भव नही थी। कृषि-सुधार के लिए बड़े खेतो की आवश्यकता थी। छोटे खेतो पर खेती करने वाले बड़े पैमाने की खेती करने वालों की अपेक्षा लाभ भी कम पा सकते थे। नेपोलियन से होने वाले युद्धो के समय (सन् १७९३-१८१५) मे कृषि की उपज की कीमतें बहुत बढ़ जाने से छोटे खेत भी चलते रहे।

छोटे-छोटे खेतो का बड़े खेतो मे परिवर्तन पहले निजी (प्राइवेट) समझौतो के द्वारा हुआ। पीछे इन समझौतों का पंजीयन (रजिस्ट्रेशन) माली अदालतों (Courts of the Exchequer) मे होने लगा। जिन व्यक्तियों मे निजी समझौते होते थे उनमे प्रायः झगड़े हो जाते थे इसलिए पार्लियामेण्ट द्वारा एक्ट (private acts) पास किये गये। इस प्रकार का एक्ट पास करने मे पहले पार्लियामेण्ट कुछ कमिश्नर (आयुक्त) नियुक्त करती थी जो नये समावरण की सीमा निश्चित करा दें। परन्तु ऐसा करने मे और खेतो की सीमा पर दीवाल, झाड़ियाँ इत्यादि लगाने मे बहुत व्यय होता था। अतः प्रविधि (procedure) को सरल बनाने के लिए सन् १८०१ मे एक सामान्य समावरण कानून (General Enclosure Act) पास किया गया जिसके अनुसार प्राइवेट एक्ट शीघ्रता और सरलता से पास हो जाते थे, और कुल व्यय मे भी कमी हो गई।

सन् १८३६ मे एक और एक्ट पास हुआ जिसके द्वारा यह अनावश्यक कर दिया गया कि पार्लियामेण्ट की सहमति ली जाये। यदि दो तिहाई सम्बन्धित व्यक्ति चाहें तो सम्मिलित भूमि (common land) का समावरण कर सकते थे। स्पष्ट है कि सरकार इस आन्दोलन के पूर्णतया पक्ष मे थी।

समावरण आन्दोलन का प्रभाव मुख्यतः यह पडा कि कृषि श्रमिक का भूमि से सम्बन्ध छूट गया और कृषि का संगठन आधुनिक पूँजीवादी ढग पर होने लगा। कृषि मे उन्नति और कृषि कला म विकास के रूप मे इस आन्दोलन के लाभ मिले परन्तु छोटे किसानो पर बुरा प्रभाव पडा। उनकी जमीनें छिन गई, गाँव मे उनको काम नही मिलता था, अतः वे विस्थापितो की भाँति रोजगारो की तलाश मे नगरो की ओर बढे जहाँ प्रारम्भ मे उन्हे अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडा।

कृषि-क्रान्ति (Agricultural Revolution)

अठारहवी शताब्दी के मध्यकाल मे जिस समय ब्रिटेन औद्योगिक क्रान्ति की ओर अग्रसर हो रहा था लगभग उसी समय से उन्नीसवी शताब्दी के मध्य तक (१७५०-१८५०) वहाँ की कृषि मे आमूल चूल परिवर्तन हुए जिन्हे कृषि क्रान्ति कहा जाता है।

कारण—ब्रिटेन में कृषि क्रान्ति का जन्म अनेक कारणों से हुआ था। उस समय जनसख्या में वृद्धि हो रही थी और देश में खाद्यान्नो का अभाव था जिसके कारण उनकी कीमतें बढ रही थी। अतएव एक ओर तो कृषि में सुधार करने और उपज बढाने के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन मिला, दूसरी ओर वातावरण भी अनुकूल था। कृषि मे सुधार करने और नई विधियो के प्रयोग के लिए डटकर प्रचार किया जा रहा था। पार्लियामेण्ट में भूमिपतियो का जोर था जिसके कारण अन्न कानून और समावरण कानून पास हुए। मुद्रा के प्रचलन मे वृद्धि हुई थी और भूस्वामियो का दृष्टिकोण ही बदल गया था। उनका उद्देश्य कृषि से लाभ कमाना प्रमुख हो गया था। पूँजी निर्माण मे वृद्धि हुई थी और पूँजीपति कृषि मे अधिकाधिक पूँजी विनियोग करने मे रुचि ले रहे थे। इस दिशा मे तत्कालीन हुए यन्त्रो के आविष्कार और नई पद्धतियो के विकास के कारण सहायता मिली। कृषि और उद्योग अब साथ साथ चलाना सम्भव नही रहा था।

संक्षेप मे, कृषि उपज की बढ़ती हुई माँग, कानूनी सहायता, पूँजी की

पर्याप्त पूर्ति, नये आविष्कार और कृषि सुधारकों के सबल प्रयत्न कृषि-क्रान्ति के मुख्य कारण थे।

९ कृषि-सुधारक—"नवीन कृषि" की सिफारिश करने वालों मे आर्थर यग, जेथ्रोटल, लार्ड टाउनशेण्ड, रॉबर्ट बेकवेल तथा टॉमस कोक के नाम अधिक उल्लेखनीय हैं। आर्थर यग ने अपने नये विचारो को पुस्तकाकार प्रकाशित कराया और एक पत्रिका 'Annals of Agriculture' निकाली जिसके द्वारा अपने अनुभवो और विचारो का प्रसार किया। जेथ्रोटल ने बीज बोने के लिए एक नये तरीके ड्रिल (Drill) का आविष्कार किया। उसके पहले बीज हाथ से दाएँ बाए बिखेर कर बोए जाते थे, यह प्रणाली मुद्दत से चली आ रही थी जिसमे बीज की बर्बादी होती थी और बीज समान रूप मे ठीक दूरी पर नही गिरता था। ड्रिल के प्रयोग से बीज भूमि मे गहराई पर गिरता था, बीज कतार मे पड़ता था और कम लगता था तथा पैदावार अच्छी होती थी। जेथ्रोटल ने खेत की गहरी जुताई पर जोर दिया, बीजो के चुनाव की सिफारिश की और बताया कि पौधा की जडो मे दृढ़ता और अच्छी उपज के लिए बीज दूर-दूर बोना चाहिए। उसने मिट्टी को तोड़कर बारीक करना अच्छा बताया और मिट्टी पोला करने के लिए अश्व चालित यंत्र निकाला। पशुओ के लिए चारे की फसलें उगाने पर भा टल ने जोर दिया।

लॉर्ड टाउनशेन्ड ने एक नोरफोक पद्धति चलाई जिसकी विशेषता यह थी कि भूमि परती नही छोड़नी पड़ती थी, भूमि पर फसलें हेर फेर कर उगाई जाती थी जिसके अनुसार अनाज की फसल एक वर्ष छोड़कर बोई जाती थी और बीच के वर्षों मे क्लोवर की फसल तथा शलजम इत्यादि जड़दार फसलें उगाई जाती थी जिनसे पशुओ के लिए चारा भी मिलता था और उर्वरता बनी रहती थी। यह चतुर्थवर्षीय हेरफेर (rotation) की पद्धति थी। उसने उपयुक्त खादो पर भी जोर दिया।

रॉबर्ट बेकवेल ने भेडो, बैलो तथा अन्य पशुओ की नस्ल सुधार की दिशा मे महत्वपूर्ण कार्य किया जिसके परिणामस्वरूप भेडो का मांस और ऊन बढ़ा, गाय के बछडो और बैलो का वजन बढ़ा और संक्रामक रोगो मे भारी कमी हुई। टॉमस कोक ने आर्थर यंग के विस्तृत अनुभवो और नये विचारो को व्यावहारिक रूप दिया। उसे उत्तराधिकार मे होकम की जागीर मिली थी जिसकी अवस्था शोचनीय थी परन्तु उसने मिट्टी को हल्की भुरभुरी बनाने, खादो द्वारा उर्वरता मे वृद्धि करने तथा अनेक नये उपायो के प्रयोगो

मे पाँच लाख पौण्ड से अधिक व्यय किये। उसने आसामियो को नए उपाय अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया। वस्तुतः उसे अपने जीवन मे प्रयत्नो का उचित पारितोषिक मिला और उसकी जागीर पश्चिमी यूरोप मे आदर्श समझी जाने लगी थी। उसने पशुओ के एक अच्छे चारे का प्रचार किया। उसने दोखम मे एक प्रसिद्ध कृषि सम्मेलन बुलाया था।

कृषि-क्रान्ति की विशेषताएं

कृषि-क्रान्ति की मुख्य विशेषताएँ निम्नाकित थी —

कृषि मे पूँजी का अधिकाधिक विनियोग—कृषि-क्रान्ति की मुख्य विशेषता यह थी कि कृषि मे पूँजी का विनियोग बढा। १८वी शताब्दी मे भूमि-स्वामित्व को इंगलैण्ड मे काफी सामाजिक प्रतिष्ठा मिली। अतः बडे व्यापारियों ने काफी भूमि खरीदी। इन व्यापारियो के पास साधनो की कमी नहीं थी। इन साधनो का प्रयोग उन्होंने भूमि की उर्वरता बढाने, नई फसलें उगाने तथा नये वैज्ञानिक तरीको के लिए किया।

(२) गाँवो की अधिकतर जमीन छोटे छोटे **कृषकों और भू-स्वामियों के हाथों से निकलकर बड़े जमींदारों (landlords) के हाथों में जाने लगी।** इसका मुख्य कारण यह था कि छोटे किसान बडे जमीदारो की स्पर्द्धा का मुकाबला न कर सके और अपनी भूमि उन्हे बेचने को बाध्य हुए। पुराने भू-स्वामी परिवारो मे नये पूँजीपति-कृषको के विवाहो का भी सम-दिशाई प्रभाव पडा। परिणाम यह हुआ कि खेत बडे बड होने गये। सन् १८४५ मे इंगलैण्ड मे खेत बहुत बडे बड़े बन चुके थे। नेपोलियन के युद्धो, अन्न की मांग बढने, इत्यादि से कीमतो मे वृद्धि का भी यही प्रभाव हुआ।

(३) **समावरण आन्दोलन (Enclosure Movement)**—आग्ल कृषि-क्रान्ति का तीसरा मुख्य पहलू जमीन घेरने के आन्दोलन का दुबारा जोर पकडना था। इसका प्रभाव भी यही पडा कि खेत बडे-बडे हुए। खुले खेतो की प्रथा समाप्त हो गई। आदम स्मिथ प्रभृति अनेक अर्थशास्त्रियो ने खुले-बिखरे और छोटे खेतों से होने वाली बर्बादियों को रोकने के लिए जमीन घेरने के आन्दोलन की सिफारिश की। पार्लियामेण्ट मे बडे भूमिपतियो का प्रभाव होने के कारण कानून भी पास हो गये।

यद्यपि जमीन घेरने के तरीकों मे अन्तर था परन्तु प्रारम्भ मे इस आन्दोलन की दो मुख्य विशेषताएँ थी : (१) कुल प्रभावित भूमि के ८० प्रतिशत मूल्य के भाग के स्वामियो की सहमति होनी आवश्यक थी तथा (२) पार्लियामेण्ट

द्वारा विशेष कानून पास किया जाना चाहिए था। सन् १८०१ में इस दिशा में कुछ और सरलता कर दी गई। सन् १८४५ में General Enclosure Act द्वारा Enclosure Commissioners समावरण आयुक्तो का एक बोर्ड बना दिया गया जिसको अधिकार दिया गया कि वह प्रस्तावित समावरणो के सम्बन्ध मे निर्णय दे। इस बोर्ड की स्थापना का मुख्य उद्देश्य लागत कम करना तथा शीघ्रता मे कार्य सम्पन्न सम्भव करना था। सन् १७०० से १७६० तक के समय मे ३,१२,००० एकड़ जमीन घेरी गई जबकि सन् १७६० से १८४० ई० तक की *अवधि मे ५५ लाख एकड के लगभग भूमि घेरी गई।*

(४) **कृषि कला में सुधार**—कृषि क्रान्ति की चौथी प्रमुख विशेषता यह थी कि कृषि कला मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। सन् १७६० के पश्चात् मूल्यो मे वृद्धि से इस दिशा मे विशेष प्रोत्साहन मिला। औद्योगिक क्रान्ति के कारण नये नगरो का विकास हो रहा था जिनमे बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए भोजन-सामग्री की माँग बढ रही थी। अतएव नये तरीकों का प्रयोग हुआ : (क) सन् १८०० मे नये मॉडल का हल काम मे लाया गया। इसी समय घोडे से चलने वाली अनाज निकालने की Threshing मशीन का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। अन्य यन्त्र काम मे आने लगे। (ख) कृषि कला मे सुधारो का विवेचन करने और नये उपयोगी उपायो का प्रचार करने के लिए कृषि-संगठन स्थापित हुए। इनमे विशेष उल्लेखनीय सस्थाएं सन् १८३८ मे स्थापित शाही कृषि समिति (Royal Agriculture Society) और दूसरी सन १८४२ मे स्थापित कृषि रसायन साहचर्य (Agricultural Chemistry *Association) थी जिनका सराहनीय कार्य रहा। (ग) व्यर्थ पडी हुई (waste* land) तथा दलदली भूमियो को कृषि योग्य बनाने (reclamation) के प्रयत्न किये गये। (घ) कृषि मे फसलें बदलकर बोने (rotation of crops) की पद्धति आरम्भ की गई जिसके अनुसार, उदाहरणार्थ प्रत्येक चार वर्ष के समय मे बारी बारी से गेहूँ, जौ, जई, राई, आलू, इत्यादि उगाए जायें। (ङ) भूमि की उर्वरता बढाने तथा चारे की दृष्टि से शलजम जैसी फसलों की खेती मे वृद्धि की गई।

(५) कृषि मे व्यवसायीकरण (commercialisation) तथा विशिष्टीकरण (specialisation) की प्रवृत्ति बढी।

(६) पशुओ की नस्ल सुधार के लिए भी वैज्ञानिक और नए तरीके अपनाये गये तथा पशु-प्रदर्शिनियाँ संगठित की गईं।

(७) दुग्ध व्यवसाय (Dairy Farming) और शाक-फल तरकारियो की खेती (Horticulture) का विकास हुआ। इस प्रकार कृषि का बहुमुखी विकास हुआ।

कृषि क्रान्ति का कृपकों पर प्रभाव

कृषि क्रान्ति का राष्ट्र की समूची अर्थ व्यवस्था पर व्यापक प्रभाव पड़ा। सामान्यतया कृषि-क्रान्ति द्वारा हुए परिवर्तन देश के हित मे समझे जाते हैं परन्तु सक्रान्ति काल (transition period) मे कई कठिनाइयाँ उत्पन्न हुई। कृपको पर मुख्यतः अधोलिखित प्रभाव पडे :—

१. छोटे-छोटे किसानो को कृषि से हटना पडा। पूंजीपति व्यापारियो ने बडे बडे खेत खरीद लिए और कृषि सुधार किये तो उनकी स्पर्द्धा में छोटे किसान ठहर न सके। उन्हें बडे बडे नये भू स्वामियो को अपने खेत बेचने को बाध्य होना पड़ा।

२. कृपको और कृषि-श्रमिको को सहायक ग्रामोद्योगों मे अब काम न मिलने से उन्हें गाँव छोड़ना पड़ा क्योकि उद्योगों की घरेलू प्रणाली टूट रही थी, और श्रमिकों से कारखानो में ही काम कराना आरम्भ हो चुका था। किसान अब कृषि कार्य के साथ अन्य धन्धे नही चला सकता था।

३. कृषि में यत्रो के प्रयोग के कारण रोजगार देने की क्षमता कम हो गई थी और ग्राम निवासियो को रोजगार की तलाश मे कस्बो और नगरो मे भटकना पडा जिन्हें पहले कृषि में काम मिल जाता था।

४. समावरण आन्दोलन के पश्चात् गाँव के छोटे किसानो को जलाने के ईंधन और पशुओ के लिए चारे की तंगी हो गई।

५. ऑग तथा शार्प लेखको ने लिखा है कि कृषि क्रान्ति के परिणामस्वरूप किसानों के तीन वर्ग हो गये : भू स्वामी (landed proprietors) जिनके पास बडे बडे खेत थे परन्तु वे स्वय खेती का कार्य नहीं करते थे, लगान पर अन्य कृषको को जोतने के लिए दे देते थे। द्रव्य के अधिक प्रचलन तथा लगान नगदी मे देने की प्रथा के विकास से यह सम्भव हो गया था। ये भू-स्वामी प्राय: गाँवो मे *नहीं रहते थे;* (ख) *कृषक (farmers) जो भूमि के स्वामी नहीं होते थे* वरन् लगान पर भूमि लेकर पूंजीवादी पद्धति पर लाभ के लिए उद्योगो की भाँति साहसो का कार्य करते थे; तथा (ग) तीसरे वर्ग मे वे कृषि श्रमिक थ जो न तो भूमि के स्वामी थे और न ही व्यवस्थापक, वे मजदूरी लेकर कार्य

करते थे। बेगार प्रथा समाप्त हो गई थी और मजदूरी द्रव्य मे देने की प्रथा प्रारम्भ हो गई थी। ये तीन वर्ग अब भी पाये जाते है।

६. जिन छोटे किसानो का रोजगार छिना उन्हे अवश्य कठिनाई हुई परन्तु अन्य कृषको और कृषि श्रमिकों की दशा सुधरी क्योकि कृषि कला मे विकास होने तथा उपज के मूल्यो मे वृद्धि होने के कारण उन्हे पहले की अपेक्षा अधिक आय होने लगी थी।

आग्ल कृषि-क्रान्ति से भारत के लिए सबक

यद्यपि इगलैण्ड की तत्कालीन तथा भारत की आधुनिक परिस्थितियो मे हमें स्पष्ट अन्तर समझना पडेगा तथापि हम आग्ल कृषि-क्रान्ति से बहुत कुछ सीख सकते है। वस्तुतः इस दिशा मे भारत पहले ही सही मार्ग पर चलने का प्रयत्न कर रहा है।

एक ओर भारत को विकास की अनेको योजनाओ के लिए काफी मात्रा मे विदेशी विनिमय की आवश्यकता है, दूसरी ओर खाद्याभाव के कारण हमें भारी मात्रा में अन्न का आयात करना पडता है। भोजन की कमी भारत की स्थायी समस्या बन गई है। खाद्यान्नो के ऊँचे मूल्य और भुखमरी इसके प्रमाण है। कई उद्योगो के लिए हम पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल भी नहीं उगा पाते और इसलिए हमे कच्चे माल का आयात करना पडता है। पोषण की दृष्टि से भी भारतीय कृषि की उपज बहुत पीछे है।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है आग्ल कृषि क्रान्ति की विशेषताओ मे मुख्य (क) पूँजी का विनियोग, (ख) कृषि कला में सुधार (ग) खेतो का बडा किया जाना, इत्यादि थी। भारतवर्ष में भी अर्थ व्यवस्था के सर्वाङ्गीण विकास की दृष्टि से कृषि सुधार के इन पहलुओ पर ध्यान दिया जाना परमावश्यक है।

भारत मे कृषि के लिए वित्त के पर्याप्त साधन सुलभ नहीं है। भारत में भूमि बन्धक बैंको और साख सहकारिता का विकास अभी तक प्रारंभिक अवस्था मे है। ब्रिटिश ढग की पूँजीवादी कृषि पद्धति की भारतीय कृषि के लिए सिफारिश करना तो उचित प्रतीत नही होता परन्तु वित्त के पर्याप्त साधनो तथा पूँजी के विनियोग की व्यवस्था करनी ही पडेगी।

टैकनिक की दृष्टि से भारतीय कृषि बहुत पिछडी अवस्था मे है, जिसमे रखकर हम अपनी अर्थ व्यवस्था को आगे बढाने मे सफलता प्राप्त नही कर सकते। शताब्दियो पुराने हमारे हल और दुर्बल बैल हमे पुरानी लीक पर

घसीटे चल रहे हैं। ट्रैक्टरो तथा समकक्ष यत्रों का प्रयोग भारत की वर्तमान अवस्था मे विवादग्रस्त है, परन्तु यह कहना अनुचित न होगा कि हमे अपने तरीको मे और औजारो मे सुधार करना आवश्यक है। खादो, अच्छे बीजों, सिचाई, खेतो की रखवाली, फसलो को बदलकर बोने (crop rotation), मिली जुली फसलें बोने (mixed crops) भूमि-संरक्षक इत्यादि की ओर हमारा ध्यान अवश्य जाना चाहिए। कृषि मे विविधता, चारे की फसलें उगाने तथा पशुओ के नस्ल सुधार की दशा मे हमारे प्रयत्न ठोस और जोरदार होने चाहिएँ।

आर्थिक इकाइयों के अभाव मे कृषि मे सुधार करना और पूँजी का विनियोग करना निरर्थक है। इसके लिए भी हमे ब्रिटेन के तरीके तो नही परन्तु अपनी परिस्थितियो के अनुकूल उपाय अपनाने होगे।

यह उल्लेख करना अनुचित न होगा कि भारत मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त जनप्रिय सरकार ने उपर्युक्त दिशाओ मे योजनाबद्ध कार्यक्रम द्वारा पर्याप्त प्रगति करने के प्रयत्न किये हैं। ये प्रयत्न तृतीय योजना मे तथा आगे भी जारी रहेंगे।

कृषि-क्रान्ति और औद्योगिक क्रान्ति का सम्बन्ध

औद्योगिक विकास के बिना ब्रिटेन मे कृषि यन्त्रो का प्रयोग सम्भव न था। औद्योगिक क्रान्ति के साथ ग्रेट ब्रिटेन मे नये नगरो का विकास हुआ और उनमें जनसख्या बढो, इसलिए खाद-पदार्थो की बढती हुई माँग को पूरा करने के लिए कृषि का विकास आवश्यक था। कच्चे माल के उत्पादन की दृष्टि से भी यह आवश्यक था। औद्योगिक क्रान्ति के कारण घरेलू प्रणाली समाप्त हो गई, छोटे किसानो की आय के सहायक साधन समाप्त होने के कारण वे गाँव छोड़कर नगरो मे चले गये। यह कृषि-क्रान्ति और औद्योगिक विकास दोनो दृष्टियो मे अनुकूल रहा।

कृषि-क्रान्ति के कारण गाँवो मे लोगो की आयें बढ़ी और उनका जीवन-स्तर ऊँचा उठा जिससे उद्योग निर्मित वस्तुओ (manufactured goods) की भी माँग बढ़ी और उद्योगो के विकास मे अनुकूलता हुई। औद्योगिक क्रान्ति ने कृषि क्रान्ति के लिए अनुकूल वातावरण और साधन उत्पन्न किये थे और कृषि-क्रान्ति औद्योगिक क्रान्ति के लिए न केवल सहायक वरन् आवश्यक थी।

अन्न कानून (Corn Laws)

ब्रिटेन की कृषि के विकास तथा कृषि नीति के सम्बन्ध मे अन्न-कानून का उल्लेख प्रासंगिक है। अन्न व्यापार का नियमन (regu'ation) इंगलैण्ड

मे चौदहवी शताब्दी से ही होता आ रहा था। सन १६८६ मे अन्न के निर्यात बढ़ाने की दृष्टि से Corn Bounty Act (अन्न सहायता कानून) पास किया गया। जब जनसंख्या मे वृद्धि हुई तो इस नीति मे संशोधन करना पड़ा। यह समझा गया कि देश मे अपर्याप्त उत्पादन के काल में अन्न के आयात को प्रोत्साहन दिया जाय तथा निर्यात को हतोत्साहित किया जाय। यह विचार सन् १७७३ से उठा था तथा १७९३ तक अन्न के निर्यात पूर्णतया समाप्त हो गये।

नेपोलियन युद्धो के समय ब्रिटेन मे अन्न का आयात सम्भव न हो सका। विदेशो से अन्न न मिलने के कारण अपनी पूरी माँग ब्रिटेन को अपने ही उत्पादन से पूरी करनी पडी। फलस्वरूप अन्न की कीमतें बहुत ऊँची हो गईं और यह स्थायी लक्षण प्रतीत होने लगा था। सन १८१५ मे नेपोलियन-युद्ध समाप्त होने अर्थात् शान्ति लौटने पर विदेशी अनाज के आयात की सम्भावना के कारण ब्रिटेन मे अन्न की कीमतें गिरी। भूमिपतियो ने संरक्षण के लिए पार्लियामेण्ट मे अपील की। सन् १८१५ मे प्रसिद्ध "Corn Law" (अन्न कानून) पास हुआ। इस कानून के द्वारा यह व्यवस्था की गई कि देश मे अन्न का आयात तभी किया जाएगा जब इंगलैण्ड के बाजार मे गेहूँ का मूल्य ८० शिलिंग प्रति क्वार्टर हो जाए। इसी प्रकार राई, ज्वार, जई के मूल्य-सीमाएँ क्रमशः ५३ शिलिंग, ४० शिलिंग और २६ शिलिंग प्रति क्वार्टर निश्चित की गई। सन् १८१५ मे गेहूँ का भाव ६१ शिलिंग प्रति क्वार्टर था। स्पष्ट है कि सन १८१५ के 'अन्न कानून' का मुख्य दृष्टिकोण अन्न उत्पादकों को संरक्षण देने का था।

सन् १८१५ के अन्न कानून की कटु आलोचना हुई। इस ऐक्ट के मुख्यतया अधोलिखित दोष बताए गये :—

(१) यह कानून केवल एक वर्ग के हितो के लिए था। इसमे भूमिपतियो के अतिरिक्त अन्य लोगों तथा राष्ट्र के हितो का विचार नही रखा गया था। ऊँची कीमते और निम्न जीवन स्तर भूस्वामियो के सिवाय सभी लोगो पर यही प्रभाव पड़ा।

(२) आयात करने के प्रयत्न उस समय किये जाते थे जब अन्न की कीमतें बहुत ऊँची हो जाती और आयात होने के समय तक अभाव की दशाएँ समाप्त हो चुकती।

(३) इस एक्ट के द्वारा यह उद्देश्य प्राप्त करने मे भी सफलता प्राप्त

करना सम्भव नही था कि यूनाइटेड किंगडम अन्न मे स्वावलम्बी हो जाय क्योकि अन्न के मूल्यो में बहुत उच्चावचन हुए।

(४) ब्रिटेन के व्यापारिक सम्बन्धों को भी ठेस पहुँची क्योंकि कई देशो से भोजन सामग्री मँगाकर बदले मे उन्हे निर्मित वस्तुएँ (manufactured goods) बेचना सम्भव नही रहा।

इन दोषो के कारण तथा इन आधारो पर सन १८१५ के अन्न कानून को रद्द करने की माँग की गई। सन् १८२१ मे लॉर्ड्स तथा कॉमन्स (Lords and Commons) की जाँच कमेटी ने अपने प्रतिवेदन मे कहा कि अन्न कानून मे इसका विश्वास डिग गया था।"[1]

सन् १८२२ मे संशोधित अन्न कानून पास हुआ जिसके अनुसार, गेहूँ, राई, ज्वार, जई के न्यूनतम मूल्य क्रमशः ७० शिलिंग, ४६ शिलिंग, ३५ शिलिंग और २५ शिलिंग प्रति क्वार्टर निश्चित किये गये तथा घटती हुई दर (sliding scale) पर आयात कर लगाये गये। उदाहरणार्थ, इसके अन्तर्गत ब्रिटेन में गेहूँ का भाव ६४ शिलिंग प्रति क्वार्टर से कम होने पर आयात कर २५ शि० ८ पेंस; ६४ शिलिंग से ६६ शिलिंग तक भाव होने पर १६ शिलिंग ८ पेंस तथा ७३ शिलिंग प्रति क्वार्टर से ऊपर होने पर केवल एक शिलिंग प्रति क्वार्टर आयात कर लगाया गया। इन आयात करो का उद्देश्य अन्न के आयात को पूर्णतया रोकना नही था बल्कि आवश्यकतानुसार आयात होने देना था तथापि ब्रिटेन मे अन्न के मूल्यों में स्थिरता न आ सकी।

सन १८३८ मे लंकाशायर के उद्योगपतियो के एक दल ने अनाज अधिनियम विरोधी संघ (Anti Corn Law League) स्थापित किया जिसकी घोषणा जनवरी १८३९ मे की गई। एक पत्रिका 'Anti Corn Law Circular' भी निकाली गई तथा अन्न कानून विरोधी सभाओ, जुलुसो और भाषणों का देश भर मे आयोजन किया गया। इसी उद्देश्य की नब्बे लाख से अधिक पुस्तिकाएँ चार वर्ष की अवधि मे वितरित की गईं। रिचार्ड कॉब्डन, जॉन ब्राइट तथा चार्ल्स विलियर्स इस आन्दोलन के प्रमुख नेता थे। इनका विश्वास था कि अनाज के स्वतन्त्र आयात मे अनाज सस्ता होगा, मजदूरियाँ कम होंगी (क्योंकि सस्ते अनाज का अर्थ था कम जीवन-निर्वाह-व्यय), लागत कम होने से सस्ता निर्मित माल तैयार होने के कारण उद्योगपतियो को

---

1. Its faith in the Corn Laws was shaken.

प्रतिस्पर्द्धा-शक्ति बढ़ेगी और संसार के सब भागो मे ब्रिटिश निर्मित माल की बिक्री की जा सकेगी।

सन् १८४१ मे रिचार्ड कॉबडन पार्लियामेण्ट का सदस्य चुना गया तथापि बहुमत संरक्षणवादियो का था। अत. सन् १८४५ तक यो ही चलता रहा। सन् १८४४ और सन् १८४५ मे अकालो के कारण खाद्य समस्या और भी जटिल हो गई। रॉबर्ट पील, तत्कालीन प्रधान मन्त्री, हठधर्मी नही था। उसने कहा कि अन्न कानून देश के लिए उसी समय तक हित मे था जब तक अनाज का देशीय उत्पादन ब्रिटेन की जनसंख्या के लिए पर्याप्त था। उसने अन्न-कानून रद्द (repeal) करने का सुझाव रखा। पार्लियामेण्ट ने इसे मान लिया। सन् १८४६ मे आयात कर की दर बहुत कम कर दी गई। १ फरवरी १८४९ से अन्न के आयात पर कर केवल एक शिलिंग प्रति क्वार्टर अर्थात् नाममात्र का रह गया और सन् १८६९ मे वह भी हटाकर अनाज का आयात कर-मुक्त कर दिया गया।

९ सन् १८५० के पश्चात् ब्रिटिश कृषि की दशा

सन् १८५० तक के सौ वर्षों मे कृषिगत परिवर्तनो को कृषि-क्रान्ति के अन्तर्गत बताया जा चुका है। सन् १८४९ मे ब्रिटेन मे अन्न के आयात पर नाममात्र का कर रह गया था। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ब्रिटेन मे अन्न के आयात मे वृद्धि होने अथवा उसकी सम्भावना से अन्न की कीमतें गिरेंगी परन्तु अन्न कानून रद्द हो जाने पर भी न तो आयात मे वृद्धि हुई और न खाद्यान्न सस्ते हुए। इसके कई कारण थे : (क) उस समय तक संसार के किसी भी देश में गेहूँ इत्यादि खाद्यान्नो की बिक्री-योग्य इतनी अधिकता नही थी जिससे ब्रिटेन की मडियो मे अनाज की कीमतो पर महत्व-पूर्ण प्रभाव पड सकता, (ख) अमेरिका मे देशीय यातायात तथा अमेरिका से ब्रिटेन तक के समुद्री परिवहन का पर्याप्त विकास नही हुआ था कि वहाँ की उपज को ब्रिटेन मे शीघ्र पहुँचाया जा सकता, (ग) इसके अतिरिक्त समीप-वर्ती यूरोपीय अनाज उत्पादक देशो मे भी अन्न ढोने का खर्च सामान्यतया संरक्षण कर के बराबर सा था, तथा (घ) ब्रिटेन मे कृषि के धन्धे मे लगी हुई जनसंख्या मे कमी हो रही थी परन्तु नये और विकसित औद्योगिक नगरो मे जनसख्या बढ रही थी जिसके कारण अन्न की माँग बढ़ रही थी। जनता की क्रय शक्ति भी बढ़ी थी।

उन्नीसवी शताब्दी के मध्य से (सन् १८५० से) सन् १८७५ तक का समय ब्रिटिश कृषि के इतिहास में स्वर्ण युग कहलाता है क्योंकि इस काल मे कृषि का चहुँमुखी विकास हुआ। आस्ट्रेलिया और केलीफोर्निया मे स्वर्ण की खोज, इत्यादि परिस्थितियो का कृषि उत्पादन पर अच्छा प्रभाव पड़ा। अनाज की माँग मे निरन्तर वृद्धि हुई परन्तु ब्रिटिश कृषि उस समय इस बढी हुई माँग को पूरा करने के लिए समर्थ बनी रही।

सन् १८५० से १८७५ तक की अवधि मे ब्रिटिश कृषि की उन्नति के मुख्य कारण ये थे :—

(१) देश में रसायनिक खादो का उत्पादन बहुत बढा। इनके उपयोग से कृषि की उपज मे वृद्धि हुई। कृषि रसायन शास्त्र मे विकास हुआ था और उसके परिणामो का ब्रिटिश कृषि ने लाभ उठाया ;

(२) समावरण आन्दोलन के फलस्वरूप खेत बड़े बड़े हो गये थे जिसका छोटे किसानो पर तो बुरा प्रभाव पड़ा परन्तु वैज्ञानिक कृषि का मार्ग खुल गया था ;

(३) कृषि के लिए पूँजी की कमी नही थी और नये नये कृषि यन्त्रो के अनुसन्धान होने से कृषि मे श्रम की लागत कम करने के प्रयोग हुए ;

(४) कृषि-उपज की कीमतो में स्थिरता रही ;

(५) कृषि मे अच्छा लाभ होने के कारण कृषि श्रमिकों के वेतन भी बढे, वस्तुतः सभी उद्योगो मे मजदूरियाँ बढ रही थी ;

(६) कृषि के विकास का एक महत्वपूर्ण कारण रेलों का विकास था जिससे उपज को दूर की मडियो मे पहुँचाना, खाद मँगाना, बीज खरीदना इत्यादि सम्भव हो गया ;

(७) पशुओ की नस्ल सुधार से कृषि मे दुग्ध उत्पादन, भेड-पालन, मुर्गी पालन इत्यादि कृषि शाखाओं मे भी उन्नति हुई,

(८) शाही कृषि समिति (Royal Agriculture Society) तथा प्रान्तीय कृषि समितियो ने अनुसन्धान, कृषि पद्धतियों के विकास, सूचना प्रसार इत्यादि के द्वारा कृषि को अनेक लाभ पहुँचाए ; तथा

(९) कृषि प्रदर्शिनियो और उपज प्रतियोगिताओ के आयोजनो का भी कृषि पर स्वस्थ प्रभाव पडा।

इस काल मे यद्यपि छोटे किसानो को गाँव छोडकर नगरो मे विस्थापितो की भाँति रोजगार की तलाश मे फिरना पड़ा परन्तु सामान्यतया रोजगार के

साधनो मे वृद्धि हुई। उद्योगो और सहायक उद्योगो के अतिरिक्त रेलवे और इमारतो के निर्माण तथा सम्बन्धित धन्धो मे श्रमिको की माँग बढी। यह सत्य है कि उद्योगपतियो और भू स्वामियो को जितने अधिक लाभ हुए, कृषि श्रमिको को उसका एक अत्यल्प अंश ही मिला और मजदूरियो मे वृद्धि बहुत धीमी गति से हुई, परन्तु देश की समृद्धि का लाभ सामान्यतया सभी को प्राप्त हुआ। इस काल मे ब्रिटेन कृषि-उत्पादन मे मुख्यतया स्वावलम्बी था।

मदी का काल (१८७५-१९१४)—उन्नीसवी शताब्दी का अन्तिम, चतुर्थांश ब्रिटिश कृषि मे घोर सकट का समय था। इस काल मे एक ओर तो कृषि उपज के मूल्यो मे भारी गिरावट हुई, दूसरी ओर अकाल और महामारियो के कारण कृषि का उत्पादन घटा। इसके अतिरिक्त कृषि भूमि के लगान गिरे और कई बार भूमि परती पडी रह जाती थी, कृषि श्रमिक अधिक मजदूरियो की माँग कर रहे थे जबकि भूस्वामियो को भारी हानि हो रही थी—भू-स्वामियो और कृषि-श्रमिको के झगडो का परिणाम प्रायः यह होता कि कृषि का काम पडा रहता।

कृषि उपज की कीमतो मे तेजी के साथ गिरावट इस काल की प्रमुख विशेषता थी। सन् १८७७ मे गेहूँ का भाव प्रति क्वार्टर ५० शिलिंग से अधिक था, सन् १८८५ मे ३२ शिलिंग और सन् १८९४ मे १७ शिलिंग ४ ४ पेंस तक पहुँच गया। मूल्यो मे गिरावट के मुख्य कारण निम्नलिखित थे :—

१. समुद्रपार की नई भूमियो (virgin lands) की सस्ती उपज ने ब्रिटिश बाजारो मे अन्न के भाव गिरा दिये। उदाहरण के लिए सयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा मे गेहूँ का उत्पादन बहुत बढा। इन देशों मे बसने वाली जनसख्या भीतरी क्षेत्रो मे फैलकर खाली पडी हुई भूमि पर कृषि करने लगी थी।

२. सभी देशो मे आन्तरिक यातायात का विकास हुआ था रेल मार्गों और महाद्वीपीय रेलो के विकास से अनाज का व्यापार बढा। सन् १८८५ मे कनाडियन पैसिफिक रेलवे बन जाने मे अमेरिका के उपजाऊ मैदानों का गेहूँ ब्रिटेन को भेजना सम्भव हो गया था। परिवहन की सुविधाएँ सस्ती थी और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए जहाज पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थे। रूस, भारत, आस्ट्रेलिया और अर्जेन्टाइना से आयात होने वाले खाद्यान्न भी ब्रिटेन मे बहुत सस्ते पडते थे।

३. इसी काल मे स्वर्ण की अपेक्षा चाँदी के मूल्य गिर जाने से चाँदी

के सिक्के वाले (रजतमान) देशो का माल ब्रिटेन मे बहुत सस्ता पडने लगा। उदाहरण के लिए भारतीय रुपए का स्टर्लिंग मूल्य (विनिमय दर) गिर जाने से भारत के निर्यातक व्यापारियों को लाभ हुआ क्योंकि भारतीय अनाज ब्रिटेन मे पहले की अपेक्षा सस्ता पडने के कारण अधिक खरीदा गया।

४. सन् १८६६ मे ब्रिटेन मे अनाज का आयात कर मुक्त किया जा चुका था जबकि अन्य देशा मे आयात कर लगे हुए थे, अत. सस्ते विदेशी गेहूँ की आग्ल बाजारो मे भरमार हो गई।

५ इस काल मे प्रशीतन विधि (refrigerating process) का विकास होने से दूरवर्ती देशों से जमाया हुआ गोश्त, डिब्बो मे बन्द किए हुए माँस, मछलियाँ, मक्खन, पनीर, फल इत्यादि ब्रिटेन मे आयात होने लगे। प्रमुख निर्यातक देश न्यूजीलैण्ड, अर्जेण्टाइना और संयुक्त राज्य अमेरिका थे।

इन कारणों से ब्रिटेन के कृषक एक तो यो ही घाटे मे रहे परन्तु इसके साथ ही प्राकृतिक प्रकोपो ने कठिनाइयाँ और बढा दी। सन् १८७५ से सन् १८८४ तक शीत और अति वर्षा के कारण फसलो को भारी हानि हुई और तदनन्तर अनावृष्टि (सूखा) के कारण फसलें अच्छी नही हुई। इसी अवधि मे पशुओ की बीमारियो और सक्रामक रोगो के कारण पशु-धन के नाश से पशुपालको को भारी हानि हुई। परिणाम यह हुआ कि किसान कृषि मे पूँजी हटाने लगे, वे गाँव छोडकर नगरो की ओर जाने लगे। बहुत से कृषि-श्रमिक आस्ट्रेलिया और कनाडा इत्यादि देशों मे जा बसे।

१६वी शताब्दी के अन्तिम चतुर्थाश की कठिनाइयो ने कृषि के स्वभाव पर गम्भीर प्रभाव डाला। ब्रिटेन की कृषि को बदलती हुई दशाओ के अनुकूल रूप अपनाना पडा। कृषि मे अनाज की फसलो के उत्पादन की प्रधानता के बजाय पशु-पालन और पशुओ से मिलने वाले पदार्थो के उत्पादन पर तथा फसलों मे शाक तरकारियो और फलो के उत्पादन पर अधिक ध्यान दिया गया। दूध और अंडो के उत्पादन तथा शूकर-पालन मे वृद्धि की गई।

प्रथम महायुद्ध काल के वर्षो को छोडकर जिनमे युद्धकालीन व्यवस्था के अन्तर्गत कृषि उत्पादन की ओर अधिक ध्यान दिया गया, सन् १८७२ से १६३६ तक ब्रिटेन का कृषि-क्षेत्रफल निरन्तर घटता गया।[1] इस समस्त काल में ब्रिटेन मे मुर्गीपालन तथा मांस और दुग्ध उत्पादन के धन्धों को आयात किए हुए खाद्य पदार्थों (feeding stuffs), चारे इत्यादि पर निर्भर रहना पडा।

1. Britain : An Official Handbook, 1959.

द्वितीय विश्वयुद्ध (१६३६) छिड़ जाने पर ब्रिटिश कृषि में परिवर्तन हुए। कारण यह था कि प्रथम युद्ध काल की भाँति युद्ध छिड़ जाने पर जहाजों की कमी के कारण आयात करना कठिन हो गया और जनसख्या के उपभोग के लिए देश में ही फसलों का उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता हुई। अतः ब्रिटेन में गेहूँ और आलू इत्यादि का उत्पादन बढ़ाया गया जिसके कारण दुग्ध के अतिरिक्त पशुओं से मिलने वाले अन्य पदार्थों (ऊन इत्यादि) के उत्पादन की तथा पशु पालन की उपेक्षा हुई। युद्धोत्तर काल में विश्वव्यापी खाद्याभाव की समस्या अनुभव हुई और ब्रिटेन के सम्मुख भुगतान सतुलन (balance of payments) की विकट समस्याएँ थीं। अतः ब्रिटेन के लिए यह आवश्यक हो गया कि देश में अनाज का उत्पादन बढ़ी हुई दर पर चालू रहे। सन् १६४७ के उपरान्त अनाज तथा अन्य फसलों के उच्च स्तरीय उत्पादन के साथ ही पशुओं (livestock) और उनसे मिलने वाले पदार्थों (livestock products), जैसे माँस, दूध, अंडो तथा पशुओं के लिए भोज्य पदार्थों (feeding stuffs) के उत्पादन को प्रोत्साहन मिला है।

उत्पादन

द्वितीय विश्व-युद्ध के पूर्व ब्रिटेन अपनी भोजन सम्बन्धी आवश्यकताओं का लगभग ३१ प्रतिशत ही उत्पादन करता था।[1] सन् १६५७ में यह बढ़कर ४० प्रतिशत के लगभग हो गया। मूल्य की दृष्टि से युद्ध के पूर्व उत्पादन कुल आवश्यकताओं का एक तिहाई से कुछ अधिक था जबकि सन् १६५७ में पचास प्रतिशत के लगभग हो गया। युद्ध के पूर्व भोजन और पशुओं के भोज्यपदार्थों के आयात (तिलों और तिलहनों को सम्मिलित करके) कुल आयातों के ४५ प्रतिशत थे, सन् १६५७ में ये ३८ प्रतिशत थे।

युद्ध (१६३६) के पश्चात् ब्रिटेन में मुख्य कृषि पदार्थों के उत्पादन का रुख (trend) अगले पृष्ठ की तालिका से समझा जा सकता है।

यद्यपि युद्धकाल (१६३६) से कृषि में काम करने वाले श्रमिकों की संख्या धीरे धीरे घटती गई, ब्रिटेन के कृषि उत्पादन में युद्ध-पूर्वकाल की अपेक्षा १६५६-५७ तक ६० प्रतिशत से भी अधिक की वृद्धि हुई। वस्तुतः उत्पादकता में बहुत वृद्धि हुई है। उत्पादकता की वृद्धि में सहायक मुख्य कारण ये रहे हैं:

1. In Terms of calories for human consumption.

तालिका—यूनाइटेड किंगडम में कृषि उत्पादन

(वर्ष १ जून से ३१ मई तक)

उपज	इकाई	युद्ध-पूर्व काल का औसत १९३६ ३८	१९४६ ४७	१९५६-५७
फसलों का उत्पादन				
गेहूँ	हजार टन	१,६५१	१,९६७	२,८४५
राई (Rye)	,,	१०	३९	२५
जौ	,,	७६५	१,९६३	२,८००
जई	,,	१,९४०	२,९०३	२,४८६
मिश्रित अनाज	,,	७६	३५०	४०७
आलू	,	४,८७३	१०,१६६	७,५३३
चुकन्दर	,,	२,७४१	४,५२२	५,१६९
पशुओं से मिलने वाले पदार्थः				
दूध	लाख गैलन	१५,६३०	१६,६५०	२३,५९०
अण्डे	हजार टन	३८५	३२२	६२८
ऊन	,,	३४	२७	३१
गोश्त	,,	१,२०८	८८६	१,६८७

(१) फसलों और पशुओं की किस्मों में सुधार, (२) उर्वरकों (fertilisers) का अधिकाधिक उपयोग, (३) फसलों के कीड़ों और बीमारियों के लिए नाशक पदार्थों का प्रयोग, (४) सुधरे हुए और अधिक यन्त्रों का कृषि में उपयोग, जिसके कारण थोड़ी कृषि जनसंख्या अधिक कृषि योग्य भूमि पर खेती कर सकी है। सन् १९२५ में यूनाइटेड किंगडम में ट्रैक्टरों की संख्या लगभग २१ हजार थी, सन् १९५७ में बढ़कर ४४४ हजार (२१ गुने से भी अधिक) हो गई। इस प्रकार यू० के० में ट्रैक्टर घनत्व एक ट्रैक्टर प्रति ३८ एकड़ कृषि योग्य भूमि था। (५) इसके अतिरिक्त ब्रिटिश कृषि की उत्पादकता में वृद्धि का महत्वपूर्ण कारण कृषि नीति की सफलता है जिसके अन्तर्गत आश्वासन, प्रोत्साहन, सलाहकारी सेवाएँ (advisory services), तथा नियंत्रण इत्यादि उपाय सम्मिलित हैं।

द्वितीय विश्व युद्ध के पूर्व काल की अपेक्षा ब्रिटेन में फलों और शाक-तरकारियों के उत्पादन में भी बहुत वृद्धि हुई है। सन् १९५७ में यू० के० में

शाक-तरकारियो (vegetables) का उत्पादन २३·३६ लाख टन और फलो का ७·२५ लाख टन था।

९. सरकारी कृषि नीति

ब्रिटिश कृषि के इतिहास पर सरकारी नीति का प्रभाव स्पष्ट है। यह इस अध्याय मे पहले बताया जा चुका है कि १८वी शताब्दी मे और १६वी शताब्दी के मध्य तक सरकारी कृषि नीति मुख्यतया सरक्षणवादी थी। सन् १८४६ में सरक्षण समाप्त कर दिये गये थे। सन् १८७५ तक ब्रिटिश कृषि सभी दृष्टियो मे उन्नति करती रही। सन् १८७५ से १६०० तक की अवधि मे ब्रिटिश कृषि को घोर सकट का सामना करना पडा। (कारणो का उल्लेख इसी अध्याय मे पहले किया जा चुका है।) इस काल की मन्दी के कारणो की जाँच के लिए सन् १८८२ में ड्यूक आॅव रिचमण्ड की अध्यक्षता मे एक शाही आयोग की नियुक्ति की गई। आयोग ने अपने प्रतिवेदन (रिपोर्ट) मे प्राकृतिक प्रकोपो और पशुओ की बीमारियो के अतिरिक्त बाह्य स्पर्द्धा ऊँचे कर, लगान और रेलवे करो का अधिक भार, कृषि शिक्षा का अभाव मुख्य कारण बताए। सन् १८६३ मे एक दूसरा शाही आयोग लॉर्ड एवरस्ले की अध्यक्षता में नियुक्त किया गया जिसने अन्य अनेक बातो के अतिरिक्त चाँदी के भाव मे गिरावट के प्रभाव की ओर ध्यान आकृष्ट किया। आयोग ने बताया कि कृषि मे फल और शाक तरकारियो के उत्पादन, मुर्गी-पालन, पशु-पालन तथा आलू इत्यादि जड-दार फसलो के उत्पादन का विकास किया जाना चाहिए। ये उपाय अपनाए गये और सुधार के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे। यद्यपि कृषि क्षेत्रफल घटा परन्तु पशुचर भूमि का क्षेत्रफल और फसलो के अतिरिक्त कृषि का अन्य शाखाओ मे उत्पादन बढा। इसी काल मे भूमिहीन श्रमिको को बसाने के लिए छोटे छोटे खेतो (small holdings) के सृजन मे सरकारी तौर पर रुचि ली गई जिसके लिए सन् १८८७ मे एक कानून पास करके स्थानीय अधिकारियो को बडे भू-स्वामियो से भूमि खरीद कर अथवा पट्टे पर लेकर छोटे कृषको को जोतने के लिए भूमि देने का अधिकार दिया गया। सन् १८८६ में कृषि मण्डल (Board of Agriculture) की स्थापना की गई। छोटी जोतो के सम्बन्ध में उठाये गये पिछले कदमो की अधिक प्रभावोत्पादकता न होने के कारण इस दिशा में सन् १६०८ मे एक और कानून (Small Holdings and Allotment Act) पारित किया गया जिसके अनुसार काउन्टी कौंसिलो के ऊपर कृषि मण्डल को अधिकार दिये जाने के कारण कानून प्रभावपूर्ण हो गया। पशु रोगो की रोक-

थाम, सहकारिता के विकास, कृषि-शिक्षा इत्यादि की दिशाओं में भी यह महत्वपूर्ण कदम उठाये गये। कृषकों को वित्त सम्बन्धी सहायता भी दी गई। कृषि-उपज को जंगली जानवरों से रक्षा करने के लिए भी अधिनियम बनाया गया।

प्रथम युद्धकाल (१९१४-१८) में सरकारी नीति—सन् १९१४ में युद्ध छिड़ने पर जहाजी यातायात की दुर्लभता के कारण विदेशों से अन्न का आयात कठिन हो गया और यह भी समझा गया कि युद्ध काल में भोजन के लिए दूसरे देशों पर आश्रित होना खतरे से खाली नहीं था। अत. भोजन में स्वावलम्बन की अवस्था प्राप्त करने के लिए कृषि के विकास के भरसक प्रयत्न किए गये। खाद्य पदार्थों के मूल्यों में वृद्धि के कारण कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए प्रोत्साहन मिला परन्तु खाद्य-सामग्री की बहुत कमी होने के कारण सरकार ने नियंत्रण जारी किये। सन् १९१६ में कानून बनाकर खाद्य विभाग की स्थापना की गई और उसका कार्य सँभालने के लिए खाद्य-नियन्त्रक (Food Controller) की नियुक्ति की गई जिसको खाद्य-सामग्री के उत्पादन, संग्रह इत्यादि की स्थिति का पता लगाना और नियन्त्रण में रखना तथा कृषकों से खाद्य पदार्थों की प्राप्ति इत्यादि कार्य सौंप गये। प्रत्येक काउन्टी और जिले में देखभाल के लिए खाद्य-समितियाँ स्थापित की गई। कृषि मण्डल को खाद्य-वितरण सम्बन्धी कार्य सौंपा गया। राशनिंग की व्यवस्था की गई और खाद्य पदार्थों के मूल्य निश्चित किए गए। सन् १९१७ में एक अन्न उत्पादन कानून (Corn Production Act) पारित हुआ जिसके अनुसार कुछ खाद्यान्नों के न्यूनतम मूल्य निश्चित कर दिये। श्रमिकों के वेतन और लगान भी निश्चित किये गये। परिणाम यह हुआ कि कृषि क्षेत्रफल में और खाद्य पदार्थों के उत्पादन में वृद्धि हुई।

सन् १९१९ में एक शाही आयोग की नियुक्ति की गई जिसका उद्देश्य तत्कालीन ब्रिटिश कृषि की उपज के मूल्य, उत्पादन लागत, मजदूरियाँ, काम करने का समय इत्यादि सम्बन्धी स्थिति की जाँच करना था। सन् १९२० में एक नया कानून पास करके युद्धकालीन व्यवस्थाओं में परिवर्तन करके कृषि के क्षेत्र में स्थायी सुधार करने का प्रयत्न किया गया।

सन् १९२० के पश्चात् कृषि में भीषण मन्दी आ गई और सामान्य कीमत-स्तर में गिरावट हुई। अत. कुछ रूपों में रक्षणवादी नीति (protection) अपनाई गई और कृषि के लिए वित्तीय सहायता की व्यवस्था की गई।

चुकन्दर, गेहूँ तथा पशुश्रो के लिए वस्तु आयोग (commodity commissions) स्थापित किये गये जिन्हे उन वस्तुश्रो के उत्पादन के लिए सरकारी सहायता (subsidies) अथवा अन्य प्रकार की प्रत्यक्ष वित्तीय सहायता के प्रशासन का काम सौंपा गया। साथ ही, दूध, आलू, सुअर के गोश्त इत्यादि की बिक्री के नियमन के लिए उत्पादकों द्वारा नियन्त्रित विपणन मण्डलो (Marketing Boards) की स्थापना की गई। सन् १६३७ मे सरकार ने जौ और जई (oats) की कृषि को सहायता (subsidies) देने के लिए अधिकार प्राप्त किये।

६- द्वितीय विश्व-युद्धकाल तथा प्रारम्भिक युद्धोतर वर्षों मे

कृषि उत्पादन और विपणन पर सरकार का पूर्ण नियंत्रण रहा। सरकार के स्थानीय प्रतिनिधियो की भाँति कार्य करने के लिए जिला युद्ध कृषि समितियाँ (County War Agricultural Executive committees) बनाई गई जिनमे कृषि हितो के स्थानीय प्रतिनिधि सम्मिलित थे। ये समितियाँ प्रथम महायुद्ध काल मे स्थापित समितियो के समान थी। सरकारी नियन्त्रण के परिणामस्वरूप वस्तु आयोगो तथा विपणन मण्डलो (marketing boards) के कार्य बहुत कुछ स्थगित कर दिये गये। कालान्तर मे इन सगठनो के अधिकार पूर्ववत् कर दिए गए अथवा उनके स्थान पर अन्य कुछ प्रबन्ध किये गये।

यूनाइटेड किंगडम की कृषि-नीति का मुख्य उद्देश्य जो सन १६४७ के कृषि कानून (The Agriculture Act, 1947) के प्रथम भाग मे दिया गया है यह है : 'यूनाइटेड किंगडम मे स्थायी (stable) तथा कुशल कृषि व्यवसाय राष्ट्र की भोजन सम्बन्धी तथा कृषि उपज का इतना भाग उत्पादन करने मे समर्थ हो सके जितना कि राष्ट्रीय हित मे वांछनीय है, और यह उत्पादन न्यूनतम कीमतो पर हो परन्तु साथ ही कृषको और कृषि-श्रमिकों को उचित पारिश्रमिक और जीवन की दशाएँ तथा कृषि मे लगी हुई पूँजी पर यथोचित प्रतिफल (return) मिल सकें।" इस उद्देश्य की प्राप्ति के हेतु लिये गये मुख्य सरकारी कदम निम्नलिखित हैं :—

(१) मुख्य कृषि पदार्थों की कीमतो की गारन्टी देना (guaranteed prices) अर्थात् कृषि उत्पादकों को अपने उत्पादन के लिए निश्चित कीमतों से *कम न मिलने का आश्वासन दिया जाता है,*

(२) लगान पर जोतने वाले कृषका (tenant farmers) को निश्चित अवधि तक भूमि-स्वत्व प्राप्त रहना (security of tenure);

(३) भूमि-स्वत्व रक्षा के बदले मे कृषकों से कृषि-कार्य मे कार्यक्षमता और उसकी समुचित व्यवस्था की आशा की जाती है। वस्तुतः कार्यक्षमता के स्तर बनाये रखने के लिए कृषि मन्त्रालय द्वारा देखभाल (supervision) और निर्देशन (direction) इत्यादि उपाय अपनाये जाते हैं और कृषकों द्वारा कृषि उचित ढङ्ग पर न होने की दशा मे उनके अधिकार समाप्त किये जा सकते हैं ;

(४) कार्यक्षमता को बढावा देने की दृष्टि से सरकार टैकनीकल सलाहकारी सेवाएं प्रदान करती है; तथा

५. उत्पादकता मे वृद्धि करने की दृष्टि से कृषको और भू-स्वामियो को विभिन्न प्रकार की ग्रान्ट (grants) दी जाती है।

सन् १९४७ का कृषि अधिनियम (act) जिस समय पास हुआ था उस समय मे ब्रिटेन मे खाद्य की बहुत कमी थी, अतः उस समय सरकार द्वारा खाद्य पदार्थ खरीदने, कृषि के उत्पादन और विपणन (marketing) पर व्यापक नियन्त्रण, और खाद्य पदार्थों के राशनिंग की प्रणाली अपनाई गई थी। सरकारी कृषि नीति का प्राथमिक उद्देश्य उपज मे वृद्धि करना था जिसमे युद्ध-पूर्व के स्तर को तुलना मे सन् १९५२ तक लगभग ५० प्रतिशत की वृद्धि हुई। संसार की कुल खाद्य-पूर्ति मे सुधार होने पर और ब्रिटेन के अपने कृषि उत्पादन और व्यापार सम्बन्धी दशा सुधरने पर ब्रिटिश सरकार ने शनैः शनैः खाद्य पदार्थों का व्यापार और उनका आयात निजी व्यापारियो (private businessmen) को वापस दे दिया। खाद्य पदार्थों के उपयोग पर से सब प्रकार का राशनिंग ३ जुलाई १९५४ को समाप्त कर दिया गया था।

अभाव का समय समाप्त हो चुकने पर ब्रिटिश कृषि नीति के उद्देश्यों के अन्तर्गत भिन्न प्रकार की बातो पर जोर दिया गया है। हाल के वर्षों मे उत्पादन के विवेचनहीन विस्तार (indiscriminate expansion) की अपेक्षा जिन बातो पर जोर दिया है वे ये हैं—बाजार की दशाओं के अनुसार उचित कीमतों पर उत्पादन, टैकनीकल कुशलता मे वृद्धि, आयात होने वाले पशुओं के भोज्य पदार्थों के उपयोग मे मितव्ययिता, इत्यादि।

सन् १९५८ मे कृषि के वार्षिक पर्यवेक्षण (review) के पश्चात् सरकारी दृष्टिकोण यह था कि कृषि का विकास निम्न दिशाओं मे हो :—

(१) कृषियोग्य क्षेत्रफल वर्तमान आकार के लगभग समान बना रहे, परन्तु गेहूँ की अपेक्षा चारे की फसलों पर अधिक जोर दिया जाय;

(२) पशुओ के लिए देश मे ही उत्पन्न चारे (feed) पर अधिक निर्भरता रहे ;

(३) बछड़ो और भेड़ो के बच्चो के गोश्त (beef and lamb) की उस किस्म का अधिक उत्पादन जिसकी बाजार मे अधिक माँग है ; और

(४) कम दूध, अंडो और सुअर के गोश्त (pigmeat) का उत्पादन।

ब्रिटिश सरकार का दीर्घकालीन लक्ष्य कृषि की स्पर्द्धा शक्ति मे स्थायी सुधार करना है।

प्रश्न

1. Point out the main features of the English Agrarian Revolution, and show how it affected the peasantry.

2. "The economic consequences of the agricultural revolution were brilliant while the social consequences were disastrous." Discuss

3. How did the Corn Laws in England affect the economic life of the country ? What were the reasons for their repeal ?

4. Describe clearly the factors which brought about the revolution in agriculture in England towards the close of the eighteenth century.

5. Contrast the agricultural situation in England in 1750 with that in 1850, and account for the change that came.

6. Briefly describe the British agricultural policy during and after the first world war.

7. Write notes on

   (a) Corn Laws

   (b) Enclosure Movement.

8. Give a short analysis of the leading features of British agricultural policy in post-war years.

अध्याय ६

यातायात का विकास तथा वाणिज्य क्रान्ति

(Developments in Transport And Commercial Revolution)

[वाणिज्य क्रान्ति, वाणिज्य क्रान्ति के सामाजिक प्रभाव, यातायात के विकास का इतिहास—सड़कों का विकास, नाव्य नहरें, नहरों की अवनति, रेल मार्गों का विकास, समुद्री यातायात, नौ-वहन सम्बन्धी कानून तथा नीति, वायु-यातायात, प्रश्न ।]

यातायात का विकास ग्रेट ब्रिटेन की औद्योगिक क्रान्ति का कारण भी समझा जाता है और उसका एक अंग भी । १८वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सड़को और नाव्य नहरो का विकास हुआ और तदनन्तर रेल-मार्गों और समुद्री यातायात के क्षेत्र मे उन्नति हुई । सन् १८७० के उपरान्त यांत्रिक यातायत के विकास के "सामान्य परिणाम क्रान्तिकारी थे ।"[1] वाष्प से चलने वाले जहाजो और रेलों का विकास सन् १८७० के उपरान्त ही अधिक हुआ । इस काल मे यातायात मे होने वाले विकास का ब्रिटेन के आर्थिक जीवन पर ही नही, समस्त संसार पर प्रभाव पड़ा ।

यातायात के विकास की मुख्य विशेषताएँ ये थी—

(१) गति (speed) मे वृद्धि,

(२) सुरक्षा (safety),

(३) नियमितता (regularity),

(४) सस्तापन (cheap transport) और

(५) अधिक भारी वस्तुएँ, अधिक मात्रा मे, बहुत दूर स्थानों को भेजना सम्भव होना ।

इतना ही नही, यांत्रिक साधनो के द्वारा आवागमन के मार्ग में भौगोलिक बाधाओ, जैसे पर्वतो, जलवायु इत्यादि पर विजय पाने के प्रयत्नो मे भी सफलता मिली है । इन सब विकासो का परिणाम यह हुआ कि व्यक्तियो

---

1. Knowles, L.C.A., op. cit , p. 183.

और वस्तुओ की गतिशीलता (mobility) मे बहुत वृद्धि हुई जिसके कारण उद्योग और वाणिज्य मे मूलभूत परिवर्तन और विकास सम्भव हो सके। नोल्स ने लिखा है कि १६वी शताब्दी का ब्रिटिश साम्राज्य रेलो और स्टीमरो की सम्मिलित उपज थी।[1] वास्तव मे साम्राज्य का स्थापन, संचालन और शासन इत्यादि यातायात के बिना सम्भव ही नही हो सकता था। यातायात के विकास के साथ साथ ही ब्रिटेन के विदेशी व्यापार मे वृद्धि होती गई।

रेलो का विकास लोहा-इस्पात व्यवसाय के विकास के बिना सम्भव नही था। ग्रेट ब्रिटेन प्रथम देश था जिसमे रेलो का विकास हुआ, अतः उसके साथ साथ लोहा-इस्पात उद्योग का भी विकास हुआ। ब्रिटेन मे बने हुए लोहे और इस्पात के माल की, विशेषकर लोकोमोटिव (रेलवे एंजिन), रेलवे का सामान, इंजीनियरिंग का सामान इत्यादि की मांग ससार के अनेक देशों ने की। इंगलैण्ड ससार की भट्टी बन गया।[2] वह संसार के अनेको देशो को लोहे और इस्पात की वस्तुएँ निर्यात करने लगा।

यान्त्रिक यातायात के विकास से केवल ग्रेट ब्रिटेन को ही लाभ नही हुआ अपितु अन्य देशो ने भी लाभ उठाया। यूरोप, अमेरिका, एशिया और अफ्रीका *रेल यातायात के विकास के कारण विश्व की अर्थव्यवस्था* (world economy) मे आ गये। उदाहरण के लिए, यूरोप मे जर्मनी और रूस ने रेल *यातायात के विकास के पश्चात् बहुत प्रगति की। जर्मनी मे लोहा व्यवसाय* और वस्त्र उद्योग पहले ही उन्नति पर थे, अतः वह शीघ्र ही कई वस्तुओ के *निर्माण मे इंगलैण्ड का प्रतिद्वन्द्वी (rival) बन गया। सयुक्त राज्य अमेरिका* मे भी बिलकुल यही हुआ। इन देशों से स्पर्द्धा बढने पर ग्रेट ब्रिटेन को अपना आर्थिक आधार बदलने के लिए विवश हो जाना पडा। ब्रिटेन इन देशों से खाद्य सामग्री इत्यादि मँगाने लगा और मूल्य चुकाने के लिए उच्चकोटि की बनी हुई वस्तुएँ तथा कोयला इत्यादि निर्यात करने लगा। जहाजी (shipping) तथा वित्तीय (financial) सेवाएँ विकसित की और सस्ती वस्तुओ का निर्माण अन्य देशों के लिए छोड दिया।

सन् १८६० मे सयुक्त राज्य अमेरिका का जहाजी टन भार (shipping tonnage) ५२,६६,७५१ था जबकि यूनाइटेड किंगडम (U. K) का

1. Ibid, p 183 "... the new British Empire of the nineteenth century was equally a product of railway and steamer combined"

2 England became "the forge of the world."

४६,५८ ६८७ था। परन्तु लकड़ी के स्टीमरों के बजाय लोहे-इस्पात के स्टीमर प्रयोग में आये तो स्थिति एकदम भिन्न हो गई क्योकि संयुक्त राज्य अमेरिका में लोहा-इस्पात व्यवसाय का विकास अभी तक बाकी था। अत: ब्रिटेन को इस दिशा मे बहुत लाभ रहा। जहाजी यातायात मे उसका एकाधिकार था। ब्रिटेन के विदेशी व्यापार की यह भी एक विशेषता हो गई। ब्रिटिश साम्राज्य-गत सभी देशो का व्यापार प्रायः ब्रिटेन के जहाजो द्वारा होना था, जैसे कनाडा का गेहूँ और गिलट (nickel), आस्ट्रेलिया का ऊन, भारत का जूट, अफ्रीका और मलाया का रबड, अफ्रीका का सोना इत्यादि ब्रिटिश जहाजो द्वारा ही भेजा जाता था। यदि यान्त्रिक यातायात का विकास न होता तो ब्रिटेन के जहाजी विकास का यह रूप होना असम्भव था।

यातायात के साधनो मे विकास होने से ससार के देश सम्पर्क मे आये और व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हुए। श्रम-विभाजन की प्रवृत्ति आ गई। व्यापार बढने पर जो स्पर्द्धा प्रारम्भ मे देखी गई थी उतनी नही रही। प्राय: देशो ने अपनी परिस्थितियो के अनुकूल अलग-अलग उत्पादन क्रियाएँ अपना ली। संवादवाहन के साधनों (तार, टेलीफोन इत्यादि) मे विकास होने पर यह प्रवृत्ति और भी बढ गई।

यान्त्रिक यातायात के साधनो के विकास का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव व्यापारिक संगठन मे क्रान्ति के रूप मे पडा। अब क्योकि माल शीघ्र मँगा सकना सम्भव हो गया था, व्यापारियों को बहुत अधिक स्टॉक (stocks) रखने की आवश्यकता नहीं रही। वितरण के साधन-यातायात मे विकास होने के कारण और व्यापार क्षेत्र मे विस्तार होने से व्यापार का पैमाना भी बढ़ गया। व्यापार गृहों (business houses) के पास पूँजी मे वृद्धि होने के कारण व्यापार मे श्रम बचाने के साधनों (labour saving devices) यन्त्रो का व्यापार गृहों मे प्रयोग होने लगा। टकनीकल रिसर्च के क्षेत्र में वृद्धि हुई। व्यापारियो मे स्पर्द्धा बहुत बढ़ गई। अनिश्चय-स्पर्द्धा (cut throat competition) के कुछ हद तक प्रतिकार के लिए समामेलन (amalgamation) और सयुक्तीकरण अथवा संयोग (combination) के उपाय अपनाये गये। रेलवे कम्पनियो और जहाजी कम्पनियों मे भी स्पर्द्धा बढ चली थी, अतः समामेलन इत्यादि के उपायो का अवलम्बन इन दिशाओं मे भी लिया गया।

यातायात के कारण मुख्यतः व्यक्तियो की गतिशीलता मे वृद्धि होने तथा

अन्य प्रकार से भी सामाजिक जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। कस्बों और नगरों का विकास हुआ, नये धन्धों तथा श्रमिकों के नए वर्गों का उदय हुआ, स्त्रियों की अवस्था बदली तथा आवास-प्रवास में वृद्धि हुई।

अनुभव से यह मालूम हो जाने पर कि विदेशी सस्ते माल से देश के उद्योग को ठेस पहुँचती है और सरक्षण के द्वारा किसी व्यवसाय का विकास किया जा सकता है तो सरकारी प्रशुल्क नीति मे महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, समझौतों की नीति अपनाई गई और अधिकाधिक क्षेत्रों में राजकीय नियन्त्रण के सम्बन्ध मे विचार किया जाने लगा। ब्रिटेन मे ही नही, सामान्यतया सभी देशों मे राष्ट्रवादी भावनाएँ बढ़ी और सत्ता बढ़ाने के प्रयत्न किये गये।

वाणिज्य क्रान्ति (Commercial Revolution)

औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप ब्रिटेन मे वाणिज्य-क्रान्ति भी हुई। उत्पादन प्रणाली मे परिवर्तन हो जाने के कारण व्यापार का ढाँचा ही बदल गया। स्थानीय माँग की अपेक्षा बड़े पैमाने पर दूरवर्ती देशों में स्थित बाजारों के लिए उत्पादन होने लगा था। कच्चा माल खरीदने और पक्का माल बेचने के लिए नये बाजारों की तलाश होने लगी थी। औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व बाजार सकुचित थे तथा क्रय-विक्रय का कार्य प्राय: उपभोक्ता और उत्पादकों के बीच सीधा था। कुछ स्थानों पर कभी कभी मेले लगते थे जिनमें वस्तुएँ खरीदना बेचना सम्भव होता था। औद्योगिक क्रान्ति के उपरान्त व्यापार की प्रणाली बदली तथा मध्यवर्तियों (middlemen) की सख्या बढ़ी।

वस्तुतः वाणिज्य क्रान्ति यातायात के क्षेत्र मे होने वाली क्रान्ति का परिणाम थी। रेल यातायात का विकास सर्वप्रथम ग्रेट ब्रिटेन में हुआ। जर्मनी और संयुक्त राज्य अमेरिका इत्यादि देशों ने ब्रिटेन से लोकोमोटिव तथा रेल का अन्य सामान मँगाकर अपने देशों में रेल मार्गों का विकास किया और विदेशी व्यापार में ये देश ब्रिटेन के प्रतिद्वन्द्वी बन गये। इस अवस्था में ब्रिटेन में जहाजों (steamships) का निर्माण आरम्भ हुआ तथा वह इसमें आगे बढ़ा।

रेलों और जहाजों के कारण दुनिया के देश परस्पर निकट सम्पर्क मे आने लगे और सभी देशों के आर्थिक जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। गति (speed), सुरक्षा (safety) नियमितता इत्यादि सभी दृष्टियों से यातायात मे प्रगति हुई। देशों के भीतरी भागों में रेल मार्गों का प्रवेश होने के साथ साथ व्यापार मे वृद्धि होती चली गई। नये व्यापारिक मार्ग खुले। अफ्रीका और एशियाई तथा अन्य अविकसित राष्ट्रों से कच्चा माल बटोरने तथा

उनमे निर्मित माल बेचने के लिए यांत्रिक यातायात का विकास किया जा रहा था। १९वी शताब्दी के अन्तिम प्रहर में (सन् १८७० के लगभग) जब ब्रिटेन मे यातायात का विकास चरम सीमा की ओर बढ रहा था (यो विकास बीसवी शताब्दी मे भी चलता रहा), वाणिज्य के क्षेत्र मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे।

ब्रिटेन की वाणिज्यिक क्रान्ति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित थी :—

(१) यो तो यातायात वाणिज्य का ही अङ्ग है इसलिए यातायात की प्रगति वाणिज्यिक क्रांति का महत्वपूर्ण पहलू समझा जा सकता है परन्तु इसकी एक विशेषता यह थी कि ब्रिटेन के **जहाज अन्य देशों का माल ढोने लगे जिससे ब्रिटेन को विदेशी मुद्रा का लाभ हुआ** । भुगतान संतुलन मे यह मुख्य मद (item) हो गया।

(२) यातायात की प्रगति के कारण ब्रिटेन ने अपना साम्राज्य बहुत बढा लिया था। साम्राज्यगत देशो तथा उपनिवेशो मे ब्रिटेन को अपना माल बेचने के लिए मण्डियाँ मिल गई जिसके कारण **व्यापार की मात्रा में अप्रत्याशित वृद्धि हुई।**

(३) व्यापारगत वस्तुओं की सख्या मे वृद्धि हुई । ब्रिटेन का विदेशी व्यापार पहले समीपवर्ती देशो से थोडी वस्तुओ मे होता था परन्तु १९वी शताब्दी मे व्यापारगत वस्तुओ की संख्या बहुत बढ़ गई। दूरवर्ती देशो से भारी वस्तुओ में भी व्यापार होने लगा। ब्रिटेन अपनी भोजन की पूर्ति कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, अर्जेन्टाइना इत्यादि दूरवर्ती देशो से मँगाकर करने लगा। गेहूँ, जौ, मक्का, कपास, बिनौला, पेट्रोलियम, कागज की लुगदी, कच्चा लोहा, कोयला, गन्धक, चूना, मशीनरी, मास, दुग्ध पदार्थ, मछली, अण्डे, फल, चाय, तम्बाकू, चीनी इत्यादि के व्यापार का विकास हुआ तथा उसमे वृद्धि हुई।

(४) व्यापारिक सङ्गठन मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए । अब व्यापारियो को माल का स्टॉक (stock) कम रखना पडता था क्योकि माल जल्दी जल्दी मँगाना सम्भव हो गया था। अतः बडे गोदामो की तथा बहुत अधिक पूँजी लगाने की आवश्यकता एक व्यक्तिगत विक्रेता को नहीं रही। माल-खरीदने के लिए अब उन्हें बैंकों से अधिक साख (credit) की जरूरत नहीं रही। तार, टेलीफोन, केबिलग्राम द्वारा आर्डर दिये जाने लगे। मूल्य परिवर्तनो से अधिक हानि की आशंका भी अपेक्षाकृत कम हो गई । **नमूने और ग्रेड** द्वारा क्रय-

विक्रय आरम्भ हो गया। मेलों का महत्व अब कम हो गया था। अन्तर्राष्ट्रीय मेले औद्योगिक प्रदर्शिनियो के रूप मे आरम्भ हुए। विज्ञापनो का महत्व बढ़ चला था।

(५) सट्टे द्वारा वस्तुओ के विनिमय केन्द्र (produce exchanges) प्रारम्भ हुए जिनके द्वारा हुए व्यापार की अनेक विशेषताएँ थी। उदाहरणार्थ, नमूनो (samples), ग्रेड (grades) अथवा प्रमाणीकरण (standardisation) के आधार पर व्यापार होने लगा, वायदे के सौदों का विकास हुआ, सट्टे की क्रिया मे एक ओर जोखिम लेने वाले कूद पडे, दूसरी ओर निर्मायकों (manufacturers) ने सुरक्षा के सौदो (hedging contracts) द्वारा अपने आपको जोखिम से मुक्त कर लिया। जिस सीमा तक सट्टे का प्रभाव कीमतो के स्थिरीकरण के रूप मे पड़ा सामान्य रूप मे व्यापारियो को लाभ हुआ क्योंकि कीमतो के अधिक उच्चावचनो (fluctuations) से होने वाली हानियाँ कम हो गई।

(६) खुदरा व्यापार के नये तरीके अपनाये गये। आरम्भ में दुकानें जनरल स्टोर्स (general stores) के रूप में अधिक देखी जाती थी। जहाँ अनेक प्रकार की वस्तुएँ बेची जाती थी परन्तु १९वी शताब्दी मे छोटी छोटी विशिष्ट दुकानें (specialised shops) खुली जिनमे एक ही प्रकार की वस्तु मिलती। सजावट (window dressing) की पद्धतियाँ अपनाई जाने लगी। बडी दुकानो ने विभागीय भण्डारो (departmental stores) का रूप ग्रहण कर लिया। एक ही वस्तु या सख्या मे सीमित वस्तुओ की बिक्री का अधिक कस्बो मे या अनेक क्षेत्रो मे विकास करने के लिए शृङ्खला भण्डारो (chain stores or multiple shops) की पद्धति अपनाई गई। इस प्रणाली में दुकान का आकार तो वही रहा परन्तु विक्रेता फर्म या कम्पनी ने अधिक पूँजी लगाकर बिक्री के नए क्षेत्र ढूँढ निकाले। एजेन्सियो (commission agency system) तथा डाक द्वारा व्यापार (mail order business) का भी विकास हुआ।

(७) वाणिज्यिक क्रान्ति के पूर्व कारीगर अपनी उत्पादित या बनाई हुई वस्तुओ को बिक्री स्वयं करता था परन्तु अब बाजार का विस्तार होने के कारण यह न तो सरल ही रहा और न लाभदायक ही। थोक व्यापारी और खुदरा व्यापारी पृथक्-पृथक् होने लगे। हरेक व्यापारी प्रायः भिन्न प्रकार का केवल एक ही काम काम करने की ओर प्रवृत्त हुआ। मध्यवर्तियों (Middle-

men) की संख्या बहुत बढ़ गई। सेल्समैन (salesmen) तथा व्यापारी यात्री (commercial travellers) की संख्या में वृद्धि हुई।

(८) जब उल्लिखित विशिष्टीकरण की प्रवृत्ति बढी तो वाणिज्य-गठन (commercial integration) की प्रवृत्ति का विकास भी साथ साथ देखा जाने लगा। इसके तीन रूप मुख्य थे—पहला लोगों की विभिन्न और विविध आवश्यकताओं के लिए बड़ी-बड़ी दुकानें स्थापित हुईं; दूसरा अनेक व्यापार गृहो (mercantile houses) ने उन वस्तुओ को, जिन्हे वे बेचते थे, निर्माण (manufacture) करना आरम्भ कर दिया ; तथा तीसरे, अनेक व्यावसायिक फर्मों (industrial firms) ने अपनी खुदरा बिक्री की दुकानें (retail shops) स्थापित की अथवा उन वस्तुओ की बिक्री करने वाली दुकानो का स्वामित्व प्राप्त कर लिया।

(९) प्रारम्भ मे व्यवसायियो मे तथा विक्रेताओ मे अतिशय स्पर्द्धा हुई थी परन्तु कालान्तर में स्पर्द्धा से होने वाली हानियो और बर्बादी से बचने के लिए उत्पादकों ने मिलन अथवा सयोगों (combinations) के अनेक प्रकार अपनाये। संयोगों के द्वारा उत्पादक आपसी समझौतो से मूल्य तथा कुछ प्रकार के समझौतो मे उत्पादन की मात्रा तथा बिक्री-क्षेत्र इत्यादि निश्चित करके एकाधिकार पाने के प्रयत्न किये।[1] यो तो संयोगों के विविध रूपो का विकास हुआ ; परन्तु उन्हे दो भागो मे बाटा जा सकता है : पहले प्रकार के संयोग[2] ऐसे हुए जिनके अन्तर्गत किसी एक प्रकार के उत्पादन की सभी अवस्थाओ अर्थात् कच्चे माल के उत्पादन से लेकर वस्तु के उत्पादन (finished product) तक का नियन्त्रण एक ही व्यवस्था द्वारा हो। ऐसे संयोग धातु सम्बन्धी उद्योगों मे अधिक हुए, जैसे इस्पात सम्बन्धी कच्चे लोहे, कोयला, ढला लोहा, इस्पात इत्यादि उत्पादकों मे। दूसरे प्रकार के सयोग क्षैतिज प्रकार के (horizontal combinations) हुए जिनके अन्तर्गत एक उद्योग के अनेकों कारखाने एक ही प्रबन्ध अथवा नियन्त्रण मे आये—उदाहरणार्थ, खनिज तेल उत्पादकों ने आपसी समझौतो द्वारा विक्रय मूल्य निश्चित किये, कार्टेल और ट्रस्ट स्थापित हुए। अन्तर्राष्ट्रीय सयोगों का भी विकास हुआ।

(१०) वित्तीय क्षेत्र में भी क्रान्ति (financial revolution) हुई।

---

1. Main types of combinations are pools, cartels or syndicates, trusts, holding companies, mergers, etc.
2. Vertical combinations.

पूँजी बाजार और शेयर बाजारो (Stock Exchanges) का विकास हुआ। प्रारम्भ मे रेलवे कम्पनियो में विनियोग का क्षेत्र खुला और अशो (shares) की बिक्री की गई। इन अंशो पर तथा ऋणो पर ब्याज की गारंटी सरकार ने दी। धीरे धीरे अन्य क्षेत्रो मे विकास हुआ। अधिकोषण, बीमा ऋण देने वाली और साखपत्र भुनाने वाली संस्थाओ का विकास हुआ। संयुक्त पूँजी वाले बैंक खुले और संयुक्त पूँजी वाली औद्योगिक तथा व्यापारिक कम्पनियाँ बढती गई। ब्रिटेन से पूँजी तथा वित्तीय सेवाओ का निर्यात भी प्रारंभ हुआ।

वाणिज्य क्रान्ति के सामाजिक प्रभाव

(Social Effects of the Commercial Revolution)

वाणिज्य क्रान्ति के मूल मे औद्योगिक क्रान्ति के कारण जो सामाजिक क्रान्ति हुई थी, वाणिज्य के क्षेत्र मे हुए विकासो ने उसे आगे बढाया। वाणिज्य क्रान्ति के मुख्य सामाजिक प्रभाव निम्नलिखित पडे:—

(क) रेल यातायात और जहाजी यातायात के विकास के कारण व्यक्तियो की गतिशीलता और व्यापार के विकास के परिणामस्वरूप नये **नगरो और कस्बों (व्यापारिक केन्द्रों) का विकास हुआ।** नोल्स के अनुसार यह उन्नीसवी शताब्दी के विकास की प्रमुख विशेषताओं मे से एक थी। प्रारम्भ में नगरो का विकास औद्योगिक क्रान्ति के कारण हुआ था। उदाहरणार्थ,ईंधन, शक्ति अथवा कच्चे माल की सुविधा प्राप्त करने के लिए किसी स्थान पर कारखाने खोले गये, उनमें रोजगार पाने के लिए श्रमिक पहुँचे, सहायक उद्योग धन्धे विकसित हुए और रेल यातायात के विकास के कारण भोजन तथा जीवनोपयोगी वस्तुएँ मिलने लगी, व्यापार का विकास हुआ। शहरो मे जनसख्या की वृद्धि का मुख्य कारण यह नहीं था कि रेल यातायात के कारण वहाँ पहुँचकर रहना सम्भव हो गया था, बल्कि यह था कि शहरो में जीवन निर्वाह के साधनो के साथ साथ भोजन तथा उपयोग की अन्य वस्तुएँ उपलब्ध हुई और जीवन की अधिक सुविधायें मिली।

(ख) नगरो के विकास के साथ साथ **नए वर्गों का विकास हुआ।** इन नए वर्गों में बैंकर, आढ़तिये, दलाल, सेल्समैन, छोटे दुकानदार, यात्री, व्यापारी इत्यादि थे। यातायात में काम करने वालो का एक नया वर्ग विकसित हुआ। इस वर्ग में ड्राइवर, फायरमैन, क्लीनर, गार्ड, पोटर, स्टेशन मास्टर, वर्कशॉप

ऑपरेटर, मैकेनिक, कुली (पोर्टर), जहाज चालक, डॉक में काम करने वाले इत्यादि थे।

(ग) यान्त्रिक यातायात के विकास का स्त्रियों की दशा पर भी प्रभाव पड़ा है।[1] पहले उन्हें अपना अधिकांश समय भोजन की वस्तुएँ बनाने और बनाकर भविष्य के लिए रखने में देना पडता था। परन्तु यातायात और व्यापार के विकास के साथ साथ बिस्किट, रोटी, अचार, रस, डिब्बों में बन्द गोश्त, नमक लगा मक्खन इत्यादि की फैक्टरियाँ विकसित हुई। धुलाई का काम लोन्ड्री (laundry) में कराया जाने लगा। उपभोग की वस्तुएँ अधिक मात्रा में खरीदकर रखने के बजाय आवश्यकतानुसार जरूरत के समय प्राप्त करना सम्भव और सुविधाजनक हो गया। फलस्वरूप स्त्रियों को बहुत से घरेलू कार्यों से छुटकारा मिल गया और उन्होंने अधिक लाभदायक रोजगार (employme1 ts) अपना लिये।

(घ) अकालों और अभावों की आशंकाएँ कम हो गई। एक ओर जीविका के साधनों में वृद्धि होने और दूसरी ओर दूरवर्ती क्षेत्रों और विदेशों में उत्पादित वस्तुएँ अपेक्षाकृत नीची कीमतों पर उपलब्ध होने से लोगों का जीवन स्तर सामान्यतया ऊँचा उठा और उनमें सुरक्षा की भावना आ गई, निश्चिन्तता के कारण कार्यक्षमता बढ़ी और वे भोजन एवं फसलों के उत्पादन में लगे रहने की अपेक्षा नये-नये अनुसन्धानों तथा उद्योगों की ओर अग्रसर हुए।

(ङ) स्थानीय जीवन की दशाएँ और स्वावलम्बन की अवस्था का लोप हो गया। विभिन्न देशों के निवासियों में परस्पर निर्भरता बढ़ने का लाभ ऊपर बताया जा चुका है परन्तु उन कारीगरों पर सक्रान्ति काल में बुरा प्रभाव पड़ा जो स्थानीय आवश्यकताओं की वस्तुएँ बनाते थे। बड़े पैमाने के उद्योगों का विकास होने और सस्ती वस्तुएँ मिलने के कारण स्थानीय कारीगरों का काम छिन गया।

(च) आवास-प्रवास—यातायात के विकास तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विकास के साथ-साथ ब्रिटेन में दूर-दूर देशों के व्यक्ति आये और ब्रिटेन के निवासी अनेक देशों में फैल गये। इसके अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के प्रभाव हुए। सभ्यताओं के आदान प्रदान और सम्पर्क बढ़ने से मैत्री भावनाओं और व्यापारिक

---

1. Knowles, L. C. A., op. cit., p 225.

सम्बन्धो का विकास हुआ । परन्तु देश के अन्य भागो और विदेशों के निवासियो के आगमन से स्थानीय प्रशासन की समस्याएँ उत्पन्न हुई । नोल्स ने लिखा है कि बहुत से लोग काम एक जगह करते हैं और सोते दूसरी जगह है, और किसी भी जगह के स्थानीय कल्याण (local welfare) के दायित्व अनुभव नही करते ।[1] चुनाव के रजिस्टरो मे निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। देश के नागरिको के परदेशगमन से एक कठिनाई तो यह उत्पन्न होती है कि उनसे कर वसूल कैसे किया जाये । दूसरे, देश के नवयुवको का जिनको शिक्षा इत्यादि पर व्यय किया जाता है विदेश चला जाना, जब तक अन्य दृष्टियो मे लाभदायक न हो, देश के लिए घाटे की बात है ।[2]

(छ) सरकारी हस्तक्षेप की नीति और सरकारी उत्तरदायित्वो मे वृद्धि–ऊपर आवास-प्रवास के कारण हुई जिन कठिनाइयो का उल्लेख किया गया है उनके कारण सभी देशो को केन्द्रीय सरकारो ने हस्तक्षेप (interference) की नीति अपनाई । नगरो के प्रशासन के ऊपर व्यय बढ़ा । सरकारो को अन्य क्षेत्रो से आये हुए व्यक्तियो की क्रियाओ के प्रति सावधान होना पड़ा । साथ ही यातायात के साधनो के आवास-प्रवास सम्बन्धी एव अन्य व्यापक प्रभावो की दृष्टि से रेल यातायात तथा जहाजी यातायात पर राजकीय नियन्त्रण की नीति अपनाई गई ।

उल्लिखित वाणिज्य क्रान्ति के महत्वपूर्ण प्रभाव थे । साथ साथ ब्रिटिश साम्राज्यशाही का विस्तार हो रहा था क्योकि ब्रिटेन को अपने बने हुए माल की बिक्री के लिए तथा कच्चे माल के साधनो पर नियन्त्रण प्राप्त करने के लिए नये राज्य और उपनिवेश स्थापित करने पडे । श्रमिको मे वर्गीय चेतना तथा अन्तर्राष्ट्रीय सगठनो का विकास हुआ । वस्तुतः १८वी शताब्दी मे ब्रिटेन ने औद्योगिक विकास के कारण संसार मे जो औद्योगिक नेतृत्व प्राप्त किया था वाणिज्यिक क्रांति के द्वारा उसमे और प्रगति की । इस प्रकार ब्रिटेन संसार का अग्रणी, सबसे अधिक सम्पन्न और शक्तिशाली राष्ट्र बन गया ।

---

1. Ibid "How can classes that are always changing their place of residence be governed ?...... many poople work in one place and sleep in another, and feel no real responsibilities for the local welfare of either place."

2. Ibid "The nation that lets its citizens go in the pride of their youth and strength incurs a loss in productive power.

यातायात के विकास का इतिहास

अठारहवी शताब्दी के मध्य तक ग्रेट ब्रिटेन मे यातायात की दशा पिछड़ी हुई थी। तदनन्तर लगभग सौ वर्ष की अवधि मे अर्थात् १९वी शताब्दी के मध्य तक सडकों और नाव्य नहरो का विकास हुआ। स्टीम से चलने वाले जहाजों का विकास हुआ। सन् १८४० से १९१४ तक का समय रेलवे यातायात की उन्नति का काल था। इस काल मे नहरो का महत्व घटा परन्तु अन्य प्रकार के यातायात के सभी साधनों का विकास हुआ। उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश की ओर राजकीय नियन्त्रण की दिशा मे अधिक ध्यान दिया गया। ब्रिटेन के रेलवे यातायात और जहाजी यातायात के विकास की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि उनका विकास सरकारी सहायता से नहीं बल्कि निजी पूँजी से हुआ और राजकीय नियन्त्रण का प्रश्न बहुत बाद में उठा। ग्रेट ब्रिटेन मे यातायात के विकास का अध्ययन इन भागो मे बाँटा जा सकता है :

(१) सडकों का विकास,

(२) नाव्य नहरें,

(३) रेल मार्गों का विकास,

(४) समुद्री यातायात,

(५) जहाजी नीति और नौ वहन का कानून, तथा

(६) वायु यातायात।

१. सडकों का विकास

ब्रिटेन मे सड़कों का विकास बहुत कुछ बेढंगे तौर पर हुआ है। रोमन काल में सैन्य सडक प्रणाली का निर्माण हुआ, परन्तु सन् ४१० ईसवी मे रोमनों के ब्रिटेन छोड़ने के बाद शताब्दियों तक सड़कों का काम लगभग पूर्णतया स्थानीय आधार पर ही चला और अधिक दूरी के मार्गों पर बहुत कम ध्यान दिया गया। १८वी शताब्दी के पूर्व ब्रिटेन मे सडकों की दशा बहुत गिरी हुई थी। आर्थिक विकास के लिए सड़कों का महत्त्व अत्यधिक था परन्तु परम्परा के अनुसार ब्रिटेन मे सड़कों की देखभाल निजी हाथो में रही जबकि यह कार्य फ्रान्स में राजकीय प्रबन्ध मे था। सन् १५५५ मे ब्रिटेन मे एक कानून द्वारा सड़कों के सुधार का कार्य पैरिश को (क्षेत्रों के प्रबन्ध मे) सौंपा गया। १८वी शताब्दी मे टर्नपाइक ट्रस्टों (turnpike trusts) की स्थापना हुई जिनका

निर्माण स्थानीय क्षेत्रो के भू स्वामियो इत्यादि के द्वारा पार्लियामेण्ट का प्राइवेट एक्ट पास कराके किया जाता था। ये ट्रस्ट सडको की मरम्मत और उनका सुधार कराते थे और इसके लिए धन एकत्रित करने के लिए उन्हें सडक का उपयोग करने वालो से चुंगी (toll) वसूल करने का अधिकार मिला हुआ था। टर्नपाइक ट्रस्टो द्वारा नियन्त्रित सड़को की दशा कुछ क्षेत्रो मे अच्छी थी और कुछ मे खराब थी। इसका एक कारण यह था कि उनकी धन (funds) सम्बन्धी स्थिति मे अन्तर था परन्तु असतोषजनक दशा का एक मुख्य कारण यह भी था कि उस समय तक सडक बनाने और मरम्मत करने की सामग्री (materials) उपयुक्त प्रकार की नहीं थी। परिणामतः तत्कालीन सड़को पर यात्रा करना खतरे से खाली नहीं था।[1]

उन्नीसवी शताब्दी के आरम्भ मे सडको की दशा मे तीन बडे सुधार हुए :

(१) जॉन मैक एडम ने सडक टिकाऊ बनाने के लिए अनुसन्धान किए;

(२) टॉमस टेलफोर्ड न सडक इन्जीनियरिंग का विकास किया, और

(३) टर्नपाइक ट्रस्टो का मिलना (combination) आरम्भ हो गया था जिससे अधिक क्षेत्रो मे सडको के प्रबन्ध और सुधार मे समानता (uniformity) आ गई थी, बडे पैमाने पर काम होने के कारण ये ट्रस्ट वेतन पर अधिकारी नियुक्त करने लगे थे, काम अच्छे ढग पर होने लगा था।

जिस समय सडको की दशा मे वास्तविक सुधार आरम्भ हुए उसी काल मे रेल यातायात के विकास का सड़को पर बुरा प्रभाव पडा। रेल-स्पर्द्धा के कारण टर्नपाइक ट्रस्ट टूटने लगे। उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे पास हुए कानून के द्वारा सडको का उत्तरदायित्व काउन्टी कौन्सिलो, जिला कौंसिलो तथा नगरी कौन्सिलो को सौंप दिया गया। नई सडको का निर्माण लगभग पूरी तौर पर बढ़ने वाले कस्बो तक सीमित रहा। यान्त्रिक सवारियो (motor vehicles) का प्रयोग प्रारम्भ हुआ तो सरकार के लिए यह आवश्यक हो गया कि सडको का कार्य केन्द्रीय अधिकार मे सौंपा जाये। अतएव सन् १९०९ मे एक एक्ट (Development and Road Improvement Funds Act, 1909)

---

1 "It is obvious that Travel would be attended with considerable danger to life and limb and it is not surprising that people who were adventurous enough to make 'tours' in England wrote of their adventures as if they had been to Central Africa." —*Knowles, L. C. A, op. cit., p. 238.*

द्वारा सडक बोर्ड (Road Board) की स्थापना हुई । सन् १९१९ में इस बोर्ड की जिम्मेदारियाँ नये रूप में प्रारम्भ हुए यातायात मंत्रालय (Ministry of Transport) ने ले ली ।

द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त ब्रिटिश अर्थ व्यवस्था के सम्मुख अत्यधिक कार्य होने के कारण सडकों पर होने वाला व्यय कुछ सुधारों तथा कुछ नई सडकों के निर्माण तक सीमित रहा । परन्तु सन् १९५३ मे नये कार्यों (works) पर अधिक जोर दिया गया है। इनमें सम्मिलित कार्यक्रम तीन प्रकार के हैं—पहले, आधुनिक ट्रंक सड़कों का निर्माण देश मे शीघ्र से शीघ्र प्रारम्भ करना जिसके अन्तर्गत लन्दन से न्यूकैसिल, लन्दन से बर्मिघम और यार्कशायर इत्यादि ट्रक सडको को प्राथमिकता दी जायगी, दूसरे शहरी क्षेत्रों मे सडकों की भारी कमी दूर करने के लिए नई सडकों द्वारा ट्रक मार्गों में जोडा जाएगा, तीसरे, समस्त देश में अपेक्षाकृत छोटी सडकें अधिक से अधिक संख्या मे बनाए जाने के लिए प्रयत्न किये जायेंगे। सन् १९५७ मे ग्रेट ब्रिटेन में १,९०,१५१ मील राजमार्ग थे जिनमें ८,२७१ मील ट्रंक सड़कें (trunk roads) तथा प्रथम कोटि की सड़कें १७,६०५ मील सम्मिलित थीं। सडक दुर्घटनाओं को रोकने के महत्वपूर्ण प्रयत्न किये गये हैं ।

२. नाव्य नहरें

नहरी यातायात का विकास सडकों की कमी के कारण तो हुआ ही जो इस तथ्य से प्रकट है कि आरम्भ में नहरें उन भागो में बनी जिनमें सडकें कम थीं परन्तु, नहरों के विकास का मुख्य कारण अधिकाधिक परिमाण में कोयला और कच्चा माल ढोने के लिए सस्ते यातायात की आवश्यकता थी ।

ब्रिटिश नहरों का इतिहास दो कालो में बाँटा जाता है। सन् १७६० से १८३० का समय नहरी यातायात के आरम्भ और विकास का काल था जिसमें नहरें यातायात का बहुत महत्वपूर्ण अङ्ग रहीं और देश के औद्योगिक विकास मे बहुत सहायक सिद्ध हुईं । सन् १८३० से १९१४ तक की अवधि में रेल यातायात और जहाजी यातायात में वृद्धि के कारण नहरों का अपेक्षाकृत पतन प्रारम्भ हुआ ।

सन् १७६१ में पहली नहर[1] ब्रिजवाटर नहर जेम्स ब्रिण्डले ने पूरी की ।

---

१. एक दस मील लम्बी नहर सन् १७५५ में लिवरपूल के समीप खोदी गई थी । देखिए इस पुस्तक का अध्याय २, पृष्ठ ३० ।

इस नहर ने वर्सले की ब्रिजवाटर के ड्यूक की कोयले की खानो को मानचेस्टर से मिलाया। मानचेस्टर को समुद्र से मिलाने की आवश्यकता थी। ड्यूक ने दूसरी नहर मानचेस्टर से रनकोर्न तक बनाकर उसे लिवरपूल से जोड़ दिया। ग्रेट ब्रिटेन की अन्य महत्वपूर्ण नहरो मे से अधिकाश सन् १८३० तक बन चुकी थी—सन् १७९३ से १७९७ तक की अवधि मे बहुत सी नहरें बनी। सन् १८४० के बाद बनी नहरो मे स सन्१८८८ से १८९४ के बीच बनी मानचेस्टर शिप कैनाल ही अधिक उल्लेखनीय है।

सन् १७६० से १८३० तक का काल नहरो का स्वर्णयुग कहा जा सकता है। नहरो कम्पनियो के अशो (shares) की बाजार कीमतो तथा उनपर दिए जाने वाले लाभाशो (dividends) से इसका समर्थन होता है।

ब्रिटेन मे नहरें व्यक्तियो (अथवा प्राइवेट कम्पनियो) द्वारा निजी पूंजी (private capital) से बनाई गई थीं। सरकार ने प्रत्यक्ष रूप से न तो उनके निर्माण के लिए कोई वित्तीय सहायता दी और न आरम्भ मे उसका कोई नियन्त्रण था। स्कॉटलैण्ड मे दो नहरो केलेडोनियन तथा क्रिनन का निर्माण और सुधार अवश्य सरकारी ग्रान्ट (grants) से हुआ। यह अपवाद के रूप में समझा जाना चाहिए। वस्तुत. इन नहरो का निर्माण समुद्रतटीय उच्च भूमि के खतरो से जहाजो को बचाने की दृष्टि से कराया गया था।

नहरो का स्वामित्व निजी व्यक्तियो अथवा कम्पनियो का होने के कारण उनका उपयोग करने वालो से उनके द्वारा कर (toll) वसूल किया जाता था। नहरो के निर्माण के लिए भूमि का अधिकार प्राप्त करने के लिए पार्लियामेंट का एक एक्ट पास कराना पड़ता था और यह अधिकार देने के लिए पार्लियामण्ट अधिकतम दरें निश्चित कर देती थी और यह शर्त लगा दी जाती थी कि नहर का उपयोग करने के लिए उन निश्चित दरो से अधिक महसूल (charges) नही लिये जा सकते। विभिन्न व्यक्तियो और कम्पनियो के स्वामित्व मे होने के कारण नहरो की चौड़ाई, गहराई, सुरगें, पुल, लॉक (locks) इत्यादि मे कोई समानता नही थी और महसूल की दरें भी भिन्न भिन्न थी। उनके सुधार और वित्तीय प्रबन्ध के ढंग भी विभिन्न ढगो के थे। माल एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजने के लिए कोई थ्रू प्रणाली नही थी, यदि उन स्थानो के बीच मे दस नहरें थी तो सभी नहरो के अलग अलग असमान दरो पर महसूल चुकाने पड़ते थे।

ग्रेटब्रिटेन में नहरो की असमान दरें और विभिन्न प्रबन्ध होने पर

भी नहरो यातायात के प्रभाव अत्यन्त महत्वपूर्ण थे। इनमे से मुख्य प्रभाव ये थे :—

(१) नहरो के विकास के पूर्व सड़क से माल भेजने का भाड़ा बहुत अधिक था और समय बहुत लगता था। नहरो से माल भेजने मे कम समय लगने लगा जिसके कारण माल की होने वाली क्षति न होती और साथ ही ढोने की लागत बहुत कम हो गई। परिणामस्वरूप, उद्योग और व्यापार में वृद्धि हुई क्योकि कच्चा माल और भारी वस्तुएँ (जैसे कोयला, इमारती सामान इत्यादि) ढोना सम्भव हो गया था। ब्रिटेन की औद्योगिक क्रान्ति मे नहरो का योग महत्वपूर्ण था।

(२) नहरो के द्वारा खाद्य सामग्री के वितरण की सुविधाएँ मिलने के कारण कृषि के विकास में सहायता मिली। औद्योगिक विकास के लिए भी यह आवश्यक था कि औद्योगिक केन्द्रों म भोजन की पर्याप्त पूर्ति रहती।[1]

(३) जनसंख्या के वितरण पर यह प्रभाव पड़ा कि अब भोजन सामग्री के उत्पादन क्षेत्रो से दूर नये नये उद्योग-धन्धो के स्थानो पर जाकर लोग रहने लगे।

(४) बन्दरगाहो के विकास की दृष्टि से नहरो का प्रभाव स्पष्ट था। नहरो ने उनके लिए विस्तृत पृष्ठ-प्रदेश (hinterlands) खोल दिये थे।

(५) सड़को की अपेक्षा नहर भाड़े और समय की दृष्टि से अधिक सुविधाजनक थीं, यह तो ऊपर बताया जा चुका है, इसके साथ ही अनेक नगरो के बीच दूरी कम हो गई क्योंकि तटीय मार्ग की अपेक्षा अब सीधे मार्ग से यातायात सम्भव हो गया था, जैसे, ब्रिस्टल से लन्दन, लिवरपूल से हल (Hull) के बीच मे। इसका प्रभाव भी व्यापार के विकास के रूप मे पड़ा।

(६) नहरी यातायात के विकास मे नाविको (navigators) के वर्ग का उदय हुआ। नहरो की खुदाई मे ठेकेदारो और सर्वेक्षणकर्ताओ (Contractors and surveyors) को प्रशिक्षण मिला जिसके कारण बाद मे रेलमार्गो तथा जहाजी यातायात के लिए कुशल कर्मचारी मिल गये।

(७) व्यापार का ढंग ही बदल गया। अदवों द्वारा होने वाला व्यापार अब कमर्शियल यात्रियो (Commercial Travellers) के द्वारा नमूनो

---

1 "... the 'great industry' could not have taken root in the North owing to the difficulties of the food supply and not merely the coal supply had it not been for improved transport by the canals." —Knowles, L.C.A., op. cit., p. 247

(Samples and patterns) की सहायता से खुदरा व्यापारियो को बेचा जाने लगा—माल नहरों द्वारा बाद मे भेज दिया जाता था।

नहरों की अवनति

सन् १८३० के पश्चात् नहरो की अवनति होने लगी। यह समझना भ्रान्तिपूर्ण होगा कि सन् १८३० के पश्चात् नहरो ने माल ढोना बन्द कर दिया या उसमे भारी कमी हुई अथवा नहरी यातायात का अब कोई महत्व नही रहा था। नहरो द्वारा ढाये जाने वाले माल का परिमाण घटा नही था।[1] वस्तुतः नहरो की अवनति इस दृष्टि से हुई थी कि यान्त्रिक यातायात के साधनो के विकास और उनका स्पर्द्धा के कारण नहरो को करो (toll) की दरें बहुत घटानी पडी।[2] नहरी कम्पनियों को होने वाले लाभ घट गये, नहरो का सुधार रुक गया, कुछ अपवादो को छोडकर नई नहरे बनने की दिशा मे प्रगति बन्द हो गई तथा इस तथ्य को दृष्टिगत रखकर विचार किया जाय कि १६ वी शताब्दी मे ब्रिटेन के व्यापार मे उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई तो यह कहा जा सकता है कि नहरी यातायात के परिमाण मे होने वाली वृद्धि नगण्य और उसकी प्रगतिहीनता की सूचक थी। यातायात मे होने वाली वृद्धि नये यान्त्रिक यातायात के हाथो मे गई।

रेलमार्गों को तुलना मे नहरो की प्रगतिहीनता के मुख्य कारण निम्नलिखित थे :—

१. नहरो की अपेक्षा रेल मार्ग गति (speed) और समय की पाबन्दी (punctuality) की दृष्टि से श्रेष्ठतर थे। रेल कम्पनियों की दरें आरपार एक थी, उनके अफसरो का व्यवहार भी अच्छा था। रेल मार्गों से कम या अधिक कितने ही परिमाण मे माल भेजा जा सकता था।

२. नहरें और रेल मार्ग दोनों ही निजी स्वामित्व म थे अत. उनमे स्पर्द्धा थी और सरकार इस स्पर्द्धा को बनाए रखने मे रुचि रखती थी ताकि भाडे की दरें नीची रहें।

३. समुद्री तटो पर चलने वाले स्टीमरो की सख्या मे वृद्धि होने पर नहरी नौकाओ और पोतो से माल भेजने की अपेक्षा स्टीमरो से भेजा जाने लगा और नहरो की अपेक्षा तटीय मार्ग अपनाये गये।

---

1. Knowles writes, "The canals actually carried in 1909 more goods than they had ever handled .. "

2. Ibid, p. 250. "The canal tolls were reduced in some cases to as much as a seventh.........'

४. नहरों के लाभांश गिरने के कारण उनमे पूँजी का विनियोग करने की अपेक्षा पूँजीपतियों को रेलमार्ग (railways) अधिक आकर्षक थे। सरकार स्वयं उनमें पूँजी नही लगाना चाहती थी क्योकि स्कॉटलैण्ड की केलेडोनियन नहर के स्वामित्व से ही हानि हो रही थी।

५. नहरों की स्पर्द्धा से बचने के लिए रेल कम्पनियों ने अनेकों नहरें खरीद ली, अनेक नहर कम्पनियाँ अपने अशधारियों (shareholders) को बचाने की दृष्टि से नहरें बेचने के लिए स्वयं तैयार हो गई। परिणामतः एक-तिहाई से अधिक नहरे रेलवे कम्पनियों के स्वामित्व मे आगई और नहरों का सुधार रुक गया। यदि सब नहरें रेलवे कम्पनियों के स्वामित्व में आजाती तो उनके प्रबन्ध मे एकता (uniformity) और कुशलता आना सम्भव था परन्तु यह भी नही हुआ। नहरें अनेकों और विभिन्न प्रबन्धों में थी।

६. नहरों मे सुधार करना इसलिए भी सम्भव नही हो सका कि उनके किनारों पर बहुत निकट तक इमारतें इत्यादि बनी हुई होने के कारण उन्हें चौड़ा नही किया जा सकता था।

७. कृषि और व्यापारगत विकासों की दृष्टि से रेल यातायात अधिक अनुकूल था, यह नहरों की अवनति का मुख्य कारण समझा जा सकता है। कृषि में फसलों की अपेक्षा दुग्ध व्यवसाय पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। दुग्ध पदार्थ ढोने के लिए नहरें बहुत धीमी सिद्ध होती थीं, रेलों से उन्हें बाजारों में शीघ्र पहुँचाया जाता था। इसी प्रकार कोयले के व्यापार के लिए व्यापारी को यह सुविधा थी कि रेलवे वैगन को खान के मुख तक पटरियों पर खड़ा किया जा सकता था जब कि नहरों से कोयला भेजने के लिए यह सुविधा नही थी और उसमें बड़े बड़े गोदामों की भी आवश्यकता पड़ती थी।

साराश यह है कि नये विकासों के लिए रेल मार्गों की अधिक उपयुक्तता, उनकी अधिक कुशलता, नहरों के प्रबन्ध मे विभिन्नता, नहरों मे होने वाले विनियोगों का अभाव, सरकारी सहायता की कमी इत्यादि कारणों का सम्मिलित प्रभाव यह पड़ा कि नहरें यातायात का पुराना साधन रह गईं और रेलों की होड़ मे पीछे रह गईं। दुहराना न होगा कि १८ वीं शताब्दी के मध्य से १६ वीं शताब्दी के मध्य के लगभग तक नहरों ने उद्योग, व्यापार और कृषि की उन्नति मे अत्यधिक योग दिया परन्तु उसके पश्चात् अधिक महत्व का स्थान रेलों ने ग्रहण कर लिया।

प्रथम विश्वयुद्ध के समय रेलों के ऊपर सरकारी नियन्त्रण हुआ तो

उसके अन्तर्गत उनके स्वामित्व मे आने वाली (railway-owned) नहरें भी आ गईं। ऐसी मुख्य नहरें जो रेलवे-स्वामित्व मे नही थी सन् १९१७ मे व्यापार मंडल (Board of Trade) की नहर नियन्त्रण कमेटी (Canal Control Committee) के नियन्त्रण मे लाई गईं थीं परन्तु युद्ध समाप्त होने पर उनके निजी स्वामियो को लौटा दी गईं। द्वितीय युद्ध काल मे नहरो पर फिर सरकारी नियन्त्रण रहा और सन् १९४८ मे नहरें सरकारी नियन्त्रण से सीधी ब्रिटिश यातायात आयोग (British Transport Commission) को सौंप दी गईं। सन् १९५५ मे उनका प्रबन्ध प्रथक् रूप मे आयोग के जलमार्ग भाग (Waterways Division) द्वारा होता है जिसे ब्रिटिश वाटर वेज (British Waterways) कहते है। सन् १९५८ मे ग्रेट ब्रिटेन के कुल नाव्य आन्तरिक जलमार्ग २,६०० मील के लगभग थे।

३. रेल मार्गो का विकास

रेल यातायात का विकास विश्व मे सर्वप्रथम ग्रेट ब्रिटेन मे हुआ। सड़कों और नहरो का विकास ब्रिटेन मे पहले ही हो चुका था जिनका प्रबन्ध निजी व्यक्तियों के हाथों मे था और उनमे सामंजस्य का अभाव था। रेलमार्गों ने यातायात के पूर्व विकसित साधनो की अनेक विशेषताएँ अपनाईं। ब्रिटेन की रेलवे प्रणाली अन्य देशो की प्रणालियो से अनेक बातो मे भिन्न थी। उसकी मुख्य विशेषताएँ ये थी :

(१) ग्रेट ब्रिटेन मे रेलमार्गों का विकास निजी (private) पूँजी से हुआ जबकि बाद मे अन्य अनेक देशो जैसे फ्रान्स, जर्मनी मे उनका निर्माण और विकास सरकारी पूँजी या सहायता से हुआ,

(२) ब्रिटिश रेलमार्गों के विकास का उद्देश्य सामरिक (military) नही था बल्कि व्यावसायिक मात्र था;

(३) रेलमार्गों के विकास के लिए विनियोग करने के लिए ब्रिटेन मे पूँजी प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध थी जबकि भारतवर्ष और रूस इत्यादि देशो मे उनका विकास विदेशी पूँजी की सहायता से किया गया,

(४) ब्रिटेन मे गमनागमन और यातायात मे पहले ही बहुत वृद्धि हो रही थी और रेलमार्गों का विकास बढी हुई माग को पूरा करने के लिए किया गया था, अन्य देशो मे क्रम प्रायः यह था कि रेल यातायात के विकास के पश्चात् व्यापार और यातायात (Traffic) की वृद्धि हुई;

(५) ब्रिटेन में जिस समय रेलमार्गों का विकास आरम्भ हुआ उस समय नहरों का विकास रुक गया और उनकी अवनति होने लगी, युरोप के अन्य देशों में नहरों और रेलमार्गों का विकास साथ-साथ किया गया था;

(६) ब्रिटेन मे रेलयातायात मे एकाधिकार की दशाएँ नही थी क्योकि रेलमार्गो का प्रबन्ध और स्वामित्व निजी और अनेक कम्पनियो के हाथो मे था अन्य देशो मे स्पर्द्धा का अभाव था;

(७) आरम्भ मे ब्रिटेन मे रेलवे लाइनें (पटरियाँ) इत्यादि बिछाने का काम कम्पनियाँ कर देती थी और जिस प्रकार नहरो का इस्तैमाल (नौका चलाने के लिए) कोई भी व्यक्ति कर सकता था और उसके लिए कर (toll) देना पड़ता था उसी प्रकार पटरियों पर कोई भी व्यक्ति अपनी गाड़ी या वैगन ले जा सकता था जिसके लिए रेलवे कम्पनियाँ महसूल वसूल करती थी। कालान्तर में रेलमार्गों के स्वामी अपनी गाड़ियाँ चलाने लगे;

(८) ब्रिटेन मे रेलवे महसूल की प्रणाली (system of rate charges) भी भिन्न प्रकार की थी;

(९) ब्रिटेन में छोटी छोटी रेलवे लाइनें बनाई गई, जबकि युरोप के अन्य देशो में बड़ी लाइनें बनी। इसका मुख्य कारण यह था कि ग्रेट ब्रिटेन मे कोई भी स्थान ऐसा नही है जो किसी न किसी बन्दरगाह से नब्बे मील से अधिक दूरी पर हो।[1]

(१०) इसके अतिरिक्त ब्रिटिश रेलमार्गों पर अन्य सब देशो की अपेक्षा प्रति मील अधिक पूँजी लगानी पड़ी। इसके कई कारण थे। पहला कारण यह था कि आरम्भ मे ब्रिटेन मे रेल यातायात के विकास का विरोध ऐसे अनेक आधार पर किया गया जिन्हें आजकल हम अत्यन्त हास्यास्पद और मूर्खतापूर्ण कहेंगे।[2] इन विरोधों को दबाने मे रेलमार्गों की लागत बढ़ी।

---

1 "The railway traffic of the continent necessarily consists of long hauls. In England . . . the hauls for domestic use or export are for short distances only" —Knowles.

2. "The country gentleman was told that the smoke will kill the birds as they passed over the locomotive . . . . oats and hay would be no marketable produce . . . . cows would cease to yield their milk . . . life and limb would be endangered . .
—From Francis quoted by Knowles, op., cit., p. 256.

दूसरे, छोटे पैमाने पर अर्थात् थोडी दूरियो के लिए रेलमार्ग बनाये जाने के कारण लागत अधिक पडी। तीसरे, नहरो की स्पर्द्धा से बचने के लिए रेलवे कम्पनियो को नहरें खरीदनी पडी और इससे भी लागत बढी। चौथे, ब्रिटेन के अधिकाश क्षेत्र मे भूमि समतल न होने के कारण मार्ग बिछाने, सुरगें बनाने तथा पुलो के निर्माण मे लागत अपेक्षाकृत अधिक लगी। इसके अतिरिक्त यह स्मरणीय है कि ब्रिटेन को, रेलमार्गों के विकास का प्रथम देश होने के कारण, प्रयोगो (experiments) की लागत देनी पडी, जब कि अन्य देशो ने ब्रिटेन के अनुभवो से लाभ उठाया, जो गलतियाँ ब्रिटेन मे रेलमार्गों के प्रारम्भिक काल मे हुई थी उनमे से अधिकाश गलतियाँ अन्य देशो मे नही होने दी गईं।

रेलमार्गों के इतिहास को कुछ कालो (periods) मे बाँटा जा सकता है। सन् १८२१ से १८४४ तक रेलमार्गों का प्रयोग काल (period of experiment) था। सन् १८४५ से १८७२ तक का समय रेलवे लाइनो का गठन काल (period of consolidation) कहा जा सकता है जिसमे बड़ी रेलवे कम्पनियो का निर्माण हुआ और नहरी स्पर्द्धा समाप्त प्रायः हो गई। सन् १८७३ से १८९३ तक का काल राजकीय नियन्त्रण के विकास का था। सन् १८९४ से १९१४ तक की अवधि मे रेलवे कंपनियो पर कई कारणो से बुरा प्रभाव पडा और उनके लाभाश घटे, व्यापारियों और श्रमिको ने विरोध किये और राष्ट्रीयकरण का प्रश्न उठा।

सोलहवी शताब्दी के अन्त की ओर खानो और लोहे के कारखानो के समीप रेल पथो (पटरियो) का उपयोग होने लगा था परन्तु माल ढोने वाले डिब्बो (trucks) मुख्यतया घोडो द्वारा खीचे जाते थे। उन्नीसवी शताब्दी के आरम्भ मे ब्रिटिश इन्जीनियरो ने लोकोमोटिव (इंजनो) के उपयोग के सम्बन्ध में विचार रखे। रेलवे इजन की सुधरी हुई डिजाइन का श्रेय जार्ज स्टीफेन्सन को है। सन् १८२५ मे स्टॉकटन से डार्लिङ्गटन तक पहला सार्वजनिक रेलमार्ग खुला जिस पर लोकोमोटिव चलने आरम्भ हुए। सन् १८३० मे लिवर पूल से मानचेस्टर तक रेलमार्ग बनकर तैयार हुआ जिस पर जार्ज स्टीफेन्सन का प्रसिद्ध लोकोमोटिव 'रॉकेट' काम में लिया गया। सन् १८४२ के अन्त मे ब्रिटिश रेलमार्गों की लम्बाई १,८५७ मील थी। इसके बाद रेलों मे बहुत वृद्धि हुई, सन् १८४६ मे एक बार अल्पकालीन शिथिलता अवश्य आई थी, सन् १८५४ मे रेलमार्गों की लम्बाई ८,९५४ मील हो गई।

सन् १८४६ में सरकारी हस्तक्षेप आरम्भ हुआ और पार्लियामेण्ट के एक एक्ट द्वारा यह निर्धारित किया गया कि ग्रेट वैस्टर्न रेलवे के विस्तार के अतिरिक्त सब नई लाइनें ४ फीट ८½ इंच गेज (gauge) की होगी। ग्रेट वैस्टर्न रेलवे का गेज सात फीट का था। सन् १८४० के पश्चात् दो दशाब्दियों (decades) में कुछ रेलवे कम्पनियो का समामेलन हुआ और कुछ कम्पनियों ने समझौतों द्वारा सीधे गमनागमन (through traffic) की सुविधाग्रो की व्यवस्था की। सन् १८५४ मे रेलवे तथा नहर यातायात एक्ट (Railway and canal traffic Act, 1854) कम्पनियो के लिए यह आवश्यक कर दिया गया कि वे उचित सुविधाएं प्रदान करें और उपयोग करने वालो मे कुछ को अनावश्यक तरजीह (preference) न दें। सन् १८८८ मे रेलवे एण्ड कैनाल ट्रैफिक एक्ट द्वारा भाडो का वर्गीकरण कर दिया गया और भाड़ों की अधिकतम सीमा निश्चित कर दी। यह एक्ट सन् १८९३ मे लागू हुआ। एक रेल-नहर आयोग (Railway and canal commission) की स्थापना हुई। कोई भी रेल कम्पनी किराये-भाड़ों में परिवर्तन इस आयोग की स्वीकृति के बिना नही कर सकती।

प्रथम विश्व युद्ध काल मे समस्त रेलमार्ग केन्द्रीय सरकार के नियन्त्रण मे आगए और उनका प्रबन्ध रेलवे एक्जीक्यूटिव कमेटी को सौंपा गया। युद्धकालीन अनुभव से रेलमार्गों के नियंत्रण और पुनर्गठन का महत्व प्रतीत हुआ। अतएव सन् १९२१ के रेलवेज एक्ट के द्वारा तत्कालीन १२३ रेल कम्पनियो का चार बडे समूहो में समामेलन कर दिया गया। इन समूहों के नाम ये हैं :

(१) लन्दन, मिडलैण्ड और स्कॉटिश,

(२) लन्दन और नॉर्थ ईस्टर्न,

(३) ग्रेट वैस्टर्न और

(४) सदर्न (दक्षिणी)।

रेल-नहर आयोग के कार्य करने के लिए रेलवे रेट्स ट्रिब्यूनल की स्थापना की गई जिसको किराये भाडे का वार्षिक पर्यवेक्षण का काम सौंपा गया।

प्रथम विश्व युद्ध और द्वितीय विश्व युद्ध के बीच के काल (inter-war period) में रेलवेज को व्यावसायिक मन्दी और सडकों की स्पर्द्धा से चोट पहुँची और उन्हें लाभ उचित दर पर नही मिल सका। सन् १९३८ में रेलो की स्थिति मे सुधार करने के लिये प्रस्ताव रखे गये परन्तु सन् १९३९ में युद्ध छिड़ जाने

से उन्हें कार्यरूप में नही लाया जा सका। युद्ध काल में रेलमार्गों का नियन्त्रण गवर्नमेन्ट रेलवे एक्जीक्यूटिव कमेटी के हाथों मे रहा। युद्धोपरान्त सन् १९४७ मे ट्रान्सपोर्ट एक्ट पास हुआ जिसके द्वारा रेलमार्ग सार्वजनिक स्वामित्व मे आ गये (उनका राष्ट्रीयकरण हो गया)। तब से ग्रेट ब्रिटेन के रेलमार्गों का प्रबन्ध एक इकाई ब्रिटिश रेलवेज के रूप मे हो रहा है जिसके प्रादेशिक विभाग (रीजनल सब डिवीजन) छः है :

(१) लन्दन मिडलैण्ड;
(२) वैस्टर्न;
(३) ईस्टर्न,
(४) सदर्न,
(५) नॉर्थ ईस्टर्न और
(६) स्कॉटिश।

सन् १९५७ के अन्त मे ब्रिटिश रेलवेज की रेल-सड़कें (railroads) १८,९६५ मील और रेलपथ (track) ५१,०७९ मील था।[1] ब्रिटिश रेलो ने सन् १९५७ मे २७,४० लाख टन माल ढोया।

४. समुद्री यातायात

वाणिज्य-क्रान्ति लाने मे जहाजो (steamships) का योग रेलो से कम नही था। लकडी के जहाजो का विकास तो संयुक्त राज्य अमेरिका मे भी लगभग उसी काल में हुआ जिसमे ग्रेट ब्रिटेन मे हुआ परन्तु लोहे के स्टीमरो और जहाजो का विकास सर्वप्रथम ब्रिटेन मे हुआ और ब्रिटेन प्रथम देश था जिसने ससार के व्यापार मे बडे पैमाने पर स्टीमरो का प्रयोग प्रारम्भ किया।

कुछ ऊपर के नियमन को छोडकर ब्रिटेन के जहाज राजकीय नियत्रण से मुक्त रहे। इसका एक कारण यह था कि उनके ऊपर नियन्त्रण प्रभावपूर्ण होना भी कठिन था।

ग्रेट ब्रिटेन मे समुद्री यातायात का आरम्भ बहुत पहले ही हो चुका था क्योकि प्रकृति ने ब्रिटेन को द्वीपीय स्थिति प्रदान की है। चौदहवीं शताब्दी के अन्त मे वहाँ के शासको ने जहाजी यातायात के विकास के लिए उपाय किये। पन्द्रहवी शताब्दी के अन्त की ओर और उसके उपरान्त ब्रिटेन की जहाजी नीति और नौवहन कानून (navigation acts) द्वारा जहाजो यातायात की बहुत

---

1. Britain : An Official Handbook, 1959, p. 349.

उन्नति हुई। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में संरक्षण की नीति का परित्याग करके जहाजी यातायात को स्वतन्त्र स्पर्द्धा के लिए खुला छोड़ दिया (नौवहन विधान का संक्षिप्त परिचय इसी अध्याय में आगे किया गया है)।

सन् १८१५ से १९१४ तक के सौ वर्षों में जहाजी उन्नति द्रुत गति से होती गई और पोत-निर्माण उद्योग में तथा माल ढोने में ब्रिटेन की सर्वोच्चता संसार में स्पष्ट थी। सन् १८५४ के पश्चात् लकड़ी के पाल वाले जहाजों के स्थान पर लोहे के और फिर इस्पात के जहाज प्रचलन में आये। पाल वाले जहाज हवा पर निर्भर रहते थे और उनकी गति धीमी थी। लोहे-इस्पात के जहाजों मे वाष्प शक्ति का प्रयोग हुआ। तकनीकी (technique) में बहुत विकास हुआ। एञ्जिन में सुधार किये गये और जहाजों के आकार में वृद्धि हुई—वे पहले की अपेक्षा अधिक माल ढोने लगे। सन् १८६९ में स्वेज नहर खुलने के पश्चात् जहाजी यातायात में वाष्प शक्ति के उपयोग में बहुत वृद्धि हुई क्योंकि पाल वाले जहाज स्वेज मार्ग के लिए अनुपयुक्त थे।

वाष्प से चलने वाले जहाजों (steamships) के दो प्रकार थे, एक लाइनर (liner) और दूसरे ट्रैम्प (tramp)। लाइनर निश्चित मार्गों से पूर्व निश्चित समय पर चलते थे और यात्रियों, डाक तथा ऐसे सामान को ले जाते थे जिन्हें शीघ्र पहुँचाना आवश्यक था क्योंकि लाइनर तेज चलते थे। ट्रैम्प माल ढोने का ही काम करते थे और मार्ग में रुकते हुए जाते थे और उनका कोई निश्चित मार्ग या समय नहीं था। नये स्थानों में व्यापार करने के लिए आरम्भ में ट्रैम्प काम में लाये जाते थे और व्यापार नियमित हो जाने पर उसे लाइनर ले लेते थे। जमाया हुआ मांस और तेल ढोने के लिए विशिष्ट प्रकार के जहाज काम में आने लगे। सन् १८८० में ब्रिटेन की सामुद्रिक शक्ति संसार में सबसे अधिक थी, पोत-निर्माण उद्योग में वह अग्रणी था और संसार का अधिकांश समुद्री व्यापार ब्रिटिश जहाजों द्वारा होता था।

सन् १८८० के उपरान्त जहाजी यातायात में ब्रिटेन को विदेशी प्रतियोगिता का सामना करना पड़ा। सन् १८८१ में फ्रान्स में जहाजी यातायात के विकास के लिए सरकार ने अनेक रूपों में आर्थिक सहायता (subsidies) देना आरम्भ किया और सन् १८८५ में जर्मनी, इटली, आस्ट्रिया, हंगरी, जापान, रूस, डेन्मार्क, स्पेन, बेल्जियम और संयुक्त राज्य अमेरिका में सरकारी सहायता दी जाने लगी। जर्मनी जहाजी व्यवसाय में ब्रिटेन का बहुत बड़ा प्रतिद्वन्द्वी बन गया।

सन् १८८० के बाद के वर्षों में विदेशी प्रतियोगिता का मुकाबला करने के लिए ब्रिटिश जहाजी कम्पनियों ने 'रिंग' (rings) अथवा कान्फ्रेन्सो द्वारा जहाजी भाड़े निश्चित करने के लिए समझौते किए।[1] नये आधुनिकतम जहाज बनाए गए। एक नई प्रथा (deferred rebate system) अपनाई गई जिसके अन्तर्गत उन ग्राहकों को जो ब्रिटिश जहाजी कम्पनी से ही नियमित रूप से माल भिजवाते थे, बाद में (छः माह बाद) दस प्रतिशत की छूट दी जाती। विदेशी कम्पनियों से समझौते किये गये जिनके अनुसार जहाजी व्यापार के लिए प्रदेश (territories) बाँटे गये परन्तु ये समझौते ठीक प्रकार नहीं चल पाते थे। ब्रिटिश जाहाजी कम्पनियों ने सयोगों (combinations) और समामेलनों (amalgamations) के द्वारा स्पर्द्धा शक्ति बढ़ाई।

प्रथम महायुद्ध काल (१९१४-१८) में ब्रिटिश जहाजों को भारी क्षति हुई– अनेक जहाज नष्ट हो गए। दूर के व्यापार से ब्रिटिश जहाजों के हट जाने से जापान इत्यादि अन्य देश दूरवर्ती व्यापार को हथिया बैठे। युद्ध काल में ब्रिटिश जहाजों को सरकारी नियन्त्रण के कारण भी कम लाभ हो सके। सरकार ने जहाजी भाड़ों की दरें निश्चित कर दी थीं और उनके ऊपर अतिरिक्त लाभ कर (excess profits tax) आरोपित कर दिया। सयुक्त राज्य अमेरिका भी ब्रिटेन का प्रतियोगी हो गया। इस प्रकार युद्धोपरान्त काल में ब्रिटिश जहाजी यातायात को दो कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, एक तो जहाजों की कमी और दूसरी जापान और सयुक्त राज्य अमेरिका की स्पर्द्धा। युद्ध काल में जहाजों की ठीक प्रकार मरम्मत भी नहीं हो सकी थी। परन्तु युद्धकाल में ब्रिटेन में पोत-निर्माण क्षमता (capacity) का सचय हुआ था जिससे युद्धोपरान्त काल में जहाजी टन भार में वृद्धि की जा सकी और दूसरा लाभ यह समझा जा सकता है कि जर्मनी की प्रतिस्पर्द्धा समाप्त हो गई।

सन् १९२० के उपरान्त विदेशी व्यापार में कमी के कारण एक बारगी मन्दी शुरु हुई और सन् १९२६ तक चालू रही। उसके बाद हालत सुधरी। सन् १९२९ से १९३३ तक विश्वव्यापी मन्दी का काल था। जहाजी यातायात उसके प्रभाव से अछूता न रह सका। इस काल में जहाजी उद्योग को बहुत क्षति पहुँची।

---

१. पहली कान्फ्रेंस सन् १८७५ में सगठित हुई थी और डेफर्ड रिबेट प्रणाली सन् १८७७ में आरम्भ हुई।

द्वितीय विश्वयुद्ध (१९३९-४५) काल में जहाजी उद्योग और जहाजी यातायात सरकारी नियन्त्रण में आ गये। इस काल में जहाज सम्बन्धी किसी भी प्रकार की हड़ताल अवैधानिक घोषित कर दी गई थी और शत्रु-देशों के साथ विदेशी व्यापार करने और उन्हें जहाज किराये पर देने की मनाही करदी गई। अधिकतर जहाजों का बीमा करा दिया गया था परन्तु युद्धकालीन जोखिमों के कारण प्रीमियम की दरें बहुत ऊँची थी। युद्धकाल में जहाजी टन-भार की भारी क्षति हुई जिसे युद्धोत्तर काल के कई वर्षो मे भी पूरा करना सम्भव नही हो पाया।

सन् १९४८ मे लन्दन में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया गया जिसमें समुद्री यात्रा की सुरक्षा के प्रश्न पर विचार किया गया। युद्धोत्तर काल मे पुराने जहाजों के सुधार और मरम्मत की समस्या के अतिरिक्त विकट कठिनाई बन्दरगाहों पर कर्मचारियों की हड़तालों के कारण उत्पन्न हुई जिसके कारण भारी क्षति हुई।

सन् १९३० मे ब्रिटेन के व्यापारी जहाजों का टन-भार[1] लगभग २०३ लाख था, सन् १९३९ मे १७९ लाख था और ३० जून १९५७ को १९९ लाख था।[2] सन् १९५७ वर्ष के भुगतान सन्तुलन मे जहाजी यातायात का योग (net contribution) साढे ग्यारह करोड़ पौंड मूल्य का था।[3] जहाजों की संख्या ५,६२७ थी। व्यापारिक जहाजों के सम्बन्ध में एक आधुनिक प्रवृत्ति यह देखी गई है कि ट्रैम्प जहाजों मे कमी हुई है और टैंकरों (tankers) की संख्या और उनके आकार मे वृद्धि हुई है। इन टैंकरों के लगभग दो तिहाई तेल कम्पनियों के हैं। नये प्रकार के विशिष्ट जहाज भारी माल, जैसे, कच्ची धातुएँ (ores), ढोने के लिए बनाये गये है।

५. नौवहन सम्बन्धी कानून तथा नीति (Navigation Acts and Policy)

ग्रेट ब्रिटेन मे नौवहन सम्बन्धी एक के बाद एक कई एक्ट पास हुए जिनका उद्देश्य ब्रिटेन के जहाजी व्यापार (shipping) तथा पोत-निर्माण उद्योग (Ship-building industry) को प्रोत्साहन देना था। प्रथम एक्ट सन्

1. Gross tons of merchant shipping.
2. Britain : An Official Handbook, 1959, p. 335.
3. Ibid.

१३८१ मे पास हुआ था जिसके अनुसार यह आवश्यक कर दिया गया था कि ब्रिटेन के सभी आयात-निर्यात आग्ल जहाजो द्वारा लाये लेजाये जायेंगे। जहाजो की कमी के कारण यह कानून चल न सका और स्थगित करना पड़ा।

सन् १४८५ मे यह कानून पास हुआ कि विदेशी शराब केवल इगलैंण्ड के जहाजो मे ही, जिनमे सब आग्ल कर्मचारी हों, आयात की जाएगी। सन् १५३२ और १५४० मे भी इसी प्रकार की व्यवस्था हुई परन्तु उन्हें सन् १५५६ मे रद्द कर दिया गया, तथापि आग्ल जहाजो को परोक्ष रूप से प्रोत्साहन दिया जाता रहा। सन् १५५६ के एक्ट के अनुसार इङ्गलैण्ड के जहाजो के अतिरिक्त अन्य जहाजो द्वारा लाये गये माल पर अधिक ऊँचे कर (duties) निर्धारित किये गये थे। सन् १५६३ मे सम्पूर्ण तटीय व्यापार (Coastal Trade) ब्रिटिश जहाजो के लिए सुरक्षित (reserve) कर दिया गया।

सत्रहवी शताब्दी मे उपनिवेशो तथा बागीचों (plantations) के विकास के साथ इगलैण्ड के जहाजी यातायात का नया युग प्रारम्भ हुआ। सन् १६५१ के नौवहन कानून (Navigation Act) मे जो नीति अपनाई गई वह निम्नलिखित तथ्यों से प्रकट है :—

(१) इगलैण्ड और उसके उपनिवेशो के बीच होने वाला व्यापार केवल इगलैण्ड अथवा उपनिवेशो के जहाजो मे ही हो सकता था।

(२) इन जहाजो के स्वामी, कप्तान तथा अधिकतर कर्मचारी आग्ल हों, या उपनिवेशो के हों, यह आवश्यक था।

(३) यह आवश्यक किया गया था कि आग्ल जहाजो द्वारा लाया गया माल (Cargo) इंगलैंण्ड लाया जायगा, किसी बीच के बन्दरगाह पर नही उतारा जाएगा।

(४) उपनिवेशो के लिए भी यह आवश्यक किया गया था कि वे आपस का व्यापार आग्ल जहाजो द्वारा ही करें।

(५) विदेशी जहाजो को व्यापार के कुछ सीमित क्षेत्रो मे ही आने की अनुमति थी।

इस एक्ट की कुछ व्यवस्थाएँ स्पेन के साथ युद्ध छिड़ जाने के कारण व्यवहार मे न आ सकी। सन् १६६० मे नया एक्ट बना। इसमे इंगलैण्ड के समुद्रो मे विदेशी जहाज पाये जाने पर सामान सहित जब्त किए जाने की व्यवस्था की गई। उपनिवेशो की कुछ उपजो (products) को परिगणित किया गया जिन्हें अन्य देशो को जहाजो द्वारा नही पहुँचाया जाता था। विदेशी

जहाजों द्वारा लाये गये माल पर सन् १६५१ के एक्ट की तरह उच्च कर (higher duties) चालू रखे गये।

सन् १६६३ और १६७२ में सन् १६६० के एक्ट में संशोधन किये गये जिनके द्वारा पहले की अपनाई गई जहाजी नीति को और भी दृढ़ कर दिया गया और परिगणित वस्तुओं में कुछ रद्दोबदल किये गये। उपनिवेशों में प्रतिनिधि शासक जहाजी नीति को क्रियान्वित करने का पूरा ध्यान रखते थे। उपनिवेशों में एडमिरेल्टी कोर्ट और कस्टम दफ्तर स्थापित किये गये।

उपर्युक्त एक्टों में अपनाई गई ब्रिटिश जहाजी नीति अपने उद्देश्यों में इस दृष्टि से सफल हुई कही जा सकती है कि इसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश जहाज दूर दूर तक माल ढोने लगे। ब्रिटेन महत्वपूर्ण वितरक देश बन गया और उसके विदेशी व्यापार में वृद्धि हुई। यह कहने में शायद अत्युक्ति न होगी कि बहुत कुछ नौ-वहन सम्बन्धी कानूनों के कारण ही ब्रिटेन संसार का श्रेष्ठ सामान वाहक, जहाज-निर्माता (ship builder) तथा प्रमुख व्यापारिक राष्ट्र बन गया।

सन् १८४५ के आसपास ये कानूनी उपाय पुराने (obsolete) पड़ गये थे क्योंकि अमेरिका आश्रित नहीं रहा था और अनेक उपनिवेशों के अपने निजी जहाज हो गये थे। अतएव सन् १८४६ में तटवर्तीय व्यापार सम्बन्धी वाक्यांश (clause) को छोडकर शेष अधिनियम को रद्द कर दिया गया। सन् १८५४ में जब अबाध व्यापार की नीति अपनाई जा रही थी तो तटवर्तीय व्यापार को भी खुला छोड़ दिया गया और कानून की पुस्तकों में से जहाजी सन्नियम के अन्तिम चिह्न भी लुप्त हो गये।[1]

सन् १८५४ के बाद के जहाजी विकासों तथा नीति सम्बन्धी परिवर्तनों का उल्लेख इसी अध्याय में पहले ही किया जा चुका है।

६. वायु यातायात (Civil Aviation)

ग्रेट ब्रिटेन की गणना उन देशों में की जाती है जिनमें वायु यातायात का विकास पहले पहल हुआ और डाक तथा यात्रियों के लिए नियमित हवाई यात्रा (regular service) आरम्भ की गई। ब्रिटेन में हवाई जहाज द्वारा डाक भेजने का काम सर्वप्रथम सन् १६११ में (सम्राट् जार्ज पंचम के सिंहासन

---

1. "The last trace of this great maritime code disappeared from the statute book."

समारोह के समय) हुआ। ब्रिटिश सिविल हवाई यातायात का उद्घाटन २५ अगस्त १९१९ को हुआ जब लन्दन (हैन्स्लो) से पेरिस (ली बूरगेट) के बीच एक कम्पनी एयरक्राफ्ट ट्रान्सपोर्ट एण्ड ट्रेविल लिमिटेड द्वारा यात्रियो के लिए दैनिक यात्रा (daily passenger service) की सुविधा प्रारम्भ हुई। सन् १९२३ तक हवाई यातायात की चार छोटी-छोटी कम्पनियाँ थीं। हवाई यातायात सहायता कमटी (Civil Air Transport Subsidies Committee 1923) ने उनके एकीकरण (merger) की सिफारिश की जिसका दृष्टिकोण यह था कि समुद्रपार हवाईमार्गों का विकास हो सके। अतः अप्रैल १९२४ म चारो छोटी कम्पनियों को मिलाकर इम्पीरियल एयरवेज लिमिटेड की स्थापना हुई जिसको दस वर्ष के लिए कुल दस लाख पौण्ड की सरकारी आर्थिक सहायता (ग्रान्ट) मिली। सचालक मण्डल (Board of Directors) म सरकार का प्रतिनिधित्व रखा गया। सन् १९२७ मे काहिरा और बसरा के मध्य एयर सर्विस चालू का गई और सन् १९२९ मे इगलैण्ड को भारतवर्ष से मिला दिया गया। सन् १९३१ म मध्य अफ्रीका के लिए हवाई यातायात प्रारम्भ किया गया। लन्दन और आस्ट्रेलिया के बीच मेल सर्विस (डाक) सन् १९३४ मे और पैसिजर सर्विस सन् १९३५ मे आरम्भ हुई।

सन् १९३७ के पश्चात् अटलांटिक महासागर के पार हवाई यातायात आरम्भ हुआ। सन् १९३९ मे एक विशेष अधिनियम (Act) द्वारा ब्रिटिश ओवरसीज एयरवेज कॉरपोरेशन (B. O. A. C) की स्थापना हुई और सन् १९४० म इम्पीरियल एयरवेज लिमिटेड तथा ब्रिटिश एयरवेज लिमिटेड का प्रबन्ध बी० ओ० ए० सी० ने ले लिया।

युद्धकाल म बी० ओ० ए० सी० ने युद्ध सम्बन्धी आवश्यकताओ की दिशा मे समुद्र पार हवाई सर्विसें चलाईं। युद्ध समाप्त होने के समय सन् १९३९ की अपेक्षा हवाई यातायात से दूने अधिक यात्री और तिगुने से अधिक माल ले जाया जाने लगा था। हवाई यातायात के विस्तार म बाधक बात यह थी कि हवाई जहाजो की कमी थी जिसकी पूर्ति मिलिट्री के वायुयानो और विदेशो से विमानो की खरीद करके की गई। बी० ओ० ए० सी० के अतिरिक्त दो अन्य निगमो (corporations) की स्थापना सन् १९४६ मे सिविल एवियेशन एक्ट द्वारा की गई : (१) ब्रिटिश यूरोपियन एयरवेज तथा (२) ब्रिटिश साउथ अमेरिकन एयरवेज (B. S. A. A)। सन् १९४९ मे बी० एस० ए० ए० को बी० ओ० ए० सी० मे मिला दिया गया।

ब्रिटिश हवाई यातायात के विकास और देखभाल का उत्तरदायित्व ट्रान्सपोर्ट एण्ड सिविल एवियेशन मन्त्रालय पर है। वायुयानों के उत्पादन तथा उसकी देखभाल का भार सप्लाई मन्त्रालय पर है।

प्रश्न

1. "The general results (of the growth of mechanical transport after 1870) were revolutionary." —Knowles

Briefly indicate these results and discuss the resulting changes in British foreign trade.

2. 'Canals, like water power, were a mere episode.' Discuss and point out the part played by them in England's economic development

8 How did England develop her mercantile marine in modern times ?

4. "The spirit of the Medieval Age favoured regulation." Explain this statement, and illustrate it with reference to the enactment of a long series of Navigation Acts from 1881 upto the middle of the 19th century

अध्याय ७

श्रम आन्दोलन

(Working Class Movements & Trade Unions)

[श्रम संघों का जन्म, प्रारम्भिक कठिनाइयां, आन्दोलन की प्रगति, संगठन और समामेलन, नए एक्ट-पंजीयन की व्यवस्था, बीसवीं शताब्दी मे, श्रम सघो के मुख्य कार्य तथा श्रमिको की दशाओं पर उनका प्रभाव, प्रश्न।]

ग्रेट ब्रिटेन के लगभग समस्त उद्योगो मे न्यूनाधिक सख्या मे श्रमिक व्यापारिक संघो (Trade Unions) मे सङ्गठित है। कुछ उद्योगो मे तो लगभग सभी श्रमिक श्रम सङ्घो के रूप मे सगठित पाये जाते है। ब्रिटेन मे श्रम आन्दोलनो का इतिहास दो सौ वर्ष से भी अधिक पुराना है। इस अध्याय मे श्रम सघ आन्दोलन का सक्षिप्त परिचय दिया गया है।

श्रम सघो का जन्म

नई औद्योगिक प्रणाली के विकास के साथ १८वी शताब्दी मे पूंजी और श्रम के बीच मतभेद उत्पन्न हुए जिन्होंने कालान्तर मे वर्ग सघर्ष का रूप ग्रहण कर लिया। मजदूर और मालिक (employer) के बीच निजो सम्पर्क समाप्त हो चुका था। दूसरी ओर, एक ही छत के नीचे काम करने तथा सम्पर्क की अनेक सुविधाओ के कारण मजदूरो मे परस्पर सम्बन्धो के अवसर बढे। मजदूरो मे वर्ग भावना जग रही थी। निम्न मजदूरियां, काम के अधिक घण्टे, जीवन निर्वाह की लागत मे वृद्धि इत्यादि के कारण मजदूरो को सगठित होने और आवाज उठाने के लिए बाध्य होना पडा। इस प्रकार श्रम सङ्घों (Trade Unions) का जन्म हुआ।

यह कहा जा सकता है कि श्रमिक सङ्घ औद्योगिक क्रान्ति की उपज थे। "कारखाना प्रणाली के कारण सङ्घ सम्भव हुए और कारखाने की दशाओ ने उसे आवश्यक कर दिया"[1] श्रमिको का शोषण हो रहा था और श्रमिको की

1. "The factory made the Union possible and the condition of the factory made it necessary."
—Shadwell : Industrial Efficiency.

शोचनीय दशा पराकाष्ठा पर पहुँच गई थी। काम की दशाएँ कारखाना-प्रणाली के पूर्व भी सम्भवतः बहुत अच्छी नहीं थी परन्तु औद्योगिक संगठन की नई प्रणाली में वर्गीय चेतना जाग उठी थी जिसे दबाने के प्रयत्न विफल हो गए।

प्रारम्भिक कठिनाइयाँ

प्रारम्भ में श्रमिक संघों को कॉमन लॉ (Common Law) के सिद्धान्तों के विरुद्ध माना गया। उन्हें षड्यंत्र (conspiracy) तथा व्यापार में बाधक (in-restraint of trade) कहकर उनका विरोध किया गया। मुख्य प्रारम्भिक कठिनाइयाँ निम्नलिखित थीं :—

(१) सन् १७९९ में गैरकानूनी संगठनों (unlawful combinations) को रोकने के लिए एक एक्ट पास हुआ जिसको सन् १८०१ में और कड़ा कर दिया। इस कानून के द्वारा मजदूरों के लिये काम के घंटों में कमी, मजदूरी में वृद्धि इत्यादि के लिये मिलकर समझौते करना, मजदूरों के मालिकों से प्रसंविदे करने में रुकावट डालना अथवा इन उद्देश्यों के लिए सभा इत्यादि करना अवैधानिक कर दिया गया।

(२) श्रमिक निर्धन थे अतः संघ का चन्दा देने में समर्थ नहीं थे जिसके कारण संघ कोष में संघ के कार्यों के लिए आवश्यक रकम प्राप्त नहीं हो पाती थी।

(३) आवागमन के साधनों के पर्याप्त विकास के अभाव में श्रमिकों के सङ्गठन का क्षेत्र सीमित रहा।

(४) सरकार और मिल-मालिकों की दमन-नीति का घातक प्रभाव पड़ा। मजदूरों और उनके नेताओं को कड़ी सजाएँ दी जाती थीं तथा कड़े कानून थे। सन् १८१९ में इस दिशा में छः एक्ट पास हुये थे।

(५) श्रमिकों में नेताओं की कमी थी।

(६) भाषाओं की तथा उद्देश्यों की विविधता के कारण श्रमिकों में पार्थक्य बना रहता था।

आन्दोलन की प्रगति

उपर्युक्त कठिनाइयों के पश्चात् भी श्रमिक संघ आन्दोलन जोर पकड़ता गया। मजदूरों के गुप्त संगठन होने लगे। कभी कभी हिंसापूर्ण हड़तालें हुईं। सन् १८२४ में एक एक्ट पास हुआ जिसके द्वारा हिंसात्मक तरीकों को कानून-विरुद्ध और दण्डनीय अपराध बताया गया परन्तु मजदूरी बढ़ाने, काम के

घंटो मे कमी कराने इत्यादि के उद्देश्य से किये गये मजदूरो के सङ्गठन कानून सम्मत (lawful) माने गये। सन् १८२५ मे मालिको (employers) ने इसका विरोध किया और उसे रद्द करा दिया तथापि काम की दशाओ के सम्बन्ध मे परस्पर सलाह-मशविरा करने के लिये श्रमिको के हित मे सङ्गठनो को न्याय सम्मत माना गया। परिणामस्वरूप, श्रमिक सङ्घो की सख्या मे वृद्धि होने लगी। हडतालें भी अधिक होने लगी, परन्तु बहुधा उनसे श्रमिको को हानि हुई।

सगठन और समामेलन (Consolidation and Amalgamation)

इस अवस्था मे सङ्घो को सगठित करने के लिये आन्दोलन हुआ। सन् १८२६ मे सूत कातने वालो का एक राष्ट्रीय सङ्घ सगठित किया गया। इसी वर्ष इमारतो का काम करने वालो (building workers) का सगठन स्थापित हुआ। सन् १८३० मे लगभग डेढ़ सौ श्रम सघो को मिला कर श्रमिको की रक्षा के लिए 'नेशनल एसोसिएशन" बनाया गया। सन् १८३४ मे जनरल ट्रेड्स यूनियन बनी जिसका नाम बाद मे ग्राण्ड कन्सोलिडेटेड नेशनल ट्रेड्स यूनियन (Grand Consolidated National Trades Union) पड़ा। इसके सदस्यो की संख्या पाँच लाख से अधिक थी। भीतरी झगड़ो के कारण यह संगठन शैशवकाल मे ही समाप्त हो गया।

आग्ल श्रम-सङ्घो के इतिहास मे सन् १८४५ के बाद का समय महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। कई राष्ट्रीय सगठन बने और प्रमुख औद्योगिक केन्द्रो मे व्यापारिक कौंसिलें (Trade Councils) बनाई गई। (नगर के विभिन्न सङ्घो की स्थानीय शाखाओ का प्रतिनिधित्व करने वाली सयुक्त कमेटी ट्रेड कौसिल कहलाती थी।) प्रथम ट्रेड कौसिल सन् १८४८ मे लिवरपूल मे स्थापित हुई थी। तदुपरान्त सभी औद्योगिक नगरो मे कौंसिलो की स्थापना हुई जिनके प्रतिनिधियो की वार्षिक राष्ट्रीय सभाएँ होने लगी।

नये एक्ट—पजीयन की व्यवस्था

सन् १८६५-६६ में हडतालें और तालाबन्दियाँ अधिक हुई जिनमें मशीनो तथा सम्पत्ति को क्षति पहुँची। श्रम सङ्घो के पदाधिकारियो को इनका कारण समझा गया। सन् १८६७ में एक शाही आयोग नियुक्त किया गया जिसकी सिफारिशो पर नए एक्ट पास किये गये जिनमें दशाएँ सरल कर दी गई। श्रम

सङ्घ की परिभाषा अधिक व्यापक कर दी गई जिसके अनुसार कोई भी मिलन चाहे वह अस्थायी हो या स्थायी, और जिसका उद्देश्य मजदूरों और मालिकों, अथवा मजदूरों और मजदूरों, अथवा मालिकों और मालिकों के बीच में सम्बन्धों का नियमन करना हो, अथवा किसी धन्धे या व्यापार के संचालन के विषय में प्रतिबन्धक दशाएँ आरोपित करना हो, ट्रेड यूनियन कहलायेगा।[1]

श्रम सङ्घों के पंजीयन (रजिस्ट्रेशन) के सम्बन्ध में व्यवस्था की गई कि सङ्घ के कोई सात सदस्य उसके नियमों (rules) पर हस्ताक्षर करके उसका पंजीयन करा सकते हैं। व्यापार में बाधक होने के आधार पर अब श्रम सङ्घों को अवैध नहीं समझा जा सकता था। यह भी व्यवस्था हो गई कि षड्यन्त्र (conspiracy) का दोष लगाकर किसी भी व्यक्ति को अपराधी घोषित नहीं किया जा सकता यदि वही काम उसके अकेले के करने पर अपराध न समझा जाय। श्रम सङ्घों को जायदाद रखने तथा कोष संचित करने के अधिकार भी दिये गये।

सन् १८७१ से १९०० तक

कानूनी प्रतिबन्धों के हट जाने से सन् १८७१ के उपरान्त श्रम संघों का काफी विकास हुआ। परन्तु सन् १८७५ से १८८० तक के वर्षों में व्यावसायिक मन्दी (अवसाद काल) के कारण और हड़तालों में असफलताओं के कारण श्रम संघ आन्दोलन को धक्का पहुँचा। एक दशाब्दी (दस वर्ष) पश्चात् फिर विकास आरम्भ हुआ। सन् १८९९ में श्रम संघों का एक फैडरेशन (Federation) स्थापित हुआ जो श्रमिकों के सामान्य हितों का ध्यान रखे। श्रम संघों के गठन (consolidation) के कारण उनकी संख्या तो कुछ घटी परन्तु सदस्यता में वृद्धि हुई।

बीसवीं शताब्दी में

श्रम संघ आन्दोलन को सन् १९०१ में टैफ वेल अभियोग (Taff Vale Case) से बहुत आघात पहुँचा। मामला यह था कि वेल्स की टैफ वेल रेलवे कम्पनी के कर्मचारियों ने हड़ताल की और रेलवे कम्पनी की सम्पत्ति को भारी हानि पहुँचाई। कम्पनी ने रेलवे सरवैण्ट्स की समामेलनकृत सोसाइटी (Amalgamated Society of Railway Servants) पर मुकद्दमा चलाया

1. "Any combination, whether temporary or permanent, for regulating the relations between workmen and masters, or between masters and masters, or for imposing restrictive conditions on the conduct of any trade or business . . . ."

कि इस सोसाइटी ने ही कम्पनी के कर्मचारियों को भड़काकर कम्पनी की सम्पत्ति को हानि पहुँचाई। सन् १८७१ और १८७६ में पास एक्टों के अनुसार, जैसा कि सोसाइटी ने अपने बचाव के पक्ष में (in defence) कहा, संघ अपने सदस्यों के कार्यों के लिए जिम्मेदार नहीं हो सकता और संघ के कोष (funds) मुआवजा देने के लिए इस्तेमाल नहीं किये जा सकते। परन्तु अदालत ने निर्णय दिया कि सोसाइटी को कम्पनी की हानि के लिए तेईस हजार पौण्ड हर्जाने के रूप में देने होंगे और कहा कि संघ को उसके सदस्यों के कार्यों के लिए उत्तरदायी ठहराना अनुचित नहीं है। इस निर्णय के विरुद्ध सोसाइटी ने अपील की परन्तु ऊँची अदालतों ने भी फैसला वही रखा। यह श्रम-आन्दोलन के लिए दैवी आपत्ति प्रतीत हुई क्योंकि यह समझा जाता था कि श्रम संघ मुकद्दमों के प्रभाव से दूर थे।

एक आन्दोलन द्वारा यह प्रयत्न किया गया कि कानून द्वारा श्रम संघों को मुकद्मेबाजी के प्रभाव से बचाया जा सके। परिणामस्वरूप सन् १९०२ में एक एक्ट (Trade Unions and Trade Disputes Act) पास हुआ जिसके द्वारा पूर्व सम्मत कार्यों को तथा शान्तिपूर्ण पिकेटिंग इत्यादि तरीकों को न्यायोचित माना और संघ द्वारा या सघ की ओर से किये गये हिंसापूर्ण कार्यों पर भी अदालतों कार्यवाही करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

ओस्बोर्न अभियोग—श्रम संघों के इतिहास में एक और उल्लेखनीय घटना सन् १९०९ में हुई। सन १९०९ के पूर्व श्रम संघों में यह प्रचलन था कि वे संघ के कोषों में से पार्लियामेण्ट के श्रम सदस्यों का समर्थन करने के लिए भी व्यय किया करते थे तथा इसके लिए संघ के सदस्यों से चन्दा इकट्ठा किया जाता था। रेलवे सर्वेण्ट्स की समामेलनकृत सोसाइटी (Amalgamated Society of Railway Servants) की वाल्थमस्टन (Walthumston) शाखा के सेक्रेटरी वाल्टर वही ओस्बोर्न (Mr. Walter V. Osborne) ने इस प्रथा का विरोध करते हुए एक मुकद्दमा चलाया कि इस प्रथा को नियमों से परे (ultra vires) घोषित कर दिया जाय। लार्डस की सभा (House of Lords) का अन्तिम निर्णय ओस्बोर्न के पक्ष में हुआ जिसके अनुसार यह तय हुआ कि "कोई भी व्यापारिक संगठन या श्रम संघ कानूनी तौर पर अपने सदस्यों से ऐसे कोषों के लिए जिसका उपयोग संसत्सदस्यों (M. P.S) के लिए किया जाय चन्दा वसूल नहीं कर सकता।" यह निर्णय श्रम संघों की राजनीतिक क्रियाओं के लिए बाधक था अतः इसको उलटने के लिए आन्दोलन छेड़ा गया।

सन् १९१३ मे एक श्रम मघ कानून (Trade Uunion Act) पास हुआ जिसमें ट्रेड यूनियन की परिभाषा मे उन समस्त मिलनों को सम्मिलित किया गया जिनके नियमो के अन्तर्गत उनके मुख्य उद्देश्य कानून सम्मत हो।[1] इस प्रकार परिभाषा काफी व्यापक कर दी गई। उद्देश्यो के सम्बन्ध मे स्पष्टीकरण करते हुए एक्ट मे कहा गया कि वे व्यापार या धंधे (Trade) के नियमन तथा सदस्यो के लाभ के लिए होने चाहिएँ। कोषो के उपयोग के सम्बन्ध मे कहा गया कि श्रम सघ (Trade Union) अपने कोषो (funds) का उपयोग समस्त न्यायपूर्ण (lawful) उद्देश्यो के लिए कर सकता है परन्तु राजनीतिक कार्यों के लिए यदि उनका उपयोग किया जाए तो दो शर्तें पूरी होनी चाहिएँ :

(१) गुप्त मतदान (secret ballot) द्वारा यह प्रस्ताव पास हो जाना चाहिए कि कोषो का उपयोग राजनीतिक उद्देश्यो के लिए होगा,

(२) ऐसे कोषो मे चन्दा देना सदस्यो के लिए अनिवार्य नही होना चाहिए। इस एक्ट मे यह भी उल्लेख किया गया कि जो सदस्य राजनीतिक कोष मे कुछ न देने का विचार करें वे संघ को इसके सम्बन्ध मे सूचित कर दें।

सन् १९२७ मे पास एक्ट के द्वारा राजनीतिक कोष मे चन्दा देने वालों के लिए यह अनिवार्य कर दिया गया कि, चन्दा न देने वालों के बजाय वे चन्दा देने की अपनी इच्छा को सूचना दे। सन् १९१३ और १९२७ के एक्टो मे इस विषय मे अन्तर यह था कि जबकि पहला एक्ट राजनीतिक कोष मे चन्दा देने की क्रिया को सामान्य मानता था, सन् १९२७ के एक्ट में उसे असामान्य (exceptional) समझा गया। सन् १९२७ के एक्ट की व्यवस्था के अनुसार बहुत से सदस्य चन्दा देने से बच गये।

ब्रिटेन मे श्रम-सघो (Trade Unions) के विकास मे समय-समय पर अनेक बाधाएँ आने पर भी वहाँ के श्रम सघ आन्दोलन का इतिहास प्रगति का इतिहास कहा जा सकता है। सन् १८८९ मे ब्रिटेन मे श्रम सघो की कुल सदस्य संख्या १६,८८,५३१ थी, उन्नीसवी शताब्दी के अन्त मे २३,४७,४६१ हो गई तथा सन् १९५७ के अन्त मे ९७ लाख के लगभग हो गई।

सन् १९५७ के अन्त मे ग्रेट ब्रिटेन मे १७ बड़े संघ थे जिनमे कुल के लगभग दो-तिहाई सदस्य थे। इन १७ संघो के अतिरिक्त ६४७ श्रम संघ और

1. "Any combination, whether temporary or permanent, the principal objects of which are, under its constitution, statutory objects . . . ."

थे। लगभग ८० श्रम संघ (ट्रेड यूनियन), जिनमे बडे संघ सम्मिलित हैं, ऐसे हैं जिनके कोष लेबर पार्टी (Labour Party) का समर्थन (support) करने के लिए उपयोग किये जाते हैं।

इङ्गलैण्ड और वेल्स में ही ५०० से अधिक ट्रेड कौंसिलें (नगर के विभिन्न संघों की स्थानीय शाखाओं का प्रतिनिधित्व करने वाली संयुक्त कमेटियाँ) हैं जो २२ फैडरेशनो (federations) मे समूहीकृत है।

श्रम संघो के मुख्य कार्य तथा श्रमिकों की दशाओं पर उनका प्रभाव

श्रमिकों के लिए श्रम संघ आन्दोलन बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है। ब्रिटेन मे श्रम का राजनीतिक दल की भाँति विकसित होना श्रम संघ आन्दोलन के अभाव मे कदाचित् सम्भव ही नही था। श्रम संघो के प्रभाव के कारण फैक्टरी प्रणाली की अनेक बुराइयो का अन्त हो गया। सर्वत्र आठ घंटे के काम का दिन, सामाजिक बीमा की सुविधाएँ, बालको से काम लेने की बुराई का अन्त इत्यादि सफलताओं का श्रेय श्रम संघ आन्दोलन को प्राप्त है। उनके आन्दोलनों के कारण श्रमिको की मजदूरियो मे वृद्धि हुई है तथा उन्हें कई प्रकार के भत्ते मिलने लगे है। श्रमिको के कल्याण के अनेक कायो मे प्रगति हुई है। इनके अतिरिक्त, ब्रिटेन मे श्रम संघ आन्दोलन के द्वारा श्रमिको की सामाजिक दशाओं में सुधार तथा शिक्षा का विकास हुआ है। संघो की ओर से ब्रिटेन मे सदस्यो को उत्पादन, व्यवस्था इत्यादि के सम्बन्ध मे तथा टैकनीकल शिक्षा प्रदान करने के लिए स्कूल खोले गये है। समाजवादी प्रवृत्तियो के विकास के साथ श्रम संघ आन्दोलन से भविष्य को ऊँची आशाएँ हैं।

प्रश्न

1. Trace the growth of the Trade Union Movement in England discussing its main activities How has it influenced the conditions of labour ?

2 Describe the course of the Trade Union Movement in England in the nineteenth century, and state the changes in its objects and methods in the twentieth century.

3. Give a short historical sketch of the the working class movement in England during the nineteenth century.

---

1. Britain : An Official Handbook, 1959, p. 390.

अध्याय ८

सामाजिक सुरक्षा का विकास

(Growth of Social Security)

[निर्धन सहायतार्थ कानून, सामाजिक बीमा की आवश्यक्ता, सामाजिक बीमा का विकास, बीवरिज योजना, ब्रिटेन की वर्तमान सामाजिक बीमा व्यवस्था, पारिवारिक भत्ते, राष्ट्रीय बीमा, औद्योगिक क्षति बीमा योजना, राष्ट्रीय सहायता तथा कल्याण सेवाएँ, प्रश्न ।]

समाज में मनुष्य बीमारी, दुर्घटना, बेरोजगारी और मृत्यु के संकटों से ग्रस्त होता रहता है । पिछली शताब्दी तक ब्रिटेन में ही नहीं, सभी देशों में सामान्यतया व्यक्तियों का यह विश्वास था कि मनुष्य अपने सकटों का कारण स्वयं है—अपने आलस्य, स्वभाव, कर्म अथवा भाग्य के फलस्वरूप उसे गरीबी तथा अन्य प्रकार की विपत्तियों का सामना करना पड़ता है । सामाजिक बीमा सेवाओं (social insurance) अथवा सामाजिक सुरक्षा का विकास बदलते हुए सामाजिक दृष्टिकोण का परिचायक है । औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व सामाजिक सगठन कुछ इस प्रकार का था कि उस समय आधुनिक प्रकार के सामाजिक सुरक्षा के उपायों की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई थी, परन्तु कालान्तर में आर्थिक सगठन में होने वाले परिवर्तनों के साथ-साथ सामाजिक बीमा सेवाओं की व्यवस्था अत्यावश्यक हो गई ।

सामाजिक सुरक्षा या सामाजिक बीमा का अर्थ उस प्रणाली से है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति के लिए आपदा (जैसे बीमारी, बेरोजगारी, संरक्षक की मृत्यु) के समय और वृद्धावस्था में ऐसी व्यवस्था रहे कि वह न्यूनतम जीवन स्तर से नीचे न गिरने पाये ।

ब्रिटेन में सामाजिक सुरक्षा की दिशा में ढीले रूप में प्रयत्न बहुत पहले ही प्रारम्भ हुए थे और सोलहवीं शताब्दी में निर्धन सहायतार्थ कानून (Poor Law) द्वारा गरीब, वृद्ध, असहाय, अनाथ और विधवा इत्यादि के लिए सहायता की व्यवस्था की गई थी ।

निर्धन सहायतार्थ कानून (Poor Law)

औद्योगिक प्रणालियों (industrial systems) मे परिवर्तन होने पर कुछ जनसख्या को भारी हानि उठानी पड़ी। निर्धनता और दुर्भाग्य से पीडित व्यक्तियो को सहायता पहुँचाने की आवश्यकता सरकारी उत्तरदायित्व के रूप में ससार मे सर्वप्रथम ब्रिटेन मे अनुभव की गई।

प्रारम्भ मे निर्धनो को सहायता या तो व्यक्ति निजी रूप से देते थे अथवा गिरजाघरो (churches) मे दान दिया जाता था। सोलहवी शताब्दी मे कृषि प्रणाली मे परिवर्तन होने से निर्धनो की संख्या बहुत बढ़ गई और गिरजाघर इतनी शक्तिशाली सस्था नही रही कि स्थिति संभाली जा सकती। देश मे शान्ति और अनुशासन बनाये रखने के लिए सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता प्रतीत हुई।

सन् १५३१ मे एक एक्ट पास हुआ जिसमे अपाहिज निर्धनो (disabled poor) और आलसियो एवं बेकारो (able-bodied unemployed) मे अन्तर बताया गया। पहले वर्ग के निर्धनो को जस्टिस ऑव पीस (Justices of Peace) के द्वारा भीख माँगने के लिए अनुज्ञापत्र (Licences) दिये जाने की व्यवस्था इस अधिनियम के अन्तर्गत की गई। दूसरे वर्ग के भिखारियो को दण्ड देने की व्यवस्था की गई।

सन् १५३६ मे एक एक्ट द्वारा भिक्षा माँगना और देना दोनो वर्जित कर दिये गये। इस अधिनियम द्वारा प्रत्येक क्षेत्र (Parish) मे ऐसे कोषों की व्यवस्था हुई जिनमे लोग स्वेच्छा से धन राशि प्रदान करें और जिनसे अपाहिज निर्धनो को सहायता दी जाये। रोजगार पाने के इच्छुक सशक्त व्यक्तियो को काम देने, निर्धन बालकों को शिक्षा देने तथा आलसियो को सजा देने की व्यवस्था की गई।[1] सन १५३६ का अधिनियम सन् १५३१ के अधिनियम की

---

१. सन् १५४७ मे एडवर्ड षष्ठ के शासन काल मे शरीर से समर्थ भिक्षुओ को एक अधिनियम द्वारा कठोर दण्ड देने की व्यवस्था की गई जिसके अनुसार स्वेच्छाचारियो को चिह्नित किया जाता और उन्हें बन्दी करने वालो के यहाँ दास के रूप मे दो वर्ष तक काम करने के लिए बाध्य किया जाता था, यदि वह भागने का प्रयत्न करे तो मृत्यु दण्ड तक देने की व्यवस्था थी। परन्तु यह अधिनियम शीघ्र ही रद्द कर दिया गया।

अपेक्षा इस दृष्टि से उत्तम था, जबकि सन् १५३१ के एक्ट की मान्यता यह थी कि प्रत्येक समर्थ भिक्षुक आलसी था, सन् १५३६ मे रोजगार पाने के इच्छुकों को काम देने की व्यवस्था की गई। इसके अतिरिक्त कोष मे दिये गये दानो से अपाहिजो की सहायता इस दृष्टि से अच्छी थी कि उनमे हीन-भावना उत्पन्न न हो परन्तु स्वेच्छा दान की विधि चल न सकी।

इसी बीच निर्धनो की समस्या का हल कुछ नगरो मे नये ढंग से निकालने का यत्न किया गया। सन् १५४७ मे लन्दन में एक योजना स्वीकार की गई कि निर्धनो के सहायतार्थ धन राशि एकत्रित करने के लिए अनिवार्य कर लगाये जाये। अन्य नगरो मे भी इस विधि का अनुकरण किया गया। अन्त मे सन्१५७२ मे सरकार ने भी इसे मान लिया और अनिवार्य कर आरोपित करने के आदेश दिये गये।

सन् १५७६ मे न्यायाधीशों (Justices of Peace) को अधिकार दिया गया कि वे आवारा (स्वेच्छाचारियो) तथा बेरोजगारो की सहायतार्थ तथा उनको सुधारने के लिए उन्हें सुधार-गृहो (work houses) मे काम दें। जो स्वेच्छाचारी उन स्थानो मे रहकर काम करने को राजी न होते उन्हें पीटकर काम करने के लिए विवश किया जाता था।

सन् १६०१ मे एक और एक्ट पास हुआ जिसमे निधनो की सहायता के लिए एक विस्तृत योजना रखी जिसके अनुसार निर्धन कानून (Poor Law) स्थानीय प्रशासन अधिकारी शान्ति न्यायाधीश (Justices of Peace) निश्चित रहे और प्रशासन की इकाई गिरजाघर क्षेत्र (Parish) थे। इस क्षेत्र से अनिवार्य रूप से कर लगाकर जो राशि इकट्ठी होती उसे उस क्षेत्र का कोष समझा जाता था। निर्धनो के साथ अलग-अलग रूप मे यथोचित व्यवहार किया जाने लगा। आवारा स्वेच्छाचारियों को या तो जेल भेज दिया जाता था या सुधार गृहों (work houses) मे, वृद्धो को उन्हीं के घर पर सहायता प्रदान की जाती थी। काम करने की इच्छा रहने पर भी जो बेरोजगार थे उन्हें रोजगार देने का प्रयत्न किया जाता था। निर्धन बच्चो के लिए भोजन की व्यवस्था थी तथा किसी दस्तकारी की शिक्षा दी जाती थी।

सन १६६२ मे शान्ति अधिनियम का उद्देश्य यह था कि निर्धन क्षेत्रों के अकिंचनो का धनी क्षेत्रों मे जमघट न हो जाये। न्यायाधीशो को अधिकार दिया गया कि वे अपने क्षेत्र (parish) म बाहर से आने वाले दरिद्रो को, यदि आवश्यक हो, चालीस दिन की अवधि मे निकाल दें। इस एक्ट का

कुप्रभाव यह पडा कि श्रमिको की गतिशीलता रुक गई। इस प्रकार अधिक मांग के क्षेत्रो मे जाकर मजदूरो के लिए अधिक वेतन पाना सम्भव न रहा। दूसरी ओर कई स्थानो मे श्रम की पर्याप्त पूर्ति न होने से व्यवस्था के विकास मे बाधा हुई। १८ वी शताब्दी मे निर्धनो की सख्या बढी।

सन् १७२२ के अधिनियम के द्वारा यह व्यवस्था हुई कि अकिंचनो को सहायता केवल कर्मशालाओ (work houses) मे ही दी जावे। गिरजाघर क्षेत्रो (Parishes) को ऐसी शालाएँ बनवाने का अधिकार दिया गया जिनमे दरिद्रो को रखा जा सके और काम दिया जा सके और जो निर्धन उस शाला (house मे आना और ठहरना पसन्द न करे उसे कोई सहायता न दी जाय। केन्द्रीय नियन्त्रण के अभाव में इस व्यवस्था मे अनेक दोष देखने मे आये। अलग अलग स्थानो मे निर्धनो को सहायता देने के तरीको और सहायता की किस्म मे भिन्नता थी। कई बार ऐसा होता था कि कोई व्यक्ति यह दायित्व ले लेता था कि वह कुछ निर्धनो को खाना देगा तो इसके बदले मे वह उनसे काम लेता था। कभी उनसे कताई (spinning) का काम कराया जाता तो कभी उन्हे समुद्र पर भेज दिया जाता था। निर्धनो को मिलने वाली सहायता अपर्याप्त थी और उनसे काम अधिक लिया जाता था। उनके साथ दुर्व्यवहार होता था। उनको मजदूरी कुछ नही दी जाती थी। कहा यह जाता था कि कि उन्हे सहायता दी जा रही है जबकि उनसे काम अधिक लिया जाता था। उनकी साधारण आवश्यकताएँ भी पूरी न होने और उसी दशा मे अधिक काम करने मे कार्यक्षमता का अभाव (inefficiency) स्वाभाविक था।

सन् १७८२ और सन १७९५ मे कुछ सशोधन किये गये। सन १८३४ में एक निर्धन कानून आयोग (Poor Law Commission) नियुक्त किया गया। आयोग ने अपने प्रतिवेदन मे सिफारिश की कि निर्धन कानून का प्रशासन केन्द्रीय नियन्त्रण मे हो। इसके अनुसार स्थानीय अधिकारी रखे गए जिन्हें सरक्षक मण्डल (Board of Guardians) कहा जाता था। घूमने वाले निरीक्षक (travelling inspectors) भी रखे गये जो लन्दन मे रहने वाले आयुक्तो (कमिश्नरो) के प्रति उत्तरदायी होते थे। ये कमिश्नर ही यह निश्चित करने लगे कि निर्धनो को सहायता किस रूप मे और कितनी दी जाय। प्रारम्भ मे प्रणाली का विरोध किया गया परन्तु निर्धनो की दशा पर इसका प्रभाव अच्छा पडा। इस प्रणाली की मुख्य विशेषताएँ ये थी : (१) सरक्षको का स्थानीय क्षेत्र से चुनाव होता था और वे मनमानी नही कर सकते थे,

अधिकाश कार्यों के लिए उन्हें कमिश्नरो की अनुमति लेनी पड़ती थी, (२) अस्वस्थ व्यक्तियो अथवा साठ वर्ष से अधिक आयु के व्यक्तियो को छोड़कर अन्य सभी अकिंचनों को सहायता केवल कर्मशालाओ (work houses) मे ही दी जाती थी, बाहर नही। शरीर से स्वस्थ व्यक्तियों को ये शालाएँ जेल के समान लगती थी, (३) पूरे देश म एक सी प्रणाली लागू की गई, (४) निरीक्षण और अकेक्षण (auditing) का व्यवस्था की गई।

सन् १८४७ म एक यह सशोधन हुआ कि निधन कानून आयाग (Poor Law Commission) के स्थान पर एक मण्डल (Poor Law Board) निधन कानून का नियन्त्रण करन लगा। मण्डल का अध्यक्ष पार्लियामण्ट का कोई अवकाश प्राप्त सदस्य (sitting member) हो हा सकता था।

निर्धन कानून की आलोचना कई दृष्टियों न की जा रही थी, अत. सन् १९०५ म उसकी जाच करने के लिए एक शाही आयाग की नियुक्ति हुई। आयोग न निर्धनता के कारणो पर प्रकाश डाला ओर निर्धन-कानून (Poor Law) की कार्य-प्रणाली की त्रुटियाँ बताते हुए महत्वपूर्ण सिफारिशें का। आयोग को सिफारिशो के अनुसार वृद्धा और विधवाओ क लिए पदान इत्यादि की सुविधाएँ प्रदान की गई। नय सिरे से वर्गीकरण करके अकिंचना के साथ उचित व्यवहार करने के प्रयत्न किय गये। बकारी और बीमारी से सुरक्षा प्रदान करन क लिए सामाजिक बीमा का विकास हुआ तथा राजगार क दफ्तर (Labour Exchanges) खाल गय। सन् १९२९ म स्थानीय प्रशासन अधिनियम पारित हुआ और निधन कानून का प्रशासन जिला-परिषदा इत्यादि (County Councils and County Borough Councils) का सौंपा गया। सन् १९४८ के राष्ट्रीय सहायता अधिनियम (National Assistance Act) द्वारा व्यापक सुधार हुए है। यह उल्लखनीय है कि गरीबी की समस्या मूल रूप म दोषपूर्ण सामाजिक संगठन प्रणाली का परिणाम है।

सामाजिक बीमा की आवश्यकता
(Need of Social Insurance)

ग्रेट ब्रिटेन मे औद्योगिक तथा वाणिज्य क्रान्तिया क साथ-साथ अनक समस्याएँ गम्भीर रूप मे प्रकट हुई। श्रमिकों का शोषण होता था—मजदूरियाँ कम दी जाती थी और काम के घटे अधिक थे। उन्हें गन्दी जगहो म काम करना पड़ता था। वे बीमार पड़ते तो उनकी चिकित्सा का प्रबन्ध भी नही होता और बीमारी के दिनों की मजदूरी भी उन्हें नही दी जाती थी। कभी कभी मशीनो से

दुर्घटनाएँ हो जाती थी। मजदूरो को चाहे जब निकाल दिया जाता था। बीमारी, मृत्यु और बेरोजगारी से सुरक्षा का कोई उपाय नही था। महिला श्रमिकों के लिए प्रसूति और शिशु कल्याण की कोई व्यवस्था नही थी। महिलाओ और बच्चो को भी काम पर रखा जाता था और उनको मजदूरियाँ बहुत कम दी जाती थी। श्रमिक यंत्रवत् काम मे जुटे रहते थे और अत्याचार की चक्की अनवरत चल रही थी।

यह बात सरलता मे समझी जा सकती है कि कम मजदूरी पाकर श्रमिक मे यह सामर्थ्य नही थी कि वह आपत्ति काल के लिए कुछ सग्रह या बचत कर पाता। अतएव सामाजिक बीमा की आवश्यकता अनुभव की गई।

सामाजिक बीमा वस्तुतः राजकोय हस्तक्षेप का एक उदाहरण है। सामाजिक बीमा वह तरीका है जिसके द्वारा सामूहिक रूप मे श्रमिक विभिन्न जोखिमो से अपनी रक्षा कर सकें। यह तरीका इस तथ्य पर आधारित है कि यद्यपि जीवन की जोखिमे किसी एक व्यक्ति के लिए अत्यन्त भयङ्कर हो सकती हैं परन्तु किसी एक समूह मे वे प्रायः सम रहती हैं और उनका अनुमान लगाया जा सकता है। सामूहिक रूप से उन जोखिमो को सहना कठिन भी नही होता।

प्रारम्भ मे सामाजिक बीमा का कार्य ऐच्छिक (voluntary) था। उदाहरण के लिये ब्रिटेन मे मैत्री समितियो (friendly societies) का उदय १८ वी शताब्दी म हुआ था। कालान्तर मे सरकारी हस्तक्षेप प्रारम्भ हुआ। सरकार की रुचि इस दिशा मे उचित इसलिए भी समझा जा सकती है कि जोखिमो से श्रमिक की सुरक्षा होने से उसकी कार्यक्षमता और उत्पादन-शक्ति बढ जाती है और इस प्रकार राष्ट्रीय आय मे भी वृद्धि होती है। यो सामाजिक सुरक्षा समाज का दायित्व है। अब यह समझा जाने लगा है कि जन्म से मृत्युपर्यन्त (from the cradle to the grave) प्रत्येक नागरिक की सुरक्षा का उत्तरदयित्व राज्य पर होना चाहिए।

सामाजिक बीमा का विकास
(Growth of Social Insurance)

सामाजिक बीमा का श्रीगणेश सन् १८८०-८९ काल में जर्मनी मे बिस्मार्क ने किया था। इससे पूर्व अन्य देशो मे दुर्घटनाओ और बीमारी इत्यादि से सुरक्षा प्रदान करने के लिए सामाजिक बीमा की सुविधाएँ थी तो सही परन्तु वे अनिवार्य नही थी, ऐच्छिक थी। इसके अतिरिक्त ये सुविधाएँ देने वाली

संस्थाएं प्रायः सार्वजनिक नहीं थीं और उनमे समानता या नियमितता नहीं थी।

ग्रेट ब्रिटेन मे सार्वजनिक कोष मे से सहायता देने के एकमात्र उपाय निर्धन कानून (Poor Law) से प्रथम अभियान सन् १९०८ मे वृद्धावस्था पेंशनें[1] देना प्रारम्भ करने के रूप में हुआ।

श्रमिक क्षति-पूर्ति अधिनियम (Workmen's Compensation Act): सन् १८९७ मे पास हुआ[2] जिसमें सन् १९०६ मे संशोधन किये गये और सन् १९४८ में अनेक संशोधनों के पश्चात् The Industrial Injuries Insurance Scheme के रूप म लागू किया गया। वस्तुत सन् १८९७ के क्षतिपूर्ति अधिनियम को राज्य प्रशासित बीमा योजना नहीं कहा जा सकता, जिसके अन्तर्गत काम के दौरान मे दुर्घटनाएं हो जाने के लिए मालिकों (employers) द्वारा क्षतिपूर्ति किये जाने की व्यवस्था की गई थी।

सन् १९१२ मे **राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना** (**National Health Insurance scheme**) लागू हुई और इसी के साथ **अंशदान सिद्धान्त** (contributory principle) प्रारम्भ हुआ, जिस पर बाद के सब उपाय (measures) आधारित किये गये हैं। थोड़ा सा साप्ताहिक चन्दा (contribution) लेकर राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना के अन्तर्गत बीमारी के समय नि:शुल्क डाक्टरी चिकित्सा और कुछ नकद भुगतान (cash payment) की व्यवस्था की गई। आरम्भ मे यह योजना कम मजदूरी पाने वाले कुछ श्रमिकों के लिए ही लागू की गई थी।

सन् १९१२ ई० मे **बेकारी बीमा (unemployment insurance)** भी चालू किया गया। इसका क्षेत्र सीमित था। सन् १९२० मे उसका विस्तार करके रोजगार प्राप्त व्यक्तियों के अधिकांश भाग को बेकारी बीमा की सुविधा प्रदान की गई। प्रथम और द्वितीय विश्व युद्धों के मध्यकाल (inter-war

1. Non-contributory, i.e., for which no contribution was required to be paid

२. श्रमिक क्षतिपूर्ति की दिशा मे शुरुआत सन् १८८० मे हुई समझी जा सकती है जब Employers' Liabilities Act पास हुआ जिसमें यह व्यवस्था की गई थी कि मालिक (employer) द्वारा गलती होने के कारण मजदूरों के घायल होने पर श्रमिकों की क्षतिपूर्ति के लिए मालिक उत्तरदायी होगा। इस अधिनियम का लाभ कुछ ही व्यवसायों तक सीमित था।

period) मे व्यापक बेरोजगारी की दृष्टि से बेकारी बीमा की व्यवस्था अत्यन्त महत्वपूर्ण थी ।[1]

सन् १९२६ मे अशदान पद्धति पर (अर्थात् जिसके लिए पहले चन्दे लिये जायें) वृद्धो, विधवाओ तथा अनाथो के लिए पेंशनें प्रारम्भ की गई ।

सन् १९३८ मे ग्रेट ब्रिटेन उन कतिपय देशो मे एक था जिनमे सामाजिक सेवाएँ सर्वोत्तम थी परन्तु उनमे सामजस्य का अभाव था । इसका कारण यह था कि उनकी शुरुआत अधकचरे रूप मे हुई थी । उनका क्षेत्र व्यापक नही था ।

बीवरिज योजना (Beveridge Plan)

द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रभाव के अन्तर्गत, जब युद्धोत्तर निर्माण के हेतु योजनाएँ बनाइ जा रही थी, तत्कालीन मिली-जुली ब्रिटिश सरकार (National Coalition Government) ने देश की सामाजिक बीमा प्रणाली की जाँच करने के लिए सर विलियम बीवरिज[2] को आमन्त्रित किया गया । बीवरिज रिपोर्ट सन् १९४२ मे प्रकाशित हुई । सामाजिक सुरक्षा के विकास के इतिहास मे इस रिपोर्ट का महत्व अत्यधिक है । इस सरकारी प्रकाशन के द्वारा सामाजिक सेवाओ मे न केवल सामंजस्य स्थापित करके उनको व्यापक रूप प्रदान किया गया बल्कि पहली बार इस सिद्धान्त का समावेश किया गया कि सामाजिक जोखिमो के निवारण के लिए सामाजिक सुरक्षा की व्यापक सुविधाएँ प्रदान करने मे नागरिको के सहयोग से राज्य (State) को स्वयं उत्तरदायित्व वहन करना चाहिए ।

बीवरिज रिपोर्ट म ब्रिटेन के सभी राजनीतिक दलो तथा समाज सेवियो ने रुचि दिखाई और उसकी सिफारिशो तथा उसमे निहित सिद्धान्तो का समर्थन किया । सरकार ने सामान्य रूप से यह मान लिया कि सामाजिक सुरक्षा का भावी विकास इस रिपोर्ट के आधार पर ही होना चाहिए । तब से बीवरीज योजना को व्यवहार मे लाने के लिए कई अधिनियम पारित हो चुके हैं । नई सामाजिक बीमा प्रणालो सन् १९४८ से पूर्ण रूप म लागू है, जिसमें बाद के अधिनियमो द्वारा संशोधन भी किये गये है ।

---

1. सन् १९३४ में Unemployment Assistance Board की स्थापना हुई ।
2. Later Lord Beveridge.

ब्रिटेन की वर्तमान सामाजिक बीमा व्यवस्था (Present Social Security System)

ग्रेट ब्रिटेन में सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था इतनी व्यापक है कि इसके अन्तर्गत देश के सभी नागरिकों के लिए सुविधा प्रदान की गई है तथा सुविधा केवल जन्मकाल से मृत्यु पर्यन्त ही नहीं बल्कि गर्भावस्था में तथा मृत्यु के उपरान्त अन्तिम संस्कार के लिए भी दी जाती है। सामाजिक बीमा की सुविधा दान (charity) के रूप में नहीं, बल्कि सम्मानपूर्वक अधिकार की तरह दी जाती है क्योंकि सुविधा पाने वाला व्यक्ति उनके लिए चन्दा या अंशदान (contribution) देता है। ब्रिटेन की वर्तमान सामाजिक बीमा व्यवस्था के मुख्य रूप निम्नलिखित है :—

(१) पारिवारिक भत्ते

जून १९४५ में पारित पारिवारिक भत्ते अधिनियम (Family Allowances Act) के अन्तर्गत अगस्त सन् १९४६ से राज्य द्वारा पारिवारिक भत्तों की व्यवस्था की गई है। इस योजना के अन्तर्गत पहले या इकलौते बच्चे को छोड़कर परिवार के हरेक बच्चे के लिए एक निश्चित आयु तक भत्ता दिया जाता है। निश्चित आयु (age limit) उन बच्चों के लिए १५ वर्ष है जो इस उम्र में स्कूल छोड़ देते हैं, पिछड़े हुए बच्चों के लिए १६ वर्ष, तथा उन बच्चों के लिए १८ वर्ष है जो स्कूल में पढ़ते रहें अथवा शिक्षार्थी (apprentices) हों। भत्ते प्राप्त करने के लिए योग्यता सम्बन्धी कोई शर्त नहीं है। यदि परिवार ब्रिटेन के नागरिक न हों तो भी, यदि वे निवास सम्बन्धी विशेष दशाएँ पूरी करते हों, भत्ते प्राप्त करने के अधिकारी हैं। पारिवारिक भत्ते राजकीय कोष में से दिये जाते हैं और उनका उद्देश्य पूरे परिवार को लाभ प्रदान करना है।

इस योजना के अन्तर्गत दो या दो से अधिक बच्चों वाले साढे बत्तीस लाख से भी अधिक परिवारों को साढे बावन लाख से भी अधिक भत्ते दिये जाते हैं।[1]

भत्ते की दर सन् १९५२ के पूर्व प्रति बच्चा ५ शिलिंग प्रति सप्ताह थी, सितम्बर १९५२ में बढ़ाकर ८ शिलिंग प्रति सप्ताह करदी गई। सन् १९५६ में पारित पारिवारिक भत्ते तथा राष्ट्रीय बीमा अधिनियम के द्वारा परिवार के तीसरे और उसके बाद हरेक बच्चे के लिए भत्ते की दर अक्टूबर १९५६ से १० शिलिंग करदी गई।[2]

1. Britain : An Official Handbook, 1959 edition, p. 130.
2. Ibid.

तालिका
राष्ट्रीय बीमा तथा राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा के हेतु साप्ताहिक चन्दो की दरें
सितम्बर १९५८

	पुरुष[1]			स्त्रियां[1]		
	राष्ट्रीय बीमा[2]	स्वास्थ्य सेवा	कुल	राष्ट्रीय बीमा[2]	स्वास्थ्य सेवा	कुल
	शि० पें०	शि० पें०	शि० पें०	शि० पें०	शि० पें०	शि० पें०
प्रथम वर्ग रोजगार प्राप्त व्यक्ति :						
रोजगार मे लगे व्यक्ति से– (Paid by the employee)	८-०½	१-१०½	९-११	६-७½	१-४½	८-०
रोजगार देने वाले से– (Paid by employer)	७-९½	०-५½	८-३	६-३½	०-५½	६-९
जोड	१५-१०	२-४	१८-२	१२-११	१-१०	१४-९
द्वितीय वर्ग निजी धंधो मे लगे व्यक्ति (Self employed persons)	९-१०	२-२	१२-०	८-४	१-८	१०-०
तृतीय वर्ग रोजगार मे न लगे व्यक्ति (Non-employed persons)	७-५	२-२	९-७	५-११	१-८	७-७

१. १८ वर्ष से अधिक आयु के व्यक्ति पुरुष और स्त्रियां। इससे कम आयु के लड़के और लडकियो से चन्दे की दरें कम है।

२. राष्ट्रीय बीमा की दरो मे प्रथम वर्ग के व्यक्तियो के लिए Industrial Injuries Insurance के चन्दे भी सम्मिलित हैं जिनकी दरें पुरुष के लिए employee से ८ पेंस तथा employer से ९ पेंस, और स्त्री के लिए employee से ५ पेंस तथा employer से ६ पेंस हैं।

(२) राष्ट्रीय बीमा

सन् १६४६ का राष्ट्रीय बीमा अधिनियम पूर्ण रूप मे ५ जुलाई सन् १६४८ मे लागू हुआ। राष्ट्रीय बीमा योजना मे सन् १६४६, १६५१, १६५२, १६५३, १६५४, १६५५ १६५६ और १६५७ मे संशोधन हुए। राष्ट्रीय बीमा योजना स्कूल छोड़ने की आयु के उपरान्त सामान्यतया ग्रेट ब्रिटेन मे रहने वाले हरेक व्यक्ति के लिए लागू है।

राष्ट्रीय बीमा योजना के अन्तर्गत लाभ प्राप्त करने का अधिकार पाने के लिए हरेक व्यक्ति को चन्दा देना पड़ता है। चन्दा की दरें निश्चित करने के लिए व्यक्तियों को तीन वर्गों मे विभाजित किया गया है। कुछ विशेष दशाओं के अतिरिक्त सामान्यतया सितम्बर १६५८ म साप्ताहिक चन्दे की जो दरें थी वे पृष्ठ १४४ पर दी गई तालिका मे दी हुई हैं :

राष्ट्रीय बीमा म सरकारी कोष का अंशदान (contribution) सामान्य करो से प्राप्त राशि मे म दिया जाता है। निवृत्त (retire) होने पर अथवा सामान्यतया निवृत्ति होने की आयु के उपरान्त व्यक्ति को चन्दा नही देना पड़ता। परन्तु यदि कोई व्यक्ति निवृत्त होने के पश्चात् भी रोजगार प्राप्त व्यक्ति (employed person) के रूप म कार्य करे तो Industrial Injuries का चन्दा उसे देना पड़ेगा, रोजगार देने वाले (employer) को तालिका मे दी हुई दर पर पूरा चन्दा देना पड़ेगा।

राष्ट्रीय बीमा के अन्तर्गत बीमारी, बेरोजगारी, प्रसूति तथा वैधव्य की अवस्था मे सुविधा (benefit) प्रदान करने तथा संरक्षक के भत्ते, रिटायर होने पर पेंशन एवं मृत्यु के समय अनुदान (grant) की व्यवस्था है। **प्रथम वर्ग** के व्यक्तियों को सभी लाभ (benefits) दिये जाते हैं। **द्वितीय वर्ग** के व्यक्तियों को बेरोजगारी की अवस्था मे तथा उद्योग म घायल (industrial injuries) पर मिलने वाली सुविधाओं के अतिरिक्त अन्य सब लाभ दिए जाते हैं। **तृतीय वर्ग** के व्यक्तियों को बीमारी, बेरोजगारी तथा घायल होने की अवस्थाओं म दी जाने वाली सुविधाएँ तथा प्रसूतिकालीन भत्ता नही दिए जाते, अन्य लाभ दिये जाते हैं।

लाभों (benefits) की दरें सन् १६५८ के मध्य मे बढ़ाकर इस प्रकार कर दी गई थीं :—

(क) रुग्णावस्था मे (Sickness Benefit)

बीमारी के समय १८ वर्ष की आयु से ऊपर पुरुष और अविवाहिता स्त्री को सामान्यतया ५० शिलिंग प्रति सप्ताह दिये जाते हैं। यदि उसका कोई

प्रौढ़ आश्रित हो तो उसके लिए ३० शि० प्रति सप्ताह और दिये जाते हैं; पहले और इकलौते बच्चे के लिए पारिवारिक भत्तो की आयु सीमा के अन्तर्गत १५ शि० प्रति सप्ताह तथा इसके साथ साथ प्रत्येक बाद के बच्चे के लिए पारिवारिक भत्ते के अतिरिक्त ७ शिलिंग प्रति सप्ताह और दिये जाते हैं। विवाहिता स्त्री को बीमारी के समय ३४ शिलिंग प्रति सप्ताह की दर पर लाभ (benefit) दिया जाता है परन्तु यदि उसका पति काम करने योग्य नहीं (invalid) है अथवा वह पति से अलग हो गई है और उससे कोई आर्थिक सहायता नही पा सकती तो उसे, ३४ शि० साप्ताहिक के बजाय, ५० शिलिंग प्रति सप्ताह दिये जाते है।

रुग्णावस्था मे दी जाने वाली सहायता (Sickness benefit), यदि प्रथम और द्वितीय वर्ग के सहायता पाने वाले व्यक्ति ने १५६ साप्ताहिक चन्दे नही दिये है तो, एक वर्ष तक ही दी जाती है। परन्तु यदि १५६ साप्ताहिक चन्दे दिये जा चुके हैं तो यह सहायता बीमारी भर चालू रहेगी, बीमारी चाहे कितनी ही लम्बी अवधि तक रहे।

(ख) बेकारी की अवस्था मे (Unemployment Benefit)

बेरोजगारी मे सहायता की दर वही रखी गई है जो रुग्णावस्था मे है। पहली बार बेकारी सहायता तीस सप्ताह तक दी जा सकती है परन्तु यदि हाल के वर्षों मे इस प्रकार की सहायता ली न गई हो और चन्दे चुकाता रहा हो तो बेरोजगारी सहायता अधिक से अधिक १६ उन्नीस माह तक चालू रखी जा सकती है।

(ग) प्रसूति लाभ (Maternity benefit)

चन्दा देने की कुछ शर्तें पूरी हो जाने पर बच्चा होने के समय १२ पौण्ड १० शिलिंग का प्रसूति अनुदान दिया जाता है, इसके अलावा हरेक अतिरिक्त बच्चे के जन्म पर, यदि बच्चा जन्म से १२ घंटे बाद जीवित रहे तो, १२ पौ० १० शि० और दिये जाते है। यदि जच्चा बच्चे के जन्म के समय किसी ऐसे स्थान पर न रहे जो सार्वजनिक कोष से चलाया जाता हो तो घर पर बच्चा होने के लिये (home confinement grant) पाँच पौण्ड दिये जाते हैं। चन्दे की आवश्यक शर्तें पूरी होने की अवस्था मे श्रमिक महिलाओं को शिशु-जन्म के लगभग ११ सप्ताह पहले से ५० शिलिंग प्रति सप्ताह की दर पर १८ सप्ताह तक प्रसूति भत्ता दिया जाता है।

(घ) वैधव्य सहायता (Widow's Benefit)

मृत पति के बीमा के आधार पर ही उसकी विधवा को तीन प्रकार के

लाभ दिये जाते हैं। वैधव्य भत्ता ७० शिलिंग प्रति सप्ताह की दर पर १३ सप्ताह तक दिया जाता है, जिसके अतिरिक्त इस अवधि में पहले और अकेले बच्चे के लिए निश्चित आयु सीमाओं में २० शिलिंग प्रति सप्ताह तथा उसके बाद दूसरे एवं हरेक बच्चे के लिये पारिवारिक भत्तों के अतिरिक्त १२ शि० प्रति सप्ताह और दिये जाते हैं। तेरह सप्ताह तक वैधव्य भत्ता मिलने के पश्चात् यदि विधवा के कोई बच्चा है जिसकी आयु निश्चित सीमाओं में हो तो उसे विधवा माँ का भत्ता दिया जाता है। इसके अतिरिक्त यदि विधवा की आयु उसके पति की मृत्यु के समय ५० वर्ष या अधिक हो और उससे उसका विवाह कम से कम तीन वर्ष पूर्व हो चुका हो तो विधवा को पेंशन दी जाती है।[1] वैधव्य भत्ता तथा विधवा माँ का भत्ता समाप्त होने पर विधवा को बीमारी या बेकारी की अवस्था में सहायता देने के सम्बन्ध में विशेष नियम है।

(ङ) संरक्षक का भत्ता (Guardian's Allowance)

संरक्षक का भत्ता उस व्यक्ति को दिया जा सकता है जिसके परिवार में कोई ऐसा बच्चा हो जिसके माँ-बाप (अथवा सौतेले माँ-बाप) मर चुके हों जिनमें से किसी एक का राष्ट्रीय बीमा अधिनियम के अन्तर्गत बीमा हो चुका हो। भत्ते की दर २७ शि० ६ पें० प्रति सप्ताह है और भत्ता तब तक चालू रहता है जब तक वह बच्चा पारिवारिक भत्ता अधिनियम की निश्चित आयु-सीमा में आता है।

(च) कार्य-निवृत्त होने पर पेंशन (Retirement Pension)

चन्दा सम्बन्धी आवश्यक शर्तें पूरी हो चुकी हों तो नियमित रोजगार से निवृत्त होने पर पुरुषों को ६५ वर्ष की आयु में और स्त्रियों को ६० वर्ष की आयु में पेंशनें दी जाती हैं। ७० वर्ष की आयु होने पर पुरुष को और ६५ वर्ष की आयु होने पर स्त्री को, वह रिटायर न हो तो भी, पेंशन देय है। इस आयु के पूर्व (अर्थात् पुरुष के लिए ७० वर्ष तथा स्त्री के लिए ६५ वर्ष) पेंशन पाने वाले व्यक्ति कमाने लगें तो उनकी आयों के अनुसार निश्चित दरों पर पेंशन में से कमी करदी जाती है। विवाहिता स्त्री अपने पति के बीमा के आधार पर पेंशन ३० शि० प्रति सप्ताह की दर पर पा सकती है।

---

1. For details see Britain : An Official Handbook, 1959 edition, p. 133.

पुरुषों और स्त्रियों को न्यूनतम आयु पर रिटायर न होने के लिए प्रोत्साहन देने की दृष्टि से यह व्यवस्था की गई है कि जो व्यक्ति काम करते रहें और चन्दे देते रहें उन्हें निश्चित दरों पर बढ़ी हुई पेंशनें दी जाती है।

(छ) मृत्यु होने पर (Death Grant)

चन्दे की आवश्यक शर्तें पूरी होने पर प्रौढ़ व्यक्ति की मृत्यु होने पर २५ पौण्ड तक, बच्चे की मृत्यु पर कुछ कम, अनुदान (Death Grant) दिया जाता है।

(३) औद्योगिक क्षति बीमा योजना
(Industrial Injuries Insurance Scheme)

श्रमिकों की क्षति पूर्ति योजना के बजाय औद्योगिक क्षति बीमा योजना जुलाई १९४८ में प्रारम्भ हुई जिसके अन्तर्गत यह व्यवस्था है कि यदि किसी व्यक्ति को रोजगार के दौरान में और उसके कारण हुई दुर्घटना से चोट (injuries) पहुँचे, एवं रोजगार का स्वभाव ऐसा हो कि उसके कारण निर्धारित बीमारियों में से कोई बीमारी हो जाए तो अधोलिखित लाभ (benefits) दिये जाते हैं :—

घायल होने पर (Injury Benefit)

औद्योगिक दुर्घटना अथवा बीमारी में यदि कोई व्यक्ति काम करने योग्य न हो तो उस दुर्घटना या रोग हो जाने के समय से अधिक से अधिक २६ सप्ताह तक सुविधा (benefit) प्रदान की जाती है जिसकी दर प्रौढ़ व्यक्ति के लिए ८५ शिलिंग प्रति सप्ताह है, यदि उसका कोई प्रौढ़ आश्रित है तो उसके लिए ३० शि०, निर्धारित आयु सीमाओं में पहले और इकलौते बच्चे के लिए ११ शि० तथा उसके बाद हरेक बच्चे के लिए जो सहायता पाने का अधिकारी है ७ शि० प्रति सप्ताह और दिए जाते हैं। यह सुविधा पारिवारिक भत्तों के अतिरिक्त दी जाती है।

अपाहिज होने पर (Disablement Benefit)

अपाहिज होने पर दी जाने वाली सुविधा उस समय दी जा सकती है जब पहले प्रकार की सुविधा (injury benefit) मिलना बन्द हो जाए। अपाहिज होने पर दी जाने वाली रकम इस बात पर निर्भर है कि श्रमिक कितना अपाहिज हुआ है जिसका निर्णय एक मैडीकल बोर्ड करता है। यदि श्रमिक इतना अपाहित हो जाय कि कुछ भी कर सकने के लिए समर्थ न रहे तो ८५ शि० प्रति सप्ताह दिये जाते हैं। २० प्रतिशत असमर्थता (disablement) की दशा

मे १७ शि० प्रति सप्ताह दिये जाते हैं। यदि असमर्थता २० प्रतिशत से भी कम है तो रकम सामान्यतया एकमुश्त (gratuity) के रूप मे अधिक से अधिक २८० पौण्ड तक दी जाती है।

असमर्थता की दशा मे दी जाने वाली सुविधा (Disablement Benefit) निम्नलिखित परिस्थितियों मे बढाई जा सकती है :—

(क) अस्पताल मे रहकर चिकित्सा होने की दशा मे शत प्रतिशत सुविधा दी जा सकती है, साथ ही आश्रितो के लिए भी सहायता दी जायगी।

(ख) यदि शत प्रतिशत सुविधा दी जा रही हो और बीमाशुदा (insured) व्यक्ति की देखभाल करने के लिए किसी अन्य व्यक्ति की आवश्यकता हो तो निरन्तर सेवा का भत्ता अधिक से अधिक ३५ शि० प्रति सप्ताह (बहुत विशेष दशाओं मे ७० शि० प्रति सप्ताह तक) दिया जा सकता है।

(ग) यदि बीमा शुदा व्यक्ति काम करने के लिए स्थायी रूप से अयोग्य (unfit) हो गया है तो उसे बेरोजगारी के लिए ५० शि० प्रति सप्ताह और दिये जा सकते हैं, साथ ही उसके आश्रितों के लिए भत्ता दिया जायगा।

(घ) यदि बीमाशुदा व्यक्ति अपना पहले वाला या वैसा ही काम करने के योग्य न हो सके तो विशेष भत्ते के रूप मे ३४ शिलिंग बढाये जा सकते हैं परन्तु कुल दी जाने वाली रकम ८५ शि० प्रति सप्ताह से अधिक नहीं होगी।

मृत्यु हो जाने पर (Death Benefit)

यदि दुर्घटना से अथवा बीमारी से मृत्यु हो जाए तो बीमाशुदा व्यक्ति के आश्रितो को सहायता दी जाती है। रकम कितनी दी जाएगी यह इस बात पर निर्भर है कि मृत व्यक्ति से आश्रित का कितना समीप का सम्बन्ध था और आश्रितों को मृत व्यक्ति अपने जीवन-काल मे किस सीमा तक सहायता देता था।

विधवा को जो अपने पति की मृत्यु के समय उनके साथ रहती थी वैध-व्यकाल के पहले १३ सप्ताह तक ७० शि० प्रति सप्ताह पेंशन देय है। तत्पश्चात् उसे २० शि० प्रति सप्ताह तथा कुछ दशाओं मे ५६ शि० प्रति सप्ताह पेंशन पाने का अधिकार है। बच्चो और आश्रित माता-पिता इत्यादि के लिए अतिरिक्त व्यवस्था है।

(४) राष्ट्रीय सहायता तथा कल्याण सेवाएं
(National Assistance and Welfare Services)

राष्ट्रीय सहायता अधिनियम १९४८ जिसके अन्तर्गत निर्धन व्यक्तियो को -

आर्थिक सहायता दी जाती है, १५जुलाई, १९४८ से लागू हुआ। इस अधिनियम के अन्तर्गत उन लोगो को सहायता प्रदान की जाती है जो अन्य सामाजिक सुरक्षा सेवाओ के क्षेत्र मे नही आते अथवा बीमा लाभ अपर्याप्त हो। इस अधिनियम द्वारा निर्धन कानून (Poor Law) का अन्त करके और उसके दोषो का निवारण करके विस्तृत आधार अपनाने का प्रयत्न किया गया है। राष्ट्रीय सहायता का प्रशासन राष्ट्रीय सहायता बोर्ड द्वारा किया जाता है।

ग्रेट ब्रिटेन मे वृद्ध एवं अशक्त व्यक्तियो के आवास के लिए गृहो की व्यवस्था की गई है। वृद्धो के कल्याण-कार्य प्रायः सामाजिक संस्थाओ द्वारा किये जाते है।

एक अधिनियम (The Children Act, 1948) द्वारा ग्रेट ब्रिटेन मे स्थानीय संस्थाओ के लिये यह आवश्यक कर दिया गया है कि १८ वर्ष से कम आयु के ऐसे बच्चो को, जिनके माता पिता या संरक्षक न हों, अथवा जिनका त्याग कर दिया गया हो, अथवा जिनके माँ बाप अस्थायी या स्थायी रूप से उनकी सहायता करने मे असमर्थ हो, स्थानीय संस्थाएँ अपनी देख-भाल मे रखें।

प्रश्न

1. Give an account of the various forms of social insurrance prevailing in England and point out its main features.

2. What do you mean by Social Insurance ? What is its necessity and how has it been provided in England ?

3. The movement of social insurance is said to have started in England with the Old Age Pensions Act of 1908. Trace the history of this movement from this period to the present day

4. Write a full note on the Poor Law in England.

5. Give a brief appraisal of the Social Insurance schemes undertaken in Great Britain after the first world war.

अध्याय ६

औद्योगिक तथा व्यापारिक नीति

[वाणिज्यवादी नीति, अबाध व्यापार नीति, अबाध व्यापार नीति का पतन तथा रक्षणवादी नीति का विकास, द्वितीय विश्व-युद्ध तथा युद्धोत्तर काल में प्रशुल्क नीति, प्रश्न।]

पिछले अध्यायो मे ग्रेट ब्रिटेन के आर्थिक विकास के विभिन्न पहलुओ पर जो प्रकाश डाला गया है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि ब्रिटेन मे सरकारी नीति का आर्थिक क्रियाओं पर प्रभाव बहुत अधिक पड़ा, साथ ही यह सत्य भी सम्मुख आता है कि आर्थिक क्रियाओ के विकास के अनुकूल ही ब्रिटेन मे सरकारी नीति का विकास हुआ। अध्याय तीन मे यह बताया जा चुका है कि ब्रिटेन किस प्रकार उन्नीसवी शताब्दी मे भौतिक उन्नति के उच्चतम शिखर पर पहुँचा गया था। उन्नीसवी शताब्दी मे नीति के परिवर्तनो और तत्कालीन उन्नति के आधार पर १८वी शताब्दी तथा उसमे पूर्व की नीति मे त्रुटियां ढूंढना असगत होगा। यह ठीक है कि १८वी शताब्दी तक अपनाई गई नीति उस शताब्दी के अन्त की ओर अनुपयुक्त हो गई थी परन्तु १९वी शताब्दी मे जिस नीति को व्यापक रूप मे अपनाया, परिस्थितियाँ बदलने पर उसका परित्याग करना पड़ा।

मध्ययुग मे व्यक्ति-स्वातंत्र्य का अभाव था, आर्थिक क्रियाओ पर नियमन था। उत्पादन स्थानीय आवश्यकताओ के लिए किया जाता था। आर्थिक विचारधारा स्पष्ट नही थी, उस पर नीतिशास्त्र का प्रभाव था। राष्ट्रीयता की भावनाएँ मध्ययुग मे प्राय: सुप्त रूप मे थी परन्तु मध्ययुग के अन्त की ओर उनका विकास हुआ।

मध्ययुग के बाद की ग्रेट ब्रिटेन की औद्योगिक तथा व्यापारिक नीति के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन तीन समूहो मे किया जा सकता है :—

(१) वाणिज्यवादी नीति (Mercantilism),

(२) अबाध-व्यापार नीति (Laissez-faire), तथा

(३) रक्षणवादी नीति (Protectionist Policy)।

वाणिज्यवादी नीति

वाणिज्यवाद के सम्बन्ध मे पहले अध्याय में बताया जा चुका है। वाणिज्यवादी नीति का प्रभाव सोलहवी शताब्दी से अठारहवी शताब्दी तक रहा। यह द्रव्य और राष्ट्रीयता के विकास का काल था। वाणिज्यवादी नीति का सबसे अधिक प्रभावशाली तत्व अथवा उद्देश्य राष्ट्र को शक्तिशाली बनाना था। राष्ट्रीय सत्ता बढ़ाने की धुन मे हरेक क्षेत्र (sphere) मे राष्ट्रीय क्रिया का संगठन हुआ। राज्य के हितो की अपेक्षा स्थानीय तथा व्यक्ति और वर्गों के हितो को गौण रखा गया।

सत्ता के आर्थिक आधार के रूप मे वाणिज्यवादी नीति के मुख्य उद्देश्य ये अपनाये गये : (क) सम्पत्ति को अत्यधिक महत्व दिया गया, (ख) बहुमूल्य धातुओ, मुख्यत. स्वर्ण, को सम्पत्ति का मुख्य रूप समझा गया; (ग) उद्योगो तथा उत्पादन से अधिक विदेशी व्यापार को महत्व दिया गया; (घ) व्यापारान्तर अनुकूल रखने पर जोर दिया गया तथा (ङ) इन्ही उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए औद्योगिक तथा वाणिज्यिक नियन्त्रण की नीति अपनाई गई।

ऊपर कहा जा चुका है कि वाणिज्यवादी क्रिया ने हरेक क्षेत्र को प्रभावित किया। इसका प्रमाण इस काल मे पारित अधिनियम हैं।[1] कृषि के सम्बन्ध मे समावरण अधिनियम (Enclosure Acts) तथा अन्न कानून (Corn Laws) पास हुए। सामुद्रिक शक्ति बढ़ाने के लिए नौवहन कानून (Navigation Acts) पास किये गये। मछली उद्योग के विकास के लिए प्रयत्न किये गये। उद्योग मे स्थानीय प्रकृति के शिल्प-सगठन की बजाय केन्द्रीय नियन्त्रण बढ चला था। उदाहरण के लिए, सन् १५६३ मे एक कानून (The Statute of Artificers) द्वारा कृषि तथा औद्योगिक श्रमिको की वृत्ति की सामान्य दशाएँ निर्धारित की गई। रोजगार देने वालों, मजदूरो तथा उपभोक्ताओं के कुछ सीमा तक विरोधी हितो मे नियमन द्वारा सतुलन स्थापित करने का प्रयत्न किया गया। जनसख्या की समृद्धि और रोजगार सम्पन्नता राष्ट्रीय सत्ता की मुख्य दशा प्रतीत हुई।[2] मुद्रा सम्बन्धी सुधार किये गये। निर्धन-

---

१. इन अधिनियमों का परिचय यथास्थान दिया जा चुका है।

2 Meredith, H O . Economic History of England, Pitman, London, 1949, p 95. " . a well-nourished, regularly employed and prosperous population seemed one main condition of national power."

कानून संहिता(Poor law Code) का विकास हुआ।[1] समुद्रपार व्यापार बढ़ाने के लिए बड़ी-बड़ी व्यापारिक कम्पनियों का निर्माण हुआ, उन्हें एकाधिकार दिया गया। देश के स्वर्ण कोषों में वृद्धि करने के लिए व्यापार के नियमन की पद्धति इस काल की प्रमुख विशेषता थी। इसके अन्तर्गत ड्यूटी (duties), बन्दी (prohibition) तथा उत्पादन और व्यापार बढ़ाने के लिए सरकारी आर्थिक सहायता (bounties) के उपाय मुख्य रूप से अपनाये गये। ऊनी वस्त्र उद्योग की उन्नति के हेतु निजी जीवन और उपभोग पर प्रभाव डालने वाले कानून बनाए गए। उदाहरण के लिए सन् १६७८ में साल के कुछ महीनों में ऊनी वस्त्रों का उपयोग अनिवार्य कर दिया गया था। सन् १६९६ में एक विशेष कमेटी ने विदेशी निर्मित माल के आयात को बन्द कर देने देश के कच्चे माल का निर्यात बन्द कर देने, तथा उन कच्चे मालों पर से आयात कर हटा देने के लिए सिफारिश की थी जो आन्तरिक उद्योगों के लिए आवश्यक थे। इन सिफारिशों को क्रियान्वित करने के लिए अधिनियम पारित हुए।

सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ से ही उपनिवेशों को देश की सम्पत्ति समझकर उनसे लाभ उठाने को महत्व दिया गया।[2] देश के हित में उपनिवेशों के साथ होने वाले व्यापार का नियमन किया गया। जहाजी कानूनों में भी यही नीति बरती गई।

वाणिज्यवादी नीति की आलोचना बाद की परिस्थितियों में तो होनी स्वाभाविक थी, उस समय भी हुई जब यह नीति अपनाई गई थी। वस्तुतः *वाणिज्यवाद का आर्थिक आधार गलत था क्योंकि उसका दृष्टिकोण एक-देशीय था।* परन्तु व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के आधार पर अथवा अत्यधिक नियमन के विरोध की दृष्टि में कटु आलोचना प्रायः तत्कालीन परिस्थितियों पर बिना

---

१. यह पिछले अध्याय में बताया जा चुका है कि निर्धन कानून ने न केवल अकिंचनों के लिए प्रतिबन्ध लगाये बल्कि दान देने के सम्बन्ध में तथा निर्धनों की सहायता के प्रशासन के लिए भी नियम बनाये गये।

2 " . . the colonies were regarded as estate to be worked for the mother country." —Bhir, Dr. B S, and Pradhan, N. S.: Modern Economic Development, p. 123.

विचार किये हुए की जाती है। 'वाणिज्यवाद' शब्द तो बाद का गढ़ा हुआ है, सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी मे ब्रिटेन में जिस नीति का विकास हुआ वह एक प्रणाली के रूप मे नही परन्तु ब्रिटेन की उन्नति के लिए उस समय की परिस्थितियो के अनुसार शनैः शनैः अपनाई गई थी जिसका बीजारोपण बहुत पहले ही चौदहवीं शताब्दी मे हुआ समझा जाना चाहिए। यदि ब्रिटेन को मध्ययुगीन दशाओ पर विचार किया जाय,[1] मैनोरियल प्रणाली तथा व्यापक दास प्रथा की बुराइयो को कम करने के लिए अपनाई गई नीति का औचित्य समझा जा सकता है। बहुत अधिक स्थानीय प्रतिबन्धो के स्थान पर राष्ट्रीय नियमन उन्नति की महत्वपूर्ण अवस्था थी। पार्लियामेण्ट ने देश के हित मे अधिनियमो को पारित करके जो कुछ किया उसका महत्व इस दृष्टि से भी समझा जाना चाहिए कि समूचे राष्ट्र के हित मे पार्लियामेंट द्वारा उन अधिनियमो को रद्द किया जा सकता था।[2]

अबाध व्यापार नीति

सन् १७७६ मे एडम स्मिथ का प्रसिद्ध ग्रन्थ "दी वैल्थ ऑव नेशन्स" (The Wealth of Nations) प्रकाशित हुआ था। आर्थिक और सामाजिक कुछ दिशाओ मे अबाध व्यापार सिद्धान्तो का चलन ग्रेट ब्रिटेन मे एडम स्मिथ के उल्लिखित ग्रन्थ के प्रकाशन से बहुत पूर्व ही आरम्भ हो चुका था[3] परन्तु एडम स्मिथ के विचारो ने इन सिद्धान्तो को तर्क शक्ति प्रदान की। वस्तुतः पूर्ण रूप मे ये सिद्धान्त कभी भी लागू नही हो सके (होने भी नही चाहिए थे) परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के अधिकाश भाग मे ब्रिटेन मे जिस नीति का प्रभुत्व रहा उसे स्वतन्त्र व्यापार नीति और अबाध नीति (Laissez faire) कहकर सम्बोधित किया जाता है।

उद्देश्य—अबाध व्यापार नीति का दार्शनिक आधार यह विचार था कि यदि व्यक्तियो की स्पर्द्धा पर कोई प्रतिबन्ध न लगाया जाये तो हरेक व्यक्ति इस प्रकार की क्रिया मे लगेगा कि उसका अधिकतम हित हो। इस प्रकार सभी व्यक्ति अपने अधिकतम लाभ के लिए कार्य करेंगे जिसके कारण पूरे

---

१. देखिए इस पुस्तक का अध्याय १।

2. "The solution of national for local regulation, of legal discipline for class servitude, mark important stages on the road to freedom. What Parliament did for the whole country could be undone for the whole country by Parliament."
Meredith, op. cit, p. 100

3. Southgate, G W, cit., p. 344

समाज का भी अधिकतम हित होगा। इस आधार पर राज्य द्वारा आर्थिक क्रियाओं का नियम राष्ट्र के हितो के विरुद्ध बनाया गया।

यहाँ यह उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि अबाध व्यापार नीति के आधार मूलक विचार एक सिरे के (extremist) थे, उनमे सत्य का अंश था तो सही परन्तु उसे इतना बढ़ा चढा कर कहा गया कि वास्तविकता के अन्य पहलुओं की उपेक्षा की गई। अबाध व्यापार नीति के कट्टर विश्वासी भी बाद मे यह मानने लगे थे कि स्पर्द्धा करने मे श्रमिक और नियोक्ता (employer) की स्थिति समान नही थी। वस्तुतः अब यह समझा जाने लगा है कि बन्धन-हीन स्पर्द्धा से कुछ व्यक्तियो का लाभ भले ही हो परन्तु अन्य व्यक्तियो को हानि होती है—तुलनात्मक रूप से देखा जाय तो नियमन की अपेक्षा बन्धन-हीन प्रतियोगिता से समूचे समाज की अधिक समृद्धि की आशा करना निर्मूल है।

अबाध व्यापार नीति की दिशा मे प्रगति—सन् १७८३ के पश्चात् विलियम पिट (Pitt) ने अबाध व्यापार की ओर रुचि दिखाई। पिट इस नीति को आगे बढ़ाने मे सफल न हो सका क्योंकि एक तो उद्योगपतियों ने पूरा साथ नही दिया, दूसरे, उसने जो कार्यक्रम चालू किया, सन् १७६३ मे फ्रान्स के साथ युद्ध छिड़ जाने के कारण, वह आगे न बढ सका। परन्तु यह भुलाया नही जा सकता कि एडम स्मिथ तथा अन्य अर्थशास्त्रियों के अबाध-नीति पोषक विचारो का सरकारी नीति पर कई दिशाओ मे प्रभाव पड़ा था। उदाहरण के लिए श्रमिकों की वृत्ति सम्बन्धी दशाओं के लिए कानून लागू नही रहा; प्रारम्भ मे जो कारखाने खुले उसके ऊपर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाये गये, यहाँ तक कि फैक्टरी इमारते बेढगी बनी, उनमे सफाई, प्रकाश, हवा इत्यादि का कोई ध्यान नही रखा गया, श्रमिकों के आवास की भी ठीक व्यवस्था नही थी, नियोक्ता मनमाने ढग पर गन्दी बस्तियो की रचना करते और श्रमिकों की दशाओं की अपेक्षाकृत अधिक किराया वसूल करते थे; यातायात के क्षेत्र मे भी सरकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं था, सड़कें और नहर तथा बाद मे रेल-मार्गो का विकास व्यक्तियो तथा निजी कम्पनियो द्वारा हुआ, स्वामित्व और प्रबन्ध उन्हीं का था। सरकार ने न तो वित्तीय दायित्व लिया और न उनके विषय मे हस्तक्षेप किया। विदेशी व्यापार के क्षेत्र मे भी एकाधिकार का अन्त हो गया और प्राचीन औपनिवेशिक प्रणाली के बन्धन शिथिल किये गये।

सन् १७९३ से १८१५ तक की अवधि में युद्ध होते रहे। इस काल में ब्रिटेन की जनसंख्या में बहुत वृद्धि हुई। जनसंख्या की वृद्धि के कारण तथा युद्ध के प्रभाव के अन्तर्गत वस्तुओ की कीमतें बढी। इसलिए सामान्यतः उत्पादन को प्रोत्साहन मिला— कृषि की बहुत उन्नति हुई और उद्योगों का भी विस्तार हुआ। नैपालियन आग्ल निर्यात व्यापार को नष्ट करना चाहता था परन्तु कठिनाइयो की स्थिति मे भी ग्रेट ब्रिटेन का निर्यात व्यापार कम नही हुआ बल्कि उसमे वृद्धि हुई। युद्धकालीन समृद्धि की सामान्य दशाओ के साथ साथ समाज म अस्वस्थ दशाएँ उत्पन्न हुई थी। इस काल मे सम्पत्ति और सम्पन्नता वृद्धि का लाभ पूरे समाज को नही बल्कि भूस्वामियो और मिल मालिको या पूँजीपतियो को ही अधिक हुआ। श्रमिको और निम्न वर्ग के व्यक्तियो की दशा शोचनीय हो गई।

युद्धोपरान्त की मन्दी (१८१५–१८३०) ने स्थिति बहुत गिरादी और दशाएँ असहनीय हो गईं। युद्धकाल मे यूरोपीय देशो मे क्रय शक्ति नष्ट हो जाने का यह प्रभाव पड़ा कि ब्रिटिश माल की माँग कम हो गई। देश मे भी माँग गिरी। अतः व्यापार घटा और उत्पादन भी गिरा। बहुत से कारखाने बन्द हो गए। युद्धकालीन उद्योगो मे तथा सेनाओं मे तो छँटनी का कुदाल चला ही, अन्य उद्योगो मे उत्पादन घटने के कारण मजदूरो मे बेकारी फैली। मजदूरियाँ गिरी। युद्धकालीन राष्ट्रीय ऋण पर ब्याज देने और कालान्तर मे ऋण चुकाने के लिए कर-भार बढ़ाया गया।[१] अन्न-कानून के बावजूद कृषि की दशा असन्तोषजनक थी; सरक्षण के कारण खाद्यान्नो के मूल्यो मे बहुत कम गिरावट हुई। परन्तु इससे श्रमिको और निर्धनो पर और भी बुरा प्रभाव पडा।

ऊपर जिन सकटो का उल्लेख किया गया है उन्ही के मध्य अर्थ व्यवस्था के पुनरुद्धार की दशाएँ उत्पन्न हो गई थी। शाति स्थापित होने तथा राजनीतिक स्थायित्व के कारण एक तो यो ही अच्छा प्रभाव पडा,[२] साथ ही सस्ते मजदूरो तथा मशीनों के प्रयोग मे आने से उत्पादन की लागत कम होने के कारण

---

१ सन् १८१५ मे आयकर (Income Tax) समाप्त कर दिया गया था अतः परोक्ष कर लगाये गये और वस्तुओ पर कर बहुत बढ गये। परोक्ष कर की मुख्य बुराई यह है कि निर्धन के ऊपर उसका भार अधिक पड़ता है।

२. इसका अर्थ यह नही समझा जाना चाहिए कि समाज की स्थिति सन्तोषपूर्ण थी, वस्तुतः उस समय राजनीतिक तथा सामाजिक असन्तोष व्याप्त था।

निम्न मूल्यों पर भी उत्पादन किया जाने लगा और निर्यात सम्भव हुए। मुद्रा प्रणाली में भी स्थायित्व आ गया। इसके अतिरिक्त सम्पत्ति और आय पर कर भार निम्न होने के कारण उद्योगों के विकास के लिए पर्याप्त पूँजी उपलब्ध थी। तथापि श्रमिकों की दशा में सुधार नहीं हुआ।

इस अवस्था में स्थिति के सुधार के लिए नीति सम्बन्धी दो भिन्न दृष्टिकोण रखे गए। स्वतन्त्र नीति (laissez faire) विचारकों, जिनमें **जेरेमी बेन्थम** प्रमुख थे, का मत था कि संकट की स्थिति अबाध व्यापार नीति के सिद्धान्तों के कारण उत्पन्न नहीं हुई थी बल्कि उनके प्रयोग की अपूर्णता के कारण थी। उनका मत था कि स्वतन्त्रता में बाधक सभी कानूनों को रद्द कर देना चाहिए, बल्कि राज्य को किसी भी प्रकार का और प्रतिबन्ध नहीं लगाना चाहिए और यथासम्भव कम से कम हस्तक्षेप करना चाहिए।[1]

दूसरा समूह **मानवतावादियों** का था जिनके अगुआ लॉर्ड शैफ्ट्सबरी (Lord Shaftsbury)[2] इनका विश्वास था कि विशेषकर ऐसे व्यक्तियों के हित में कुछ प्रतिबन्ध लगाने चाहिएँ जो अपने लिए स्वतन्त्रतापूर्वक सौदा करने के लिए अयोग्य हों, समाज की दशा को उठाने और दोषों को रोकने के लिए ठोस (positive)[3] प्रयत्न होने चाहिएँ।

बेन्थमवादियों को कई कानूनों को रद्द कराने में सफलता मिली जो स्वतन्त्र प्रसंविदा तथा स्वतन्त्र व्यापार के मार्ग में बाधक थे। अबाध व्यापार नीति की पृष्ठभूमि में यह बात ध्यान देने योग्य है कि ग्रेट ब्रिटेन संसार का प्रमुख और प्रथम औद्योगिक राष्ट्र था। देशीय व्यापार में उसे अन्य देशों से स्पर्द्धा का भय नहीं रहा था। उसका औद्योगिक उत्पादन बढ़ रहा था और उसके उद्योग-पतियों को कच्चा माल पाने और अपना निर्मित माल बेचने के लिए विदेशी मंडियों की तलाश थी[4]। अतः उद्योगपति स्वतन्त्र व्यापार के पक्ष में थे दूसरी

1. Knowles, L. C, A,. op cit., p. 128.
२. दोनों दृष्टिकोण धार्मिकता लिए हुए थे।
३. बेन्थमवादियों का दृष्टिकोण नकारात्मक (Negative) माना जाता है।

4. "The laissez-faire party believed that the Lord had endowed certain peoples with certain aptitudes and that mere man had no right to try and hinder them in the exercise of their faculties by putting man-made restrictions in the way of the exchange of goods or utilization of their opportunities."
—Knowles, op. cit., p. 127

और भू-स्वामी अन्न मे स्वतन्त्र व्यापार के विरुद्ध थे। उद्योगपतियो और भूमिपतियो के व्यापारिक नीति सम्बन्धी विरोधी विचार चलते रहे। अन्त मे स्वतन्त्र व्यापार विचारको की विजय हुई।

सन् १८२४-२५ के उपरान्त कई दिशाओ मे राजकीय नियमन (state regulation) समाप्त कर दिया गया। सन् १८२५ मे व्यापारिक संघो (trade unions) को एकबारगी स्वीकृति मिल गई। इसी वर्ष प्रवास (emigration) सम्बन्धी प्रतिबन्ध हटा लिए गए तथा मशीनरी निर्यात करने के लिए भी स्वीकृति दी गई।

स्वतन्त्र व्यापार नीति के सम्बन्ध मे हस्किसन (Huskisson) रॉबर्ट पील (Peel) तथा ग्लेड्स्टन (Gladstone) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। व्यापार मण्डल (Board of trade) के प्रेसीडेण्ट के पद पर आसीन हस्किसन ने सन् १८२३-२७ की अवधि में कुछ आयातकर कम कर दिए तथा कुछ विदेशी वस्तुओ के आयात पर प्रतिबन्ध हटा दिये। नौ वहन कानून में भी उसने सुधार प्रारम्भ किय। उन देशो के जहाजो पर से प्रतिबन्ध हटा लिये गये जो ब्रिटिश जहाजो को समतुल्य छूट देने को तैयार हो गए। आयात-निर्यात-प्रशुल्क तालिका (Tariff Schedule) मे अनेक परिवर्तन किए गए।

रॉबर्ट पील की सफलता अधिक उल्लेखनीय है। सन् १८४५ से १८५१ की मध्यावधि मे आयात करो मे इतनी अधिक कायापलट हुई कि वस्तुओं पर जो आयात कर लगे थे, उनकी सख्या ११५० से ५६० रह गई। सन् १८४६ मे अन्न कानून को रद्द करके अन्न का आयात स्वतन्त्र कर दिया गया। सन १८४६ के पश्चात् नौ-वहन कानून के प्रतिबन्धक अश समाप्तप्रायः कर दिए गए। निर्यात करों तथा उत्पादन करो मे बहुत कमी कर दी गई।

पील के बचे हुए कार्य को ग्लेड्स्टन ने पूरा किया। सन १८५५ मे चीनी तथा सन् १८६० मे शराब के विदेशो तथा उपनिवेशो से होने वाले आयातो पर करो की दर समान कर दी गई। आयात कर केवल ४८ वस्तुओ पर रह गए। सन् १८५४ मे नौ-वहन प्रतिबन्ध तटीय व्यापार से भी समाप्त कर दिये गये। आयात करो के उन्मूलन अथवा उनमे की गई कमी के कारण होनेवाली सरकारी आय की कमी को पूरा करने के लिए पील और ग्लेड्स्टन ने कर प्रणाली मे व्यापक परिवर्तन किये।

मानवतावादियो के प्रयत्नों के परिणाम—जिस काल मे बेन्थमवादियो ने स्वतन्त्र व्यापार नीति की दिशा मे सफल प्रयत्न किये, लगभग उसी काल मे

लॉर्ड शेफ्टसबरी के प्रभावशाली व्यक्तित्व के नेतृत्व में टोडी मानवतावादियों ने सरकार द्वारा व्यावसायिक दशाओं के नियमन और सुधार हेतु प्रयत्न किये जिनका महत्वपूर्ण प्रभाव पडा। सन् १८३३ से १८५० तक की अवधि में कई कारखाना अधिनियम (Factory Acts) पारित हुए। सन् १८३३ के प्रथम प्रभावपूर्ण फैक्टरी एक्ट की एक नवीनता यह थी कि निरीक्षण की व्यवस्था की गई और इन्स्पैक्टरों की नियुक्ति की गई।[1] सन १८३३ में शिक्षा के लिए सरकारी अनुदान (grants) की व्यवस्था प्रारम्भ का[2] जिसमें बाद में वृद्धि की गई। सन १८४२ में एक अधिनियम द्वारा स्त्रियों और बच्चों से खानों के भीतर काम कराना वर्जित कर दिया गया। सन १८४८ में स्वास्थ्य मण्डल (Board of Health) की स्थापना हुई जिसमे लॉर्ड शेफ्टसबरी भी एक सदस्य के रूप में सम्मिलित थे।

सन १८५० में १८७५ तक का समय सभी दृष्टियों में समृद्धि का काल था जिसे ब्रिटिश आर्थिक इतिहास में 'स्वर्ण युग' कहा जाता है। इस अवधि में कीमतें बढ़ी और साथ-साथ मजदूरियों में भी वृद्धि हुई। श्रम संघों ने प्रगति की और फैक्टरी अधिनियमों के कारण श्रमिकों की दशाएँ सुधरी थी। परिवहन के साधनों में बहुत विकास हुआ। घरेलू तथा विदेशी व्यापार में आशातीत वृद्धि हुई। ब्रिटेन में जहाजी निर्माण उद्योग तथा जहाजी व्यापार में विकास हुआ। लोहा-इस्पात तथा अन्य अनेक उद्योगों में बहुत प्रगति हुई। अन्य यूरोपीय देशों तथा अमेरिका में अशान्ति के कारण ब्रिटेन की स्थिति इस प्रकार की हो गई कि उसका कोई मुकाबले का प्रतिद्वन्द्वी न रहा और उसे एकाधिकार के स्वभाव के लाभ मिले। पूंजी की शक्ति बहुत बढ़ रही थी (जिसके सुधार के लिए चार आन्दोलनों—सहकारी आन्दोलन, श्रम संघ आन्दोलन, कारखाना कानून और म्यूनिसिपल कार्यों का विकास हुआ।

अबाध-व्यापार नीति के समर्थकों का कहना था कि इस काल में (१८५०-१८७५) समृद्धि इसलिए हुई कि आर्थिक क्रियाओं का राजकीय नियमन हटा

---

1. " .. .The starting of inspectorate is therefore epoch-making,it only meant at first State control of certain industries to prevent breaches of the law, it gradually extended its scope........." —Knowles, op cit., p 125

२. सन् १८३३ के पूर्व शिक्षा की व्यवस्था पूर्णतया निजी और दातव्य साहस पर छोड़ी हुई थी। —Southgate, op. cit., p. 350.

दिया गया था परन्तु मानवतावादियो का विचार था कि उनके प्रयत्नो के परिणाम राष्ट्र की समृद्धि मे वाधक सिद्ध नही हुए थे बल्कि सरकारी कार्यवाही वान्छनीय थी।

अबाध व्यापार नीति का प्रभाव—यह ऊपर बताया जा चुका है कि विशेषकर सन् १८२५ के पश्चात् राजकीय नियमन तथा प्रतिबन्धो को कम करने की दिशा मे अनेक परिवर्तन हुए । अबाध व्यापार नीति ब्रिटेन के लिए उस समय बहुत अनुकूल सिद्ध हुई। मुख्य आर्थिक प्रभाव निम्नलिखित दिशाओ मे पड़े[1] :—

१. विदेशी व्यापार मे बहुत वृद्धि हुई। सन् १८४६ मे ब्रिटिश निर्यातों का मूल्य ६,४० लाख पौण्ड था, सन् १८७० मे यह २०,०० लाख पौण्ड हो गया था।

२ औद्योगिक समृद्धि मे वृद्धि होती गई तथा अनेक नये उद्योग विकसित हुए।

३. निर्यातों की संख्या मे वृद्धि हुई तथा विदेशी व्यापार के स्वभाव मे परिवर्तन हुआ। व्यापार का क्षेत्र भी बढा।

४. जहाजी आय मे बहुत वृद्धि हुई।

५ कृषि-पदार्थो के मूल्यो मे गिरावट तथा विदेशो से स्पर्द्धा के कारण कृषि की उन्नति करना अनिवार्य हो गया। गहरी खेती होने लगी।

६. खाद्यान्नो तथा अन्य वस्तुओ की कीमतें कम होने के कारण श्रमिको की वास्तविक मजदूरियाँ बढी।

७. सरकारी आय को स्थिर रखने के लिए आयकर तथा परोक्ष कर लगाये गये।

अबाध व्यापार नीति का पतन तथा रक्षणवादी नीति का विकास

सन् १८७५ मे मन्दी ने आ घेरा जिसका प्रभाव ब्रिटेन पर ही नही संसार के अधिकाश देशो पर पड़ा। यह मन्दी सन् १८८६ तक चलती रही, बल्कि

---

१. वस्तुतः ये प्रभाव केवल अबाध व्यापार नीति के ही नही थे बल्कि कई अनुकूल दशाओ के सम्मिलित प्रभाव समझे जाने चाहिएँ, तथापि अबाध व्यापार नीति का प्रभाव इन्ही दिशाओ मे था। अन्य अनुकूल दशाओ के अन्तर्गत यातायात मे विकास, सन् १८६६ मे स्वेज नहर का खुलना इत्यादि थे।

उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश का पूरा भाग ब्रिटिश अर्थ व्यवस्था का महान् सक्ट काल माना जाता है। इस काल की मुख्य विशेषताएँ ये थी :

(१) कीमतो मे सामान्य गिरावट हुई,

(२) कृषि पर सस्ते विदेशी गेहूँ और मास के आयात का बहुत बुरा प्रभाव पडा। रेलो और जहाजो यातायात के विकास के कारण तथा प्रशीतन विधि इत्यादि के विकास के कारण आयात बहुत बढ गये थे।

(३) जर्मनी और संयुक्त राज्य की तथा अन्य देशो की स्पर्द्धा का ब्रिटिश उद्योगो पर गम्भीर प्रभाव पडा; लोहा इस्पात उद्योग मे मन्दी का एक कारण बिसीमर पद्धति भी था जिसके कारण काफी हानि उठा कर पुनर्गठन किया गया।

(४) नौवहन (shipping) पर भी कुप्रभाव पडा। इस्पात के जहाजो मे वृद्धि हुई थी और ब्रिटिश जहाजो का एकाधिकार समाप्त हो गया था, स्वेज नहर खुलने के पश्चात् नये प्रकार के जहाजो का विकास हुआ।

(५) बेरोजगारी व्यापक रूप मे फैली।

(६) स्वेज नहर खुलने तथा रेलमार्गों के विकास के कारण व्यापारिक मार्गो मे परिवर्तन का ब्रिटेन के व्यापार पर प्रभाव पडा। यूरोपीय देशो का व्यापार ग्रेट ब्रिटेन की मारफत होने के बजाय सीधा होने लगा। भूमध्यसागरीय बन्दरगाहो का महत्व बढ चला था। जर्मनी की प्रतिद्वन्दिता का ब्रिटिश अर्थव्यवस्था पर सभी क्षेत्रो मे प्रभाव पडा।

इस दुःखान्त कथा मे दो तथ्य प्रकट हुए। पहला तो यह कि जर्मनी और सयुक्त राज्य अमेरिका इत्यादि देशो मे उसी समय सरकारी सहायता द्वारा उद्योग, वाणिज्य एवं कृषि की उन्नति की जा रही थी जब कि अबाध व्यापार नीति मे विश्वास करने वाले ब्रिटेन मे आर्थिक क्रियाओ को प्राकृतिक नियमो के सहारे अथवा यो कहिए कि दैवी प्रकोप सहने के लिए छोड़ा हुआ था।

दूसरा यह कि सस्ते विदेशी माल की स्पर्द्धा का सबसे अधिक बुरा प्रभाव ब्रिटेन पर पडा क्योंकि सन् १८४० के उपरान्त ग्रेट ब्रिटेन ने विदशी व्यापार की राह की रुकावटो को समाप्त करके अपने द्वार खुले छोड़ दिये थे जबकि अन्य देश प्रशुल्क की ऊँची दीवालो के भीतर सरक्षण अपनाये हुए थे, अतः उन देशो मे माल बेचना तो सरल नही था, ब्रिटिश मण्डियो मे सस्ता विदेशी माल धड़ाधड़ प्रवेश पा रहा था। इसी प्रसङ्ग मे यह उल्लेखनीय है कि श्रमिको का आन्दोलन ग्रेट ब्रिटेन मे जोर पकड़ता जा रहा था।

ऊपर जो कुछ बताया गया है उसके आधार पर यह समझना सरल है कि अबाध व्यापार नीति के प्रति ब्रिटेन मे लोगो का विश्वास डिग गया और उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई। परिणाम यह हुआ कि सन् १८८६ के पश्चात् अबाध व्यापार नीति का पतन होने लगा। अनेक क्षेत्रो मे सरकारी कार्यवाही आवश्यक समझी गई और अनेक अधिनियम पारित किये गये। सरकारी हस्तक्षेप के लिये अन्य कारण भी उपस्थित हुए :

(१) आस्ट्रेलिया, फ्रान्स तथा इटली ने ब्रिटेन के साथ हुआ समझौता भङ्ग कर दिया,

(२) सन् १९१४ १८ के महायुद्ध काल मे उत्पन्न परिस्थितियों मे सुरक्षा की दृष्टि से कदम उठाने आवश्यक थे;

(३) ब्रिटेन का व्यापार सन्तुलन प्रतिकूल बढता जा रहा था,

(४) सन् १९२९ ३० की मन्दी ने ब्रिटिश अर्थ व्यवस्था की कमर ही तोड दी और नीति मे परिवर्तन की आवश्यकता एकदम सम्मुख आ गई।

इसी प्रसङ्ग मे निम्नलिखित परिस्थितियां उल्लेखनीय हैं :—

१ ब्रिटेन ऐसा देश था जो विदेशी व्यापार पर अधिक निर्भर था, अत. उसे अन्य देशो की अपेक्षा अधिक हानि हुई।

२ युद्धकाल मे जहाजो (Shipping space) की तगी थी। उस काल मे एसे देशो ने, जा युद्ध मे लगे हुए नही थे, अपने समुद्री व्यापार के लिए अपने जहाज बना लिये। इसका ब्रिटिश जहाजी व्यापार तथा जहाज-निर्माण उद्योग पर बुरा प्रभाव पडा।

३. युद्ध-काल म कोयले के उपयोग मे मितव्ययिता करने का प्रयत्न किया गया था। युद्धोत्तर काल मे (१९१८ के पश्चात्) अन्य ईधनो के प्रचलन के कारण ब्रिटिश कोयला उद्योग को धक्का पहुँचा।

४. युद्ध मे प्रभावित देशो मे जनता की क्रय-शक्ति कम हो गई थी, अतः उन देशो मे ब्रिटिश माल की माँग घटी।

५ पूर्वी देशो मे औद्योगीकरण की दिशा मे प्रगति हुई थी। अतः उन देशो मे तो ब्रिटिश निर्मित माल की माग घटी ही, साथ ही वे ब्रिटेन के प्रतिद्वन्द्वी बन रहे थे।

६. ब्रिटिश उद्योग की प्रतियोगिता सामर्थ्य घटी थी क्योंकि अन्य देशों की अपेक्षा ब्रिटेन मे श्रमिकों की मजदूरियां बढ़ी थी तथा काम के घंटों मे घटोत्तरी किये जाने से लागत बढ़ी थी।

परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिश उद्योगों की उत्पादन क्षमता गिरी। सन् १६३० मे १६२६ वर्ष की तुलना मे आयातो मे १३ ८ प्रतिशत और निर्यातो मे २१·८ प्रतिशत की गिरावट हुई। सन् १६३० मे बेकारो (unemployed) की संख्या २५ लाख हो गई। पांच सौ से अधिक कम्पनियों के लाभो मे १८ प्रतिशत के लगभग गिरावट हुई। इस प्रकार व्यापार मे गिरावट, लाभो मे कमी तथा बेरोजगारी का सम्मिलित प्रभाव यह हुआ कि देश का आर्थिक सन्तुलन नष्ट हो गया।[१] अतः अर्थव्यवस्था के और अधिक पतन को रोकने के लिए ब्रिटेन ने रक्षणवादी नीति अपनाई।

अबाध व्यापार नीति का पतन वाणिज्यवाद (mercantilism) की पुनःस्थापना की ओर कदम नही था जिसमे व्यक्तियो की समृद्धि की अपेक्षा राष्ट्र की सत्ता बढाना प्रमुख ध्येय था। रक्षणवादी नीति म राजकीय कार्यवाही का महत्व नियमन एवं नियन्त्रण का अपेक्षा सहायता, सहारे और सुरक्षा के लिए समझा गया था।

राजकीय कार्यवाही और रक्षणवादी नीति की प्रगति—जैसा कि इस अध्याय मे पहले बताया जा चुका है कि सन् १८८६ के उपरान्त अबाध व्यापार नीति की प्रतिक्रिया हुई। अनेक दिशाओ मे सरकारी कार्यवाही हुई .

(१) श्रमिको के हितो मे कई अधिनियम पारित हुए। उदाहरण के लिए, सन् १८६१ मे फैक्टरी तथा वर्कशॉप अधिनियम पास हुआ जिसके अनुसार १२ वर्ष से कम आयु वालो से कारखानो मे काम कराना वर्जित कर दिया गया। सन् १८६३ मे शॉप आवर्स एक्ट (Shop Hours Act) तथा सन् १८६५ मे एक और फैक्टरी एक्ट पास हुआ। सन् १८६६ के उपरान्त सामाजिक बीमा की दिशा मे प्रगति होती गई।[२] सन् १८६६ के पश्चात् औद्योगिक झगडो के हल के लिए भी कानूनी उपाय अपनाये गये।[३]

(२) कृषि की दशाओ की जांच के लिए आयोग नियुक्त किए गए तथा अधिनियम पारित किए गए। सन् १६३१-३२ मे कृषि की सहायता के लिए विशेष उपाय अपनाए गए।

1. "Thus shrinkage of trade, unemployment and loss of profits combined thoroughly to shake the economic equilibrium of the country."

२. विस्तार के लिए 'सामाजिक सुरक्षा का विकास' अध्याय देखिए।

३. सन् १८६६ मे Conciliation Act पास हुआ था।

(३) सन् १८७० के उपरान्त, विशेषकर सन् १८८७ से तथा सन् १८६५ मे कोलोनियल पद पर चेम्बरलेन के आजाने के पश्चात् औपनिवेशिक नीति मे परिवर्तन हुआ और रचनात्मक साम्राज्यवाद की दिशा मे प्रयत्न किये गये।

(४) व्यापार के क्षेत्र मे भी कुछ अधिनियम पारित किये, व्यापार मण्डल का कमर्शियल इन्टेलीजेन्स विभाग खोला गया और एक जर्नल निकाला गया, समुद्रपार व्यापार के लिए एक पृथक् विभाग खोला गया। सन् १६३१-३२ मे मे स्वतन्त्र व्यापार का परित्याग कर दिया गया और साम्राज्यगत अधिमान (Imperial Preference) की नीति को मान्यता दी गई।

(५) रेल यातायात तथा जहाजी यातायात के क्षेत्र मे भी राजकीय सहायता प्रदान की गई। सामाजिक सेवाओ का विकास हुआ।

सन् १६१५ मे सिने फिल्मो, घडियो, मोटर गाडियो इत्यादि पर ३३⅓ प्रतिशत यथा मूल्य कर लगाकर ब्रिटिश उद्योगो को सरक्षण दिया गया। सन् १६२१ मे उद्योग संरक्षण अधिनियम स्वीकृत हुआ जिसके अनुसार सैकडो वस्तुओ पर ३३⅓ प्रतिशत यथामूल्य कर (ad Valorem duty) लगाया गया। सन् १६३१ के पश्चात् ब्रिटेन विश्व का प्रसिद्ध रक्षणवादी देश बन गया। तत्कालीन मिली जुली सरकार (Coalition Government) ने कई वस्तुओ पर ५० प्रतिशत से १०० प्रतिशत तक की दर पर आयात कर लगा दिये। परन्तु उपनिवेशों तथा साम्राज्यगत देशो के माल को कर-मुक्त रखा गया अथवा उस पर बहुत कम कर लगाया गया।[1] सन् १६३२ के ओटावा समझौते के अनुसार सभी अधिराज्यों के लिए आपसी रियायत करना अनिवार्य हो गया।

रक्षणवादी नीति के लाभ—रक्षणवादी नीति अपनाने से ब्रिटेन को निश्चय ही लाभ हुए। रक्षणवादी नीति मुख्यतया निम्नलिखित उद्देश्यो से अपनाई गई थी जिनमे सफलता मिली :—

(१) आयातों मे कमी तथा निर्यातो मे वृद्धि करके व्यापारान्तर (Balance of Trade) का सुधार किया।

---

१. बात यह थी कि उपनिवेशो और साम्राज्यगत देशो मे निर्माण उद्योगो का इतना विकास नही हुआ था कि वे ब्रिटेन से स्पर्द्धा करने के योग्य होते और ब्रिटेन उनमे अपना निर्मित माल बेचने के लिए क्षेत्र सुरक्षित रखना चाहता था।

(२) प्रतिकूल व्यापारान्तर के कारण स्टर्लिंग का विनिमय मूल्य गिरा था, रक्षणवादी नीति के द्वारा गिरावट रुकी।

(३) आयात निर्यात प्रशुल्क का उद्देश्य यद्यपि देश के उद्योग और व्यापार को संरक्षण प्रदान करना था परन्तु साथ ही सरकारी आय मे वृद्धि हुई।

(४) अबाध व्यापार नीति अपनाने का अर्थ सभी उद्योगो को समान समझना था। यह उचित नही था। रक्षणवादी नीति के द्वारा विभिन्न उद्योगों की आवश्यकताओ मे वैज्ञानिक आधार पर भेद करना सम्भव हुआ।

(५) जिस सीमा तक संरक्षण से निर्यातो को प्रोत्साहन मिला, उत्पादन और वितरण के श्रेष्ठतर तरीके अपनाना सम्भव हुआ।

(६) अबाध व्यापार नीति सभी विदेशी राष्ट्रो को समान मानती थी, रक्षणवादी नीति के आधार पर समान और पारस्परिक लाभो की दृष्टि से कुछ देशो के माल को अधिमान (preference) देना सम्भव था जिसके आधार पर अन्य देशो से समझौते किये जा सकते थे।

यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विशेष आर्थिक परिस्थितियों से बाध्य होकर ब्रिटेन को अबाध व्यापार नीति का त्याग करके रक्षणवादी नीति अपनानी पडी। हरेक देश मे राष्ट्रीयता की भावनाओ के विकास तथा औद्योगिक प्रगति के साथ ब्रिटेन मे रक्षणवादी नीति अपनाना उचित और उसके लिए हितकारी सिद्ध हुआ।

द्वितीय विश्व-युद्ध तथा युद्धोत्तर काल मे (ब्रिटेन की प्रशुल्क नीति)

द्वितीय विश्व युद्ध काल मे आयात नियन्त्रण किया गया तथा सरकार द्वारा ही खरीद हो सकती थी, अतः प्रशुल्क द्वारा संरक्षण देने का महत्व बहुत कम हो गया। सन् १९४९ मे जब आयात नियन्त्रण सम्बन्धी प्रतिबन्ध पर्याप्त ढीले कर दिये गये तो संरक्षण प्रदान करने के लिए प्रशुल्क (tariff) पुनः महत्वपूर्ण यन्त्र होगया।

ब्रिटेन की प्रशुल्क नीति अब भी रक्षणवादी है परन्तु द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् व्यापार और प्रशुल्क सम्बन्धी सामान्य समझौते (GATT— General Agreement on Trade and Tariff) के अनुसार संरक्षणात्मक प्रशुल्क मे काफी परिवर्तन किये हैं। राष्ट्र कुल (Commonwealth) के देशो के तथा औपनिवेशिक पदार्थों पर अधिमान चालू है।

सन् १९५७ मे पारित एक अधिनियम (The Customs Duties—Dumping and Subsidies Act) द्वारा व्यापार मण्डल को यह अधिकार दिया गया है कि वह किसी भी प्रकार के ऐसे आयात होने वाले माल पर ड्यूटी लगावे जिसका ब्रिटेन मे डम्पिग किया जाये अथवा जिसे आर्थिक सहायता (Subsidy) प्राप्त करके विक्रय के लिए भेजा जाए। सन् १९५८ के आयात कर अधिनियम (Import Duties Act) द्वारा सरक्षणात्मक प्रशुल्क सम्बन्धी कानून को एकत्रित करके अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर निश्चित रूप मे ला दिया गया है।

प्रश्न

1 Give an idea of the various stages through which commercial policy in England has passed.

2. Discuss critically why England adopted protection in 1932

3. Examine by reference to the agricultural and industrial legislation from 1880 to 1914, the important change that occurred in the economic policy of England as a result of the great depression of 1873-86.

4. Describe the growth of Free Trade in England after 1800 What causes led to it at the time, and what gave it a setback about the end of the nineteenth century

5. Describe the rise and fall of Mercantilism in England.

अध्याय १०

अधिकोषण तथा राजस्व

(Banking and Finance)

[अधिकोषण प्रणाली का प्रारम्भ, बैंक ऑव इंगलैण्ड की स्थापना, अठारहवीं शताब्दी में ब्रिटिश अधिकोषण की विशेषताएँ, उन्नीसवीं शताब्दी के बैंकिंग अधिनियम तथा अधिकोषण का विकास, आधुनिक काल—बैंक ऑव इंगलैण्ड, व्यापारिक बैंक; राजस्व, सरकारी आय-व्यय, प्रश्न।]

पन्द्रहवी शताब्दी तक ग्रेट ब्रिटेन में अधिकोषण (banking) व्यवसाय शायद था ही नहीं, आधुनिक अर्थ मे तो निश्चय ही नहीं था। ब्याज लेना बहुत निन्दनीय समझा जाता था। सूदखोरी वर्जित कर दी गई थी। ट्यूडर काल में इंगलैण्ड मे मत बदला और यह समझा जाने लगा कि किसी व्यापारी से, जो लाभ कमाने के लिए ऋण लेता है, ऋण पर ब्याज लेना अनुचित नहीं था। सन् १५४५ मे एक अधिनियम पारित हुआ जिसके अनुसार सूदखोरी तो नहीं, ब्याज लेना गैरकानूनी न रहा। सन् १६२४ के एक अधिनियम द्वारा ब्याज की अधिकतम दर आठ प्रतिशत निश्चय हुई। सन् १६५२ मे यह सीमा ६ प्रतिशत कर दी गई।

अधिकोषण प्रणाली का प्रारम्भ

सत्रहवीं शताब्दी मे अधिकोषण प्रणाली का प्रारम्भ हुआ समझा जा सकता है जब स्वर्णकारों ने ब्याज पर पूँजी उधार देने के लिए जमाएँ (deposits) स्वीकार की। सुनारो के पास पूँजी थी परन्तु अन्य प्रकार के व्यापारों की तरह उनके व्यापार मे अधिक पूँजी विनियोग करने का क्षेत्र न था। अत वे अपनी बची हुई पूँजी उधार देने थे। अन्य व्यापारियों की सुविधा के लिए वे अन्य देशों की मुद्राओं का विनिमय भी करने लगे। कालान्तर मे वे अपने ग्राहकों से द्रव्य सुरक्षित रखने के लिए स्वीकार करने लगे। वे ऐसी जमाओं को मांगने ही देने की प्रतिज्ञा करते थे। अनुभव मे वे यह सीख गये

कि उनके पास जमा की हुई धन राशियाँ किसी एक समय पर सबकी सब नही माँगी जायेंगी। अतः वे उनमे से उधार भी देने लगे जिसके लिए ब्याज लेते थे। धीरे धीरे इन सुनारो पर लोगो का विश्वास बढ गया और वे परिवर्तनीय नोटो का निर्गम करने लगे। जब उनका यह व्यवसाय बढा तो वे जनता की अधिक जमाएँ (deposits) आकर्षित करने के लिए ब्याज देने लगे।

स्वर्णकारो के अधिकोषण व्यवसाय पर आरम्भ मे कोई नियमन या सरकारी नियन्त्रण नही था। वे ऋण लेने वालो से ब्याज ऊँची दर पर लेते थे। जिन उद्योग-धन्धो के लिए ऋण लिए जाते थे उनमे भी अनिश्चितता थी, अतः इस दृष्टि से अधिक ब्याज लेना बहुत अनुचित प्रतीत नही होता। स्पष्ट है कि ऋण लेने वालो की स्थिति अनिश्चित होने के कारण तत्कालीन अधिकोषण व्यवसाय भी सुरक्षित नही था। कालान्तर मे सम्राट् भी स्वर्णकारो से ऋण लेने लगे।

सन् १६७२ मे चार्ल्स द्वितीय ने स्वर्णकारो से लिए हुये ऋणो के सरकारी कोष से होने वाले भुगतान स्थगित कर दिए, केवल ब्याज चुकाने का दायित्व लिया।[1] इस कार्यवाही का स्वर्णकारो की स्थिति पर गम्भीर प्रभाव पडा। वे अपनी देनदारियो को चुकाने मे असमर्थ हो गये और सकट मे पड़ गए। कई दृष्टियों से जनमत उनके विरुद्ध हो रहा था। ऐसी अधिकोषण संस्था की माँग थी जिस पर जनता का अधिक विश्वास हो सके तथा उद्योग और व्यापार के लिए अपेक्षाकृत निम्न ब्याज दर पर ऋण प्राप्त हो सकें। जो कुछ भी हो, यह कहा जा सकता है कि अधिकोषण प्रणाली का जन्म हो चुका था।

बैंक ऑव इंगलैण्ड की स्थापना

सत्रहवी शताब्दी के अन्त की ओर ग्रेट ब्रिटेन की अर्थ व्यवस्था सक्रान्ति लाने वाली अनेक परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई जिनके कारण १८वो शताब्दी मे नई आर्थिक प्रणाली का जन्म हुआ। इस सक्रान्ति के इतिहास मे बैंक ऑव इगलैण्ड की स्थापना का बहुत महत्त्व समझा जाता है।[2] ऊपर जिन परिस्थितियो का उल्लेख किया जा चुका है उन्हें दृष्टिगत रखकर बैंक ऑव इंगलैण्ड की

---

1. *Southgate, op. cit.*, p 297.

2. "In the history of this transition the incidents of most importance are the success of the House of Commons in the Constitutional struggle, and the establishment of the Bank of England." — Meredith, op. cit., p. 207.

स्थापना का महत्व समझना सरल है परन्तु जैसा कि मेरेडिथ ने लिखा है उसके वैधानिक स्वत्वों (चार्टर) का विकास व्यापार-जगत की सेवाओं के लिए उतना नहीं जितना कि राजकीय आवश्यकताओं के कारण किया गया।[1] सन् १६६४ मे राजकीय व्यय के संतुलन के लिए १२ लाख पौण्ड की आवश्यकता थी। विलियम पेटरसन (स्कॉटलैण्ड के एक व्यक्ति) ने एक स्कीम सुझाई जिसमें बिना कुछ अधिक संशोधन किए क्रियान्वित किया गया और परिणामतः सन् १६६४ में बैंक ऑव इङ्गलैण्ड की स्थापना हुई। इस संस्था को इतनी अधिक सफलता मिली कि इसके अधिकार बहुत अधिक बढ़ा दिए गए।

बैंक ऑव इंगलैण्ड की कम्पनी तथा उसके गवर्नर ने सरकार को १२ लाख पौण्ड की धन राशि उधार देने का दायित्व लिया। उसको दिये जाने वाले मुख्य अधिकार ये थे :

(१) नोट निर्गमन करना,

(२) धातु मे विनिमय सौदे करना तथा बिलो (bills) का बट्टा,

(३) ऋण प्रदान करना, तथा

(४) जमाएँ (deposits) प्राप्त करना। मुद्रा के टंकण मे उसने सरकार को सहयोग प्रदान किया। सन् १६६६ मे उसे कुछ विशेष अधिकार दिए गये तथा सन् १७०८ मे एक अधिनियम के द्वारा संयुक्त-पूँजी वाले बैंको मे उसे नोट निर्गम के लिए एकाधिकार दिया गया जिसके अनुसार छ: से अधिक साझेदारो वाला कोई अन्य ऐसा बैंक स्थापित नही किया जा सकता था जिसे नोट निर्गम का अधिकार दिया जाय। सन् १७५१ मे राष्ट्रीय ऋण (National Debt) का प्रबन्ध पूर्णतया बैंक ऑव इंगलैण्ड को सौंप दिया गया। ऐसे संयुक्त पूँजी वाले बैंकों के निर्माण पर कोई प्रतिबन्ध नही था जो जमाएँ स्वीकार करने के लिए ही स्थापित हो परन्तु ऐसी बैंकों की स्थापना भी सन् १८२६ के पूर्व तक नही हुई। वस्तुतः उस समय बैंकिंग व्यवसाय चलाने के लिए नोट निर्गम का कार्य अत्यावश्यक समझा जाता था।

बैंक ऑव इंगलैण्ड के प्रारम्भिक काल में बैंकिंग व्यवसाय मे उससे स्पर्द्धा

---

1. "The Bank of England owed its charter less to a deliberate cognisance by the Government of the services which such an institution could perform to the business world than to pressing necessities of State." —Meredith, op. cit., p. 215.

लेने वाली कोई अधिकोषण संस्था नहीं थी। परन्तु उन स्वर्णकारों ने जिनके लेन-देन पर प्रभाव पड़ा था ईर्ष्यावश उसकी आलोचना की। कुछ अन्य व्यक्तियों को भी यह सन्देह था कि यह बैंक जो कुछ सेवा कर रही थी उससे अधिक अपने अधिकारों का लाभ उठा रही थी। आरम्भ में स्वर्णकारों ने बैंक ऑव इंगलैण्ड को संकट में डालने के लिए काफी मात्रा में उसके नोट एकत्रित करके भुगतान के लिए प्रस्तुत किये।[१] बैंक के पास इस माँग को पूरा करने के लिए पर्याप्त नगदी नहीं थी। बैंक ने दृढ़ता से काम लिया और कुछ नोटों पर १५ प्रतिशत अदायगी की; ऐसे नोटों का भुगतान स्थगित कर दिया जो स्पष्ट रूप से बैंक को कठिनाई में डालने के लिए ही पेश किए थे। इसी बीच में टकसाल से पर्याप्त मात्रा में सिक्के आ गये और कुछ ही सप्ताहों में संकट काल समाप्त हो गया।

अठारहवीं शताब्दी में ब्रिटिश अधिकोषण की विशेषताएँ

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, १८ वीं शताब्दी में संयुक्त-पूँजी के अधिकोषण में बैंक ऑव इंगलैण्ड का एकाधिकार था। निजी बैंकरों के रूप में वे स्वर्णकार थे जिन्होंने इंगलैण्ड में अधिकोषण को जन्म दिया था, कुछ अन्य व्यक्ति भी यह काम करने लगे थे। नोट निर्गमन का कार्य बैंकिंग व्यवसाय के लिए आवश्यक समझा जाता था और क्योंकि वैधानिक रूप से यह अधिकार बैंक ऑव इंगलैण्ड के लिए सीमित रखा गया था, अन्य संयुक्त-पूँजी वाले बैंकों का विकास नहीं हुआ। उसका एकाधिकार न तो उसके स्थायित्व के लिए आवश्यक ही था और न ही वह अधिकोषण के विकास के लिए लाभदायक सिद्ध हुआ। बैंक ऑव इंगलैण्ड के सम्मुख उसकी शाखाएँ खोलने के लिए प्रस्ताव रखा गया था, यदि स्पर्द्धा होती तो शायद शाखाएँ चलाई जातीं।[२] परन्तु उनके

---

१. निर्गमन करने वाला बैंक परिवर्तनीय नोटों के प्रस्तुत किये जाने पर चालू प्रणाली के अनुकूल चलन अथवा सिक्के इत्यादि देने की प्रतिज्ञा करता है। व्यवहार में यह निर्गमित नोटों के अनुपात में कम नगदी कोष रखकर भी सम्भव होता है क्योंकि जनता बैंक पर विश्वास रखती है और भुगतान के लिए बहुत कम नोट प्रस्तुत किए जाते हैं। परन्तु यदि जनता का विश्वास डिग जाए अथवा जान बूझकर बैंक को संकट में डालने का विचार उत्पन्न हो तो बहुत अधिक नोट भुगतान के लिए प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

२. प्रारंभिक अवस्था में बैंक ऑव इंगलैण्ड ने अपना कार्यक्षेत्र लन्दन में ही सीमित रखा। इसीलिए एश्टन ने कहा, It was the Bank of London, rather than of England."—Ashton, T.S., op. cit., p. 101.

अभाव मे प्रान्तीय नगरो मे अधिकोषण सुविधाएं प्राप्त नहीं हो सकीं। यह कहा जाता है कि स्पर्द्धा की दशाओं पर रोक लगाकर अधिकोषण के विकास मे रुकावट डाल दी गई थी।

१८ वी शताब्दी के मध्य तक अर्थात औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व तत्कालीन आवश्यकताओं की दृष्टि मे अपर्याप्त नहीं कही जा सकती परन्तु १७५० ई० के उपरान्त औद्योगिक विकास के काल मे अधिकोषण क्रिया में वृद्धि हुई। यदि संयुक्त पूँजी वाले बैंको के निर्माण पर प्रतिबन्ध न होते तो अधिकोषण व्यवसाय का विकास का सुदृढ रूप सम्भव हो सकता था। इस काल के कुछ बैंक सुचालित थे परन्तु अधिकोषण कार्य मे लगे अधिकाश व्यक्तियों के साधन सीमित थे और वे प्राय: निम्न स्थिति के थे।

सन् १७९३ मे फ्रेंच युद्ध छिड़ने पर सन् १८२५ तक (सन् १८१५ मे युद्ध समाप्त होने के बाद भी) ब्रिटिश अधिकोषण व्यवसाय पर सकट छाया रहा। सन् १७९७ म सरकार ने बंक ऑव इंगलैण्ड को अधिकार दिया कि वह नोटो का भुगतान बन्द कर दे और लगभग बीस वर्षो तक परिवर्तनीय नोटो के बदले मे स्वर्ण देना बन्द रहा। अनको निजी बैंको का दिवाला निकल गया। सन् १८२१ मे बैंक ऑव इगलैण्ड ने नोटो के बदले में स्वर्ण देना प्रारभ कर दिया था। सन् १८२४ तक व्यापार मे समृद्धि की दशाएँ आ गई थी। विश्वास बढ चला था और अत्यधिक मात्रा में नोट निर्गमित हुए और परिणाम यह हुआ कि सन् १८२५ मे ७० से भी अधिक बैंको को दिवालिया होना पड़ा।

उन्नीसवी शताब्दी के बैंकिंग अधिनियम तथा अधिकोषण का विकास

सन् १८२३ मे बैंक ऑव इङ्गलैण्ड के सम्मुख सरकार ने प्रस्ताव रखा कि यदि वह अपना एकाधिकार लन्दन और उसके आस-पास सभी ओर ६५ मील के क्षेत्र तक सीमित रखने के लिए सहमति दे तो उसका अधिकार पत्र (चार्टर) सन् १८४३ तक के लिए बढा दिया जाय। इस विषय पर बैंक ऑव इंगलैण्ड की सहमति लेना आवश्यक इसलिए था कि उसको सन् १८३२ तक के लिए पहले ही अधिकार दिये जा चुके थे।[1]

सन् १८२६ में एक बैंकिंग अधिनियम पारित हुआ जिसके द्वारा यह व्यवस्था हुई कि लन्दन से ६५ मील बाहर कही भी संयुक्त पूँजी वाले बैंक

1. See Meredith, op. cit., p. 313.

स्थापित किये जा सकते थे जिन्हे नोट-निर्गम का अधिकार रहेगा। परन्तु पांच पौण्ड से कम के नोटो का निर्गम निषिद्ध कर दिया गया था। देश का अधिकतर वित्तीय व्यापार लन्दन मे केन्द्रित होने के कारण इस अधिनियम द्वारा बैंक ऑव इंगलैण्ड के एकाधिकार पर कोई गम्भीर प्रभाव नही पडा । । उसके अन्य संयुक्त पूंजी वाले बैंको से सम्बन्ध भी सन्तोषजनक नही हो सके क्योंकि बैंक ऑव इंगलैण्ड को लन्दन के ६५ मील के बाहर बैंकिंग कार्य करने का अधिकार था, अतः प्रान्तीय नगरो मे वह अन्य बैंको के साथ स्पर्द्धा करता था।

सन् १८३३ के बैंकिंग अधिनियम द्वारा बैंक ऑव इगलैंड के अधिकारो मे कुछ परिवर्तन किये गये। यह उल्लेख किया गया कि लन्दन के आस पास ६५ मील के घेरे के भीतर भी संयुक्त पूंजी वाले बैंक व्यापार कर सकते थे परन्तु उन्हे उतनी परिधि मे नोट निर्गम करने का अधिकार नही होगा । वस्तुतः यह नई बात नही थी, ऐसा तो पहले भी किया जा सकता था।[1] केवल उसे वैधानिक रूप मे उल्लेख कर दिया गया था। संयुक्त पूंजी वाले बैंक, यदि नोटो का निर्गम लन्दन के ६५ मील के घेरे के बाहर हुआ है, अपने निर्गमित नोटो को अपने लन्दन ऑफिस मे शोधनीय (payable) रख सकते थे। सन् १८३३ की एक महत्वपूर्ण व्यवस्था यह थी कि बंक ऑव इगलैण्ड के नोट विधिग्राह्य (legal tender) कर दिए परन्तु वह स्वयं अपने नोटो का परिशोधन (edemption) अपने ही नोटो द्वारा नहीं कर सकता, अन्य बैंक अपने नोटो का शोधन बैंक ऑव इगलैण्ड के नोटो द्वारा कर सकते थे।

सन् १८३३ के अधिनियम के पश्चात् सन् १८३४ मे दी लन्दन एण्ड वैस्टमिनिस्टर बैंक और सन् १८३६ मे दी लन्दन ज्वाइन्ट स्टॉक बैंक की स्थापना हुई। सन् १८३९ मे यूनियन बैंक और दी लन्दन एण्ड काउन्टी बैंक की स्थापना हुई। अन्य संयुक्त पूंजी वाले बैंक भी स्थापित हुए। इन बैंको के साथ बैंक ऑव इंगलैंड शत्रुता का सा व्यवहार करता था, उनको अनेक कठिनाइयो का सामना करना पड़ता था। सन् १८५४ के पूर्व उन्हें समाशोधन गृह (clearing house) के लाभ से वंचित रखा गया। लन्दन के क्षेत्र मे नोट निर्गम का

---

1. *Ibid, p. 313.* "In 1823 a pamphlet was published by Mr. Joplin in which it was maintained that the privilege of the Bank of England only precluded the formation of joint stock banks of issue, and did not bar corporations which restricted themselves to deposit banking."

अधिकार न होने के कारण नये संयुक्त पूँजी वाले बैंको को अधिकोषण के निक्षेप पक्ष (deposit side) पर आश्रित होना पडा और चैकों (cheques) का उपयोग करने के लिए अपने ग्राहकों को प्रोत्साहन दिया। कहना न होगा कि तदुपरान्त यह प्रणाली लोकप्रिय और अधिकोषण की प्रमुख विशेषता हो गई है।

सन् १८४४ के पूर्व इंगलैंड मे बैंकिंग सगठन के अनेक दोष थे, निजी बैंक दुर्बल थे और बैंक ऑव इंगलैण्ड के नोट निर्गमन का प्रबन्ध भी दोषपूर्ण था। परन्तु यह कहा जा सकता है कि प्रयोगात्मक ढग पर जो कुछ कानूनी उपाय अपनाये गए थे उनका इसी दृष्टि से महत्व था। अधिकोषण सम्बन्धी कानून (legislation) में दो बातें स्पष्ट होगी : पहली तो यह कि सयुक्त पूँजी अधिकोषण मे बैंक ऑव इंगलैण्ड का एकाधिकार धीरे धीरे समाप्त किया गया; और नोट निर्गमन के ऊपर प्रतिबन्ध बढ़ता गया—यह अधिकोषण व्यवसाय की सुदृढ़ प्रणाली के लिए उतना ही आवश्यक था जितना कि जनता की सुरक्षा की दृष्टि से।

सन् १८४४ का बैंक चार्टर एक्ट आग्ल अधिकोषण पद्धति के इतिहास मे प्रगति का नया अध्याय खोलता है। इस अधिनियम का प्रमुख उद्देश्य नोट-निर्गमन पद्धति को सुदृढ़ बनाना था। इस एक्ट के द्वारा बैंक ऑव इंगलैण्ड को दो विभागो मे बाँट दिया गया :

(१) निर्गमन विभाग (Issue Department), और

(२) अधिकोषण विभाग (Banking Department)।

निर्गमन विभाग को प्रतिभूतियो की आड मे १४० लाख पौण्ड (चौदह मिलियन पौण्ड) तक के नोट निर्गमित करने की आज्ञा प्रदान की गई, इससे अधिक मूल्य के नोटो का निर्गम करने के लिए शत प्रतिशत स्वर्ण कोष रखना आवश्यक कर दिया गया। उस समय के वर्तमान बैंकों को सीमित राशियो तक नोट निर्गम के अधिकार दिये गये परन्तु लन्दन मे कोई अन्य बैंक नोट-निर्गमन नही कर सकता था। लन्दन के बाहर स्थित जिन बैंको को नोट निर्गमित करने के अधिकार दिए उन पर कई प्रतिबन्ध लगाये गए। उदाहरणार्थ, वे बैंक किसी अन्य बैंक के साथ सम्मेलन करें, अथवा लन्दन मे ऑफिस खोलें, अथवा कुछ दिनो के लिए नोट निर्गमन स्थगित करें इत्यादि, तो उनसे निर्गमन का अधिकार छीन लिया जायगा। बैंक ऑव इंगलैण्ड के अतिरिक्त अन्य बैंकों को नोट निर्गम का कुल अधिकार लगभग ८६ लाख पौण्ड मूल्य तक था और यह

व्यवस्था की गई थी कि यदि कोई बैंक किसी कारण से अपना नोट निर्गमन का अधिकार खो बैठे तो बैंक ऑव इंगलैण्ड अपना विश्वासाश्रित नोट निर्गम उसके दो तिहाई मूल्य तक बढा सकता था।[1] सन् १८४४ के एक्ट ने व्यवस्था की कि कोई नया बैंक नोट निर्गम नही कर सकता था। उद्देश्य यह था कि नोट-निर्गमन का अधिकार धीरे धीरे अन्य बैंको से छिन जाये और चैंको (cheques) का उपयोग बढे। नोट-निर्गमन की सीमा निर्धारित करदी गई थी। बैंक ऑव इंगलैण्ड के निर्गमन विभाग से निश्चित दशाओं के अनुसार कोई भी व्यक्ति नोटो के बदले स्वर्ण अथवा स्वर्ण के बदले नोट माँग सकता था। उसके लिए यह भी आवश्यक कर दिया गया कि प्रति सप्ताह एक विवरण प्रकाशित किया जाये जिसमे प्रचलन मे नोटो का मूल्य तथा स्वर्ण कोषो का ब्यौरा दिया जाये।

सन् १८४४ के एक्ट से यह आशा की गई थी कि भविष्य मे वित्तीय संकट नही आयेंगे परन्तु यह धारणा गलत सिद्ध हुई। सन् १८४७, १८५७ और १८६६ मे गभीर संकट (crisis) आये। तत्पश्चात् जो सुधार हुआ वह कानूनी उपाय के कारण नही बल्कि अधिकोषण व्यापार मे अनुभव तथा सगठन की सुदृढता के कारण हुआ। सन् १८६६ के बाद कोई संकट (सन् १६१४ तक) नही आया इसका मुख्य कारण यह था कि बैंक आव इगलैंड के प्रबन्ध मे बहुत सुधार हुआ था।

आधुनिक काल

बैंक आव इंगलेंड :

सन् १८४४ के अधिनियम ने यह कल्पना नही की थी कि बैंक ऑव इंगलैण्ड केन्द्रीय बैंक (central bank) हो जायेगा। यह पहले ही बताया जा चुका है कि बैंक ऑव इगलैण्ड प्रारम्भ मे नई बैंको से शत्रुता का सा भाव रखता था। परन्तु नई बैंको ने विकास की दृष्टि से स्थिति के अनुकूल चलने का उपाय अपनाया। लन्दन राजधानी और वित्तीय सेवाओं का केन्द्र था। १३० वर्षों तक सयुक्त पूँजी अधिकोषण मे एकाधिकार रहने के कारण लन्दन के मुद्रा बाजार मे बैंक ऑव इ गलैण्ड की केन्द्रीय स्थिति हो गई थी। कटुता रहने

---

१. विश्वासाश्रित निर्गम (fiduciary issue) के लिए आड मे स्वर्ण नही रखना पडता, प्रतिभूतियाँ रखकर नोट निर्गमन किया जाता है।

पर भी व्यवहार मे निजी बैंक उसके प्रति झुके। वे अपने कोष जमाओं के रूप मे बैंक ऑव इंगलैण्ड मे रखते थे। उन्हें कठिनाई के समय उसी का सहारा लेना पड़ता था। सन् १८४४ के अधिनियम के द्वारा बैंक ऑव इंगलैण्ड के नोट निर्गमन सम्बन्धी अधिकारों से उसकी स्थिति और भी सुदृढ हुई। परिणामतः, बैंक ऑव इगलैण्ड बैंको का बैंक बन गया। सन् १७५१ से ही राष्ट्रीय ऋण (National debt) का पूर्ण प्रबन्ध उसे सौंपा जा चुका था। वित्तीय नीति के मामलो मे वह ब्रिटिश सरकार को सलाहकारी सेवाएँ प्रदान करता है। बैंकों के कोष बैंक ऑव इंगलैण्ड मे जमा रहने के कारण आंग्ल वित्तीय प्रणाली मे स्थायित्व आया है। सन् १९२८ मे बैंक ऑव इंगलैण्ड को नोट-निर्गम संबंधी और भी अधिकार दिया गया।

सन् १९३१ मे वित्तीय सकट आया और स्वर्णमान का परित्याग कर दिया गया। सन् १९३२ मे विनिमय समता कोष (Exchange Equalisation Fund) की स्थापना की गई जिसका उद्देश्य स्टर्लिंग के उच्चावचनों को रोकना था। सितम्बर १९३९ मे युद्ध छिड़ने के समय बैंक ऑव इंगलैण्ड का लगभग समस्त स्वर्ण कोष विनिमय समता कोष को स्थानान्तरित कर दिया गया तथा नोट निर्गम की विश्वासाश्रित सीमा बढ़ती गई। बैंक ऑव इंगलैण्ड और ट्रेजरी के सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ हो चुके थे। सन् १९४६ मे बैंक ऑव इंगलैंड एक्ट के द्वारा उसका राष्ट्रीयकरण कर लिया गया, वह राजकीय संस्था हो गई। व्यवहार मे वह पहले ही इस रूप मे प्रतिष्ठित था अतः कोई परिवर्तन हुआ प्रतीत नही हुआ।

व्यापारिक बैंक (Commercial Banks)

यह पहले बताया जा चुका है कि बैंक ऑव इगलैण्ड दीर्घकाल तक व्यापारिक बैंक की भांति कार्य करता रहा और उसने अन्य बैंको से स्पर्द्धा रखी परन्तु कालान्तर मे वह केन्द्रीय बैंक बन गई।

सन् १८३४ के पूर्व सीमित दायित्व (limited liability) का सिद्धान्त व्यवहार में नही आया था और बैंको के हिस्सेदार (शेयर होल्डर) फर्म के साझेदारो की तरह थे जिनका दायित्व असीमित होता था। सीमित दायित्व के सिद्धान्त को कानूनी मान्यता सन् १८५५ मे मिली और अधिकोषण मे इस सिद्धान्त का व्यवहार सन् १८५८ मे आरंभ हुआ। नई संयुक्त पूँजी वाली सीमित दायित्व की बैंकिंग कम्पनियां स्थापित हुईं और पुरानी बैंकों में से अधिकांश या तो सीमित दायित्व वाली बैंकिंग कम्पनियों मे मिल गईं अथवा

उन्होने रूप बदल लिया। जो पुरानी निजी बैंकें बची वे प्रायः सीमित दायित्व वाली नई बड़ी बड़ी कम्पनियो की स्पर्द्धा में न ठहर सकी और समाप्त हो गई। छोटी छोटी बैंको ने समामेलन द्वारा बडो का रूप ग्रहण किया।

आधुनिक व्यापारिक बंको की विशेषताएँ—

ग्रेट ब्रिटेन की वर्तमान अधिकोषण प्रणाली मे व्यापारिक बैंको की निम्न लिखित मुख्य विशेषताए दृष्टव्य है :—

(१) ग्रेट ब्रिटेन का अधिकोषण व्यापार करने वाली अधिकांश बैंके सीमित दायित्व वाली कम्पनियाँ है जो सीमित दायित्व वाली कम्पनियो से संबंधित कानून के अंतर्गत आती है।

(२) देश का अधिकाश अधिकोषण व्यापार बैंक ऑव इगलैण्ड के अतिरिक्त पाँच बडी संस्थाओ लॉयड्स, बार्क्लेज, मिडलैण्ड, वैस्टमिनिस्टर और नेशनल प्रॉविन्शियल के द्वारा सचालित होता है। ये पाँच बडी बैंकें छोटी बैंको के समामेलन से बनी है। विलियम्स डीकन्स बैंक अन्य महत्वपूर्ण बंको मे से एक है।

(३) अपेक्षाकृत थोड़ी सी बैंको की शाखाएँ बहुत अधिक हैं। सन् १९५८ मे ब्रिटिश बैंकर्स एसोसिएशन के यू० के० के कुल सदस्यो की सख्या २९ थी जिनकी १२,५०० शाखाएँ थी और कुल संपत्ति (assets) आठ अरब पौण्ड (£ 8000 millions) से भी अधिक थी।[1] अधिक शाखाओ वाली इन बड़ी बैंको मे संकट का सामना करने की सामर्थ्य है और प्रारभिक काल की छोटी बैंको से निश्चय ही अधिक स्थिरता है।

(४) ग्रेट ब्रिटेन मे प्रत्येक चैंक (Cheque) पर २ पेंस स्टाम्प ड्यूटी देनी पड़ती है तो भी चैंकों का उपयोग बहुत अधिक किया जाता है।[2]

(५) समाशोधन गृह का विकास ब्रिटिश अधिकोषण प्रणाली का प्रमुख अग है। इसका प्रारम्भ १८वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध भाग मे हुआ। उस समय विभिन्न बंको के क्लर्क चेन्ज ऐले मे चेको का विनिमय करने के लिए मिला करते थे, केवल बाकी (balances) का भुगतान स्वर्ण मे होता था।

---

1. Britain : An Official Handbook, 1959, p. 417.

2. The average daily value of cheques, drafts, bills and bankers' effects cleared in 1957 through the London and Provincial Clearing Houses was £ 562 millions ; and many cheques do not, for various reasons, pass through Clearing Houses. —Britain, 1959, p. 417

सन् १७७५ मे समाशोधन कार्य (Clearing Business) के लिए एक कमरा किराये पर लिया गया। उन्नीसवीं शताब्दी में समाशोधन गृह महत्वपूर्ण एवं आवश्यक हो गया। अब समाशोधन गृह के सदस्य बैंक पाँच बड़े बैंकों के अतिरिक्त मार्टिन्स, कूट्स, ग्लिन मिल्स (Glyn Mills), नेशनल, डिस्ट्रिक्ट तथा विलियम डीक्न्स हैं। अन्य बैंकों को इन्ही मे से किसी बैंक की मारफत काम कराना पड़ता है। समाशोधन का कार्य लन्दन तथा बड़े बड़े नगरो में होता है।[1]

(६) यूनाइटेड किंगडम के मुख्य बैंक अपनी कुल जमाओं (deposits) के लगभग ८ प्रतिशत नकद कोष रखते हैं।

(७) स्कॉटलैण्ड तथा उत्तरी आयरलैण्ड के कुछ बैंकों को अभी तक नोट निर्गम के सीमित अधिकार मिले हुए हैं।

ऐसी अनेक बैंको के दफ्तर लन्दन मे हैं जो राष्ट्रकुल (Commonwealth) के देशो तथा अन्य देशो मे ही मुख्यतया कार्य करती हैं। इनके अतिरिक्त सेविंग्स बैंको तथा सहकारी बैंको, इत्यादि का स्थान भी महत्वपूर्ण है।

राजस्व

ग्रट ब्रिटेन के आर्थिक विकास के अध्ययन मे राजस्व के विकास का वर्णन बेतुका सा प्रतीत होता है परन्तु वास्तव में ऐसा है नही। पुराने जमाने मे ब्रिटेन में इस प्रकार के विचार प्रचलित थे कि सरकार का व्यय कम से कम होना चाहिए और जनता से कर वसूल करने मे व्यक्तिगत निजी जीवन मे न्यूनतम हस्तक्षेप होना चाहिये। परिस्थितियो के अनुसार नीति मे परिवर्तन होता रहा (जिसका उल्लेख पिछले अध्याय मे तथा अन्यत्र यथास्थान किया गया है) और प्रशासन व्यय बढ़ते गये। महत्वपूर्ण बात यह नही है कि राजस्व का आकार बढा है बल्कि यह है कि राजकीय आय और व्यय के व्यापक आर्थिक प्रभावो की दृष्टि से औचित्य का विचार रखकर उनके भिन्न भिन्न साधनो (sources) तथा मदो (items) को महत्व दिया गया। कहना न होगा कि सामाजिक सुरक्षा तथा जन-स्वास्थ्य की दृष्टि से ही नही अपितु उद्योग तथा

1. Southgate, op. cit., p. 305. Clearing business in London is now organised in two sections. The Town Clearing concerns only banks within a short distance of the Clearing Houses. The General Clearing deals with cheques from anywhere in England and Wales outside the Town clearing area. Provincial clearings take place in large towns to deal with local business.

व्यापार के विकास और नियमन की दिशा मे भी राजस्व का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है।

सत्रहवी शताब्दी मे सम्राट् की आय के परम्परागत साधन अपर्याप्त हो चले थे।[१] सन् १६८८ ८६ की क्रान्ति राजनीतिक इतिहास मे प्रसिद्ध है जिमके उपरान्त देश की सर्वोच्च सत्ता पालियामेण्ट हो गई। सम्राट् और राजाज्ञा के ऊपर पालियामेट एवं कानून को जीत का राजस्व पर अत्यधिक प्रभाव पडा। स्टुअर्ट काल से वैधानिक संघर्ष सन् १६८६ के अधिकार पत्र (Bill of Rights) द्वारा समाप्त हो गये थे। इसके पश्चात् राजकीय आय को मनमाने ढंग से व्यय करने का सम्राट् का अधिकार नही रहा और हाउस ऑव कॉमन्स (House of Commons) ने व्यय के नियन्त्रण की आधुनिक प्रणाली का विकास किया। करारोपण के सम्बन्ध मे हाउस ऑव कॉमन्स का नियन्त्रण सत्रहवी शताब्दी मे ही प्रभावपूर्ण होगया था परन्तु व्यय के सम्बन्ध मे नियन्त्रण उन्नीसवी शताब्दी मे ही प्रभावपूर्ण हो सका।

१८ वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे सर रॉवर्ट वालपोल ने राजस्व संबंधी अनेक सुधार किये। उसने अनुभव किया था कि देश का अभ्युदय तथा व्यापार और वाणिज्य का विकास सैकडों वस्तुओ के आयात और निर्यात पर कर लगाकर नही, बल्कि उनमे कमी करके किया जा सकता था। सन् १७५६ में सप्त वर्षीय युद्ध आरंभ हुआ जिसके अन्त मे वालपोल के सुधार सबंधी विचारो को भुला दिया गया। सन् १७५६ मे राष्ट्रीय ऋण ७२० लाख पौण्ड था, १७६३ मे बढ़कर १६०० लाख पौण्ड हो गया।

सन् १७७६ मे एडम स्मिथ का ग्रन्थ "वैल्थ ऑव नेशन्स" प्रकाशित हुआ जिसके प्रभातस्वरूप पिट ने (१७८३-१७६२ के शाति काल मे) अपने प्रारभिक प्रशासन काल मे कर प्रणाली में महत्वपूर्ण सुधार किये, ड्यूटी की दरें घटाई, सरलता लाई गई। इस काल मे राष्ट्रीय ऋण घटा। सन् १७६२ के पश्चात् फ्रेंच युद्ध के कारण व्यय में वृद्धि हुई और राष्ट्रीय ऋण बढा। सन् १७६७ तक करो में कोई गंभीर परिवर्तन नही हुआ (मेरेडिथ के शब्दों में,

---

१. सोलहवी शताब्दी तक राजकीय आय का मुख्य साधन भूमि और सम्राट् की निजी सम्पत्ति थी, कुछ वस्तुओ और कुछ प्रकार के विदेशी व्यापार पर कर लगाये गए थे तथा जुर्मानो, उपहारो एव ऋणों इत्यादि का महत्व था। युद्धों पर होने वाले व्यय की पूर्ति के लिए आय के पर्याप्त साधनो की आवश्यकता अनुभव की गई।

लगता है पिट ने युद्ध को कम महत्व दिया)। परन्तु सन् १७९७ से करों में बहुत वृद्धि की गई। करारोपण की दिशा में नये प्रयोग किये गये। आयकर आरोपित किया गया, जो आगे राजस्व का महत्वपूर्ण अंग बन गया।[1] उसने ऋण बहुत लिए जिसकी भारी आलोचना हुई।

सन् १८१५ में शान्ति लौटने पर सन् १८१६ में आयकर (income tax) समाप्त कर दिया गया। कुछ लोगों ने इसकी आलोचना की। उनका कहना था कि जब तक ऋण घटकर युद्ध पूर्व स्तर पर नहीं आजाता आयकर चालू रहने चाहिए थे परन्तु अधिक लोग आयकर समाप्त करने के पक्ष में ही थे। आयकर समाप्त होने के कारण सरकारी आय की कमी परोक्ष करों में वृद्धि करके पूरी की गई जिसका निर्धन वर्ग पर बुरा प्रभाव पड़ा।

सन् १८२३ में हस्किसन व्यापार मण्डल (Board of Trade) के अध्यक्ष पद पर नियुक्त हुआ। उसने अपने कार्यकाल में (१८२३-२७) कर नीति में जो परिवर्तन किये वे स्वतंत्र व्यापार आन्दोलन का आरम्भ कहे जा सकते हैं (यद्यपि प्रधान मंत्री पिट अपने शान्तिकालीन प्रशासन में इसकी शुरुआत कर चुका था) हस्किसन ने निर्यातों के ऊपर दी जाने वाली आर्थिक सहायता (bounties) समाप्त कर दी और अनेक वस्तुओं के ऊपर ड्यूटी की दरें कम कर दी। आन्तरिक करों में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया गया।

सन् १८४१ में जब पील प्रधान मंत्री बना तो उसने समूची राजस्व प्रणाली में सुधार किये। उसने ऐसी अधिकतर वस्तुओं पर से आयात कर हटा दिया जो कच्चे माल की श्रेणी में आती थीं; निर्मित और अर्द्ध-निर्मित वस्तुओं की आधी से भी अधिक संख्या पर आयात कर घटा दिए; अनेक निर्मित वस्तुओं पर से कर समाप्त कर दिये, और इन सबसे होने वाली आय की कमी की आंशिक पूर्ति के लिए उसने कुछ वर्षों के लिए आय-कर लगाने का प्रस्ताव रखा। पील का विचार था कि आयात और निर्यात पर कर कम कर देने से व्यापार में जो वृद्धि होगी उससे करों में की जाने वाली कमी पूरी हो जाएगी परन्तु कुछ वर्षों तक आय में कमी होना निश्चित था, इसलिए आयकर लगाया गया। परन्तु बाद में आयकर हटाया नहीं, आगे के

---

1. "It is doubtful whether Peel could have levied an income-tax in time of peace if Pitt had not previously done so in time of war." —Meredith, op. cit., p. 325.

लिये बढ़ा दिया और उसके बजाय निर्यात कर तथा कच्चे माल पर आयात कर समाप्त कर दिए गये। सन् १८४६ मे रसेल (Russel) प्रधान मंत्री हुआ। उसने अपने कार्यकाल में उपनिवेशो से तथा अन्य देशो से आयात होने वाली चीनी पर लगे आयात करो के अंतर को समाप्त करके समान स्तर पर ला दिया।[1] सन् १८५३ में लॉर्ड एबरडीन के मंत्रिमंडल मे ग्लेड्स्टन वित्तमंत्री बना। उसने अनेक आयातकर समाप्त कर दिए और अनेक कम कर दिए, मृत्यु कर (legacy duties) का महत्व उसने बढ़ा दिया। उसने आयकर मे शनै. शनै. कमी करके अततोगत्वा उसे समाप्त करने की योजना बनाई थी परन्तु बीच मे प्रतिकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाने के कारण यह संभव नही हो सका।[2] सन् १८५५ में सर जार्ज ल्यूइस वित्त-मंत्री बना। उसने आयकर तथा कुछ आयात करो मे वृद्धि की; राष्ट्रीय ऋण मे भी वृद्धि हुई। सन् १८६० मे ग्लेड्स्टन दुबारा वित्तमंत्री बना[3] और उसने सभी प्रकार के करो का संरक्षणात्मक स्वभाव समाप्त करके स्वतंत्र व्यापार की स्थापना की, सरकारी आय की दृष्टि से कुछ कर रहने दिये। सन् १८६० से १८७५ तक राजस्व संबंधी नीति मे कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नही हुआ।

सन् १८९४ मे हरकोर्ट (Harcourt) ने मृत्यु कर को दरें बढ़ा दी। सन् १९०७ के बजट मे आयकर को सरकारी आय का सामान्य तरीका मान लिया, अर्जित और अनुपार्जित (earned and unearned) आयो में अन्तर किया गया तथा अनुपार्जित आय पर कर की दर अधिक रखी गई। सन् १९१४ मे करो मे विशेषकर आय कर मे बहुत वृद्धि कर दी गई। सुपर टैक्स भी लगाया गया। युद्धकाल मे अतिरिक्त लाभ कर (excess profits tax) भी लगाये गये और ऋण मे बहुत वृद्धि हुई। सन् १९२९-३२ के मंदी काल

---

१. उस समय उपनिवेशो से आने वाली चीनी पर कर १४ शिलिंग प्रति हंड्रेडवेट था, जब कि अन्य देशो से आने वाली चीनी पर कर की दर बहुत अधिक थी। रसेल ने पहले उसे घटाकर २१ शि० और पाँच वर्ष बाद १४ शि० प्रति हंड्रेडवेट कर दिया।

२. प्रतिकूल परिस्थितियाँ ये थी: क्रिमियन युद्ध (१८५४) भारतीय राजनीतिक क्रान्ति (१८५७) चीन और फारस के युद्ध तथा फ्रान्स के साथ युद्ध की आशंका (१८५६)।

३. इस बार ग्लेड्स्टन पामरस्टन के मंत्रिमण्डल मे वित्तमंत्री बना था।

में स्थिति इस प्रकार की हो गई थी कि ऋणों की अदायगी स्थगित करनी पड़ी। द्वितीय महायुद्ध काल मे राजकीय व्यय बहुत बढ़ा, अतः आयकर मे भी वृद्धि की गई। द्वितीय विश्व युद्ध काल के ब्रिटेन मे राष्ट्रीय बचन योजना को बहुत महत्व दिया गया है।

सरकारी आय-व्यय

यूनाइटेड किंगडम के सरकारी आय-व्यय के मुख्य पदों की जानकारी अगले पृष्ठ पर दिए हुए बजट मे प्राप्त को जा सकती है।

प्रश्न

1. What were the reasons which led to the suspension of cash payment in England in 1797 ?

2. Review critically the growth of the English Banking system from the establishment of the Bank of England in 1694 upto passing of the Bank Charter Act of 1844 What were the immediate repercussions of this peace of legislation ?

3. Give a brief account of the developments in British banking system since the middle of the 18th century.

4. What were the main features of finance in Great Britain in 18th century Describe the later developments

United Kingdom Budget
1957-58 out-turn and 1958-59 Estimates[1]
(after 1958-59 Budget changes)
£ million

Above the Line

Revenue	1957-58 out-turn	1958-59 Estimate	Expenditure	1957-58 out-turn	1958-59 Estimate
Inland Revenue[2]	2,855	2,970	Interest on Debt	663	695
Customs and Excise	2,150	2,189	Sinking Funds	37	38
Motor duties	101	104	Northern Ireland	72	73
			Miscellaneous	10	10
Total Tax Revenue	5,106	5,263	Total consolidated Fund Service	782	816
Post office (net receipt)	8	2	Supply Defence (net)	1,430	1,418
Broadcast licences	31	34	Civil (including		
Sundry loans	32	30	cost of tax		
Miscellaneous	166	110	collection	2,708	2,841
			Total supply	4,138	4,259
Total Revenue	5,343	5,439	Total Expenditure	4,920	5,075
			Surplus	423	364
	5,343	5,439		5,343	5,439

1. Britain : An Official Handbook, 1959, p 413.
2. Inland Revenue includes Income Tax, Surtax, Profits Tax, Estate Duty, etc.

Below the Line

Receipts			Payments		
Interest outside Budget	169	205	Interest outside Budget	169	205
Local Authorities Repayments	47	52	Post-war credits	18	18
Nationalised Industries (other than National Coal Board) Repayments	13	29	War Damage	22	20
Other items	32	37	Loans to Local Authorities	92	65
			Loans for New Towns Development	29	31
			Post Office Capital expenditure	79	38
			Overseas Resources Colonial Development	3	12
			Nation Coal Board capital expenditure (net)	81	76
			Loans to other nationalized industries	295	370
			Transport (Railway Finances) loans	66	61
			Other items	42	27
Total Receipts	261	323			
Net sum borrowed or net from surplus	635	600	Total Payments	896	923
	896	923		896	923
Total Receipts	5,604	5,762		5,816	5,998

अध्याय ११

ब्रिटिश अर्थ-व्यवस्था पर विश्व-युद्धों का प्रभाव तथा द्वितीय विश्व-युद्धोत्तरकालीन आर्थिक समस्याएँ

[प्रथम महायुद्ध के प्रभाव, द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रभाव, युद्धोत्तर-कालीन आर्थिक समस्याएँ, प्रश्न ।]

पिछले अध्यायो मे ब्रिटेन के आर्थिक विकास के विभिन्न पहलुओ, जैसे कृषि उद्योग व्यापार और यातायात पर विचार करते हुए युद्धो का प्रभाव प्रसंगानुकूल बताया जा चुका है। सन् १९१४ के पूर्व ग्रेट ब्रिटेन औद्योगिक उन्नति के उच्चतम शिखर पर पहुँच चुका था, प्रथम महायुद्ध (१९१४-१८) ने उसकी आर्थिक स्थिति को जो क्षति पहुँचाई वह द्वितीय विश्व-युद्ध तक ठीक भी नही हो पाई थी कि उसे दूसरे विश्व युद्ध की कठिन अग्नि परीक्षा मे होकर निकलना पडा। निश्चय ही ब्रिटेन ने परिस्थितियो के अनुकूल नीति अपना कर आर्थिक गठन, साहस और प्रशासन-कुशलता का परिचय दिया परन्तु यह प्रकट सत्य है कि द्वितीय विश्व-युद्ध ने ब्रिटेन की आर्थिक स्थिति को जो आघात पहुँचाया और संसार मे जो नई परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई उनमे लगता है कि ब्रिटेन के लिए पूर्वकालीन अभ्युदय प्राप्त करना असभव नही तो दुष्कर अवश्य है। इस अध्याय मे प्रथम और द्वितीय विश्व युद्धो के प्रभावो तथा द्वितीय विश्व युद्धोत्तरकालीन आर्थिक समस्याओ पर संक्षेप मे विचार किया जायगा।

प्रथम महायुद्ध के प्रभाव

प्रथम महायुद्ध का ब्रिटेन की अर्थव्यवस्था पर व्यापक प्रभाव पड़ा था। इन प्रभावो का अध्ययन मोटे तौर पर सुविधा की दृष्टि से इन शीर्षकों के अतर्गत किया जा सकता है. (१) व्यापार का प्रभाव, (२) कृषि पर प्रभाव (३) उद्योगो पर प्रभाव तथा (४) अन्य क्षेत्रो मे प्रभाव (राजनीतिक, मुद्रा संबन्धी , पूँजी विनियोग, यातायात, बैंकिंग, इत्यादि पर प्रभाव)।

व्यापार— सन् १९१४ तक ब्रिटेन के निर्यात उत्तरोत्तर बढ़े थे परन्तु युद्ध छिड़ने के उपरान्त उन्हे बढ़ाना तो दूर रहा उनको चालू रखना कठिन हो गया

क्योकि उत्पादन के साधनो जहाजो, शक्ति इत्यादि को युद्ध की दिशा मे लगा देना पड़ा । युद्ध काल मे ब्रिटिश वस्तुओं की पूर्ति न होने के कारण ग्राहक देशो ने अपने उद्योग स्थापित और विकसित कर लिये । सन् १६१३ मे ब्रिटिश निर्यातो का मूल्य लगभग ५२२½ करोड पौण्ड था, सन् १६१८ मे घटकर ५० करोड पौण्ड के लगभग रह गया जब कि कीमतो में १२६ प्रतिशत वृद्धि हुई थी। मुख्यतया सूती वस्त्र, कोयले तथा लौह-इस्पात के निर्यात मे भारी कमी हुई। युद्धोपरान्त समृद्धि काल (Boom) आया तो सन् १६२० मे ब्रिटिश निर्यातो का मूल्य १३३ ०० करोड पौण्ड हो गया, परन्तु शीघ्र ही मन्दी न आ घेरा और सन् १६२१ मे ही निर्यात घट कर ७० करोड़ पौण्ड मूल्य के रह गये ।

कृषि—जहाजो की कमी के कारण कृषि-पदार्थों का आयात बहुत कम हो जाने के कारण युद्ध काल (१६१४-१८) म खाद्यान्नो के मामले मे स्वावलम्बो होने के लिए द्रुत गति कृषि का विकास करने के सिवाय ब्रिटेन के सम्मुख और कोई उपाय नही रह गया । परती जमीनो और चरागाहों मे भी अन्न उगाया जाने लगा तथापि कृषि श्रमिको की कमी के कारण कई प्रकार की फसलो के क्षेत्रफल मे कमी हुई । खाद्याभाव के कारण देश में नियन्त्रण और राशनिंग की व्यवस्था करनी पडी । कृषि द्वारा अन्न की उपज बढ़ाने की दृष्टि से खाद्य-उत्पादन विभाग की स्थापना की गई । कुछ आटे के मिलों पर सरकारी अधिकार कर लिया गया । सन् १६१७ मे अन्न उत्पादन कानून के द्वारा वस्तुओ का न्यूनतम मूल्य तथा श्रमिको की न्यूनतम मजदूरियाँ निर्धारित कर दी गई । परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन बढा । तीस लाख एकड़ भूमि नये सिरे से कृषियोग्य बनाई गई । सन् १६१४ की अपेक्षा १६१८ मे चालीस लाख टन अधिक खाद्यान्नो का उत्पादन हुआ । युद्धोपरान्त भी कृषि की उन्नति के लिए प्रयत्न जारी रखे गये परन्तु सन् १६२० के पश्चात् सरकारी नियत्रण और न्यूनतम मूल्य की नीति का परित्याग कर दिया गया ।[१]

उद्योग— उद्योगो पर सामन्यतया युद्ध का यह प्रभाव पडा कि श्रम और पूँजी तथा अन्य साधनो के युद्ध संबधी उद्योगो मे लग जाने के कारण औद्योगिक उत्पादन घटा । यातायान की कठिनाइयाँ तथा विदेशी व्यापार मे कमी हो जाने का भी उद्योगो पर कुप्रभाव पडा क्योकि एक ओर कई उद्योगो के लिए पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल नही मिल सका और दूसरे निर्मित माल को निर्यात करना कठिन हो गया था ।

---

१. इस पुस्तक का अध्याय ५ भी देखिए ।

युद्धकाल में सूती वस्त्र का उत्पादन बहुत घटा क्योकि कपास और जहाजी यातायात की भारी कमी हो गई थी। युद्धकाल मे बारीक कपडे का अधिक उत्पादन किया गया। युद्धोपरान्त पूर्वी देशो की बढ़ी हुई माँग को पूरा करने के कारण ब्रिटिश सूती उद्योग को अधिक लाभ हुए परन्तु सन् १९२० के बाद फिर पतन होने लगा। सन् १९२४ मे सन् १९१२ की अपेक्षा सूत का उत्पादन ३० प्रतिशत और कपडे का उत्पादन ३३ प्रतिशत घटा। युद्धकाल मे कपडे पर नियन्त्रण और राशनिंग लागू किये गये थे।

कोयला उद्योग पर भी युद्ध का गहरा प्रभाव पडा। श्रमिकों की कमी के कारण गहरी खानों की खुदाई बिल्कुल बन्द हो गई। निर्यात न हो सकने के कारण भी कोयला खान उद्योग को हानि पहुँची। प्रथम महायुद्ध काल मे **लोहा-इस्पात उद्योग** की उन्नति हुई। युद्ध काल मे इस्पात उद्योग के अशो (शेयरो) के मूल्यो, अशधारियो के लाभाशो तथा श्रमिको की मजदूरियो सभी मे वृद्धि हुई। सरकार ने इस्पात के मूल्यो पर नियन्त्रण रखा। युद्धोपरान्त इस्पात की माँग गिरी और उत्पादन भी घटा।

युद्ध का उद्योग के ढाँचे (Structure) तथा संगठन (Organisation) पर भी प्रभाव पडा: (क) संयोग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ तथा क्षैतिज (horizontal) और उदग्र (Vertical) दोनो प्रकार के संयोग (Combinations) व्यवहार मे आये।[१] स्पर्द्धा की हानियो से बचने के लिए युद्धोत्तर काल मे सम्मिलन (amalgamations) और मर्जर (merger) बहुत हुए। (ख) उत्पादन की तकनीकी मे महत्वपूर्ण सुधार किए गए, तथा (ग) उद्योगों को संरक्षण देने की नीति एवं साम्राज्यीय अधिमान नीति (Imperial preference policy) अपना कर युद्ध-पूर्व काल की आर्थिक समृद्धि पुनः प्राप्त करने का प्रयास किया गया।

व्यापार, कृषि तथा उद्योग के अतिरिक्त मुद्रा, बैंकिंग, रोजगार, विनियोग, यातायात एवं अन्य क्षेत्रो पर भी युद्ध का गम्भीर प्रभाव पडा। विदेशी विनिमय सम्बन्धी कठिनाइयाँ उत्पन्न हुई। युद्धोपरान्त राजनीतिक सीमाओं मे संशोधन, हर्जाने वसूल करने इत्यादि के सम्बन्ध की अनेक समस्याएँ उत्पन्न हुई। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि प्रथम महायुद्ध ने ब्रिटेन की अर्थ-व्यवस्था की उन्नति के चिकने और सरल मार्ग पर भारी विघ्न उपस्थित कर दिये।

---

१. इस पुस्तक के अध्याय ६ मे वाणिज्य क्रान्ति की विशेषताओं के अन्तर्गत देखिए।

उसने जो क्षति हुई उसे पूरा करना ब्रिटेन के लिए बहुत अधिक कठिन सिद्ध हुआ।

द्वितीय विश्व-युद्ध के प्रभाव

द्वितीय विश्व-युद्ध ने ब्रिटेन की अर्थ व्यवस्था को भारी क्षति पहुँचाई जिसे वह युद्धोपरान्त दस वर्षों में भी पूरा न सका। कृषि, उद्योगों तथा यातायात पर पड़ने वाले द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रभावों का उल्लेख इस पुस्तक के विभिन्न अध्यायों में यथास्थान किया जा चुका है।[1] द्वितीय विश्वयुद्ध के मुख्य कुप्रभाव निम्नलिखित पड़े :—

१. युद्ध के कारण ब्रिटेन को लगभग ३०० करोड पौण्ड के मूल्य की सपत्ति, जैसे, जहाजो, मकानो, सडको इत्यादि की हानि हुई।

२ **समुद्र पार संपत्ति की हानि (Loss of overseas assets) :—** विदेशों में लगे लगभग १०० करोड पौण्ड के विनियोगों को युद्ध सामग्री खरीदने के लिए बेचना पडा। इनमें लगभग ४३ करोड पौण्ड के विनियोग उत्तरी अमेरिका में लगे सम्मिलित हैं।

३. **नए विदेशी ऋण (New overseas debts) :—**लगभग ३०० करोड पौण्ड कीमत के नये विदेशी ऋण संचित हो गये [इनमे भारतवर्ष के पौण्ड पावने (Sterling balances) भी सम्मिलित हैं]।

४. **व्यापार की शर्तें (Terms of trade)—**आयात होने वाले कच्चे-माल की कीमतें युद्धोपरान्त तेजी से बढ़ी और सन् १९४८ में १९३८ की तुलना में उतने ही माल का आयात करने के लिए २० प्रतिशत अधिक माल (goods) निर्यात करने पडे।

५. **निर्यातों में कमी (Reduced exports):—** युद्ध के कारण निर्यात होने वाले माल की मात्रा (volume) घटी। सन् १९४४ में १९३८ की अपेक्षा एक-तिहाई से भी कम निर्यात (मात्रा में) हुए थे।

६. **कोषों में कमी (Smaller reserves) :—**युद्ध-पूर्व काल की तुलना में स्वर्ण और डालर कोषों के मूल्य आधे के लगभग रह गए।

७. **डालर-संकट (Dollar shortage) :—**युद्ध में हुई बर्बादियों के कारण ब्रिटेन तथा अन्य स्टर्लिंग क्षेत्रों (और अन्य कई देशों को भी) उत्तरी अमेरिका में काफी अधिक मात्रा में वस्तुएँ खरीदनी पड़ी। इनका

---

१. कृषि के लिए अध्याय ५, उद्योगों के लिए अध्याय ४, और यातायात के लिए अध्याय ६ देखिए।

मूल्य चुकाने के लिए गैर-डालर देशों की डालर आयें (dollar earnings) बहुत कम थी।

युद्धोत्तरकालीन आर्थिक समस्याएँ

सन् १९३९ में युद्ध के प्रारम्भ के समय आग्ल उद्योग तथा अर्थ-व्यवस्था युद्ध के लिए तैयार न थे तथापि प्रथम महायुद्ध के अनुभवों के आधार पर अर्थ व्यवस्था के ढांचे में शीघ्र ही परिवर्तन करने का प्रयत्न किया गया। युद्ध में मित्र-राष्ट्रों की विजय के लिए पूरा ध्यान दिया गया। देश के घरेलू तथा विदेशी व्यापार, उद्योग-धन्धों, यातायात, कृषि वस्तुओं की कीमतों इत्यादि अनेक दिशाओं में सरकार ने नियन्त्रण की नीति अपनाई। युद्ध समाप्त होते ही ब्रिटेन के सम्मुख युद्ध-कालीन अर्थ व्यवस्था को शांति-कालीन अर्थ-व्यवस्था में बदलने की समस्या उपस्थित हुई।

युद्धोत्तरकालीन ब्रिटेन की मुख्य आर्थिक समस्याएँ निम्नलिखित थी—

(१) डालर की कमी की समस्या,
(२) भारत और मिस्र के पौण्ड-पावनों के निपटारे की समस्या,
(३) उद्योग-धन्धों के राष्ट्रीयकरण का प्रश्न,
(४) साम्राज्य और उपनिवेशों में कमी तथा व्यापार क्षेत्रों का सकुंचन,
(५) प्रतिरक्षा के लिए बढे हुए व्यय,
(६) पुनरुत्थान एवं विकास कार्य क्रम,
(७) विदेशी विनिमय की कठिनाइयाँ, डालर और स्वर्णकोषों का ह्रास,
(८) मुद्रा-स्फीति, खाद्याभाव तथा अन्य कठिनाइयाँ।

डालर संकट—युद्ध के द्वारा ब्रिटेन के कारखानों, मकानों, जहाजों इत्यादि का जो भारी विनाश हुआ उसके कारण ब्रिटेन के दृश्य और अदृश्य निर्यातों में भारी कमी हो गई। इसकी अपेक्षा ब्रिटेन को आयात अधिक मात्रा में करने पड़े। अपने आर्थिक पुनर्गठन के लिए ब्रिटेन को डालर क्षेत्रों से यन्त्रों, खाद्य सामग्री तथा कच्चे माल का आयात करना पडा परन्तु बदले में निर्यात करने के लिए सामान की कमी थी। ब्रिटेन का डालर संकट कई वर्षों तक चलता रहा। सन् १९४६ में ब्रिटेन ने संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार से पौने चार करोड़ डालर का ऋण लिया। इस ऋण के साथ दो दुर्भाग्यपूर्ण शर्तें जुड़ी थी। पहली, यह कि ब्रिटेन अमेरिका से अपनी खरीद (क्रय) में कमी नहीं करेगा और दूसरी, यह कि १५ जुलाई, १९४७ के उपरान्त ब्रिटेन विश्व के सभी देशों के हेतु डालर स्टर्लिंग विनिमय करेगा। आशा यह थी कि अमरीकी ऋण द्वारा ब्रिटेन की अर्थ-व्यवस्था पूर्णतया पुनः स्थापित हो सकेगी परन्तु वह राशि

शीघ्र ही समाप्त हो गई। स्टर्लिंग क्षेत्रो तथा राष्ट्र कुल (कॉमनवैल्थ) के डालर साधनो को एकत्रित किया गया तथापि वे न्यून पडे।

सन् १९४७ के वसन्त मे ब्रिटेन को संयुक्त राज्य अमेरिका से आयातो मे कमी करना नितान्त आवश्यक हो गया। इसी वर्ष १५ जुलाई ने दूसरी शर्त के पालन मे और भी अधिक कठिनाई हुई। अतः अगस्त १९४७ मे स्टर्लिंग का डालर विनिमय भी स्थगित करना पडा। ब्रिटेन ने संयुक्त राज्य अमेरिका की आयात-निर्यात बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व-बैंक से भी ऋण लिए। जुलाई १९४९ मे राष्ट्र कुल (कॉमनवैल्थ) के वित्त मन्त्रियो का सम्मेलन लन्दन मे बुलाया गया तथा महत्वपूर्ण निर्णय हुए। सन् १९४९ मे १८ सितम्बर को पौण्ड का अवमूल्यन किया गया (पौण्ड का मूल्य ४०३ डालर से घटाकर २८० किया गया था)। इसका उद्देश्य भी डालर सकट को परास्त करना था। मार्शल योजना (Marshall Aid Plan) के अन्तर्गत प्राप्त तथा कनाडा से प्राप्त ऋण मे भी ब्रिटेन को डालर सकट पार करने मे सहायता मिली तथापि सन् १९५८ के मध्यकाल मे ही ब्रिटेन की डालर स्थिति सतोषजनक हो सकी है।

पौण्ड पावनो के निपटारे की समस्या—युद्ध काल मे ब्रिटेन को युद्ध लडने के लिए भारत, मिश्र, इत्यादि देशो से ऋण लेने पडे जो पौण्ड पावनो (Sterling Balances) के रूप मे संचित होते गए थे। युद्ध समाप्त होने पर भारत और मिश्र ने यन्त्रो तथा अन्य पूँजीगत वस्तुओ इत्यादि को खरीदने के लिए पौण्ड पावनो की राशि को लेना चाहा परन्तु ब्रिटेन के लिए उन्हें एक-दम चुकाना सम्भव नही था। भारत सरकार ने यह भी चाहा था कि उसके पौण्ड पावनो का डालरो मे परिवर्तन हो जाए ताकि डालर क्षेत्रो से आवश्यक वस्तुओ, विशेषकर पूँजीगत वस्तुओ का आयात सम्भव हो सकता। ब्रिटेन और भारत के बीच बातचीत चलती रही और भारत अपने स्टर्लिंग ऋण को मनमाने ढग से वसूल नही कर सका। अगस्त १९४७, फरवरी १९४८ और जुलाई १९४८ मे भारत और ब्रिटेन के मध्य जो समझौते हुए थे उनके अनुसार भारत को क्रमश. ६५० लाख, १८० लाख और ८०० लाख पौण्ड की राशियाँ उपयोग करने के लिए प्राप्त हो सकी थी।

उद्योगो का राष्ट्रीयकरण—युद्ध-काल मे ब्रिटेन मे सन् १९३५ मे निर्वाचित संसद चलता रहने दिया था, चर्चिल के बाद सन् १९४५ के सामान्य निर्वाचनो के द्वारा एटली के नेतृत्व मे श्रम दली सरकार बनी। सन् १९४६ मे कोयला उद्योग राष्ट्रीयकरण स्वीकृत हुआ। सन् १९४७ मे बिजली उद्योग, सन् ४८ मे गैस उद्योग का राष्ट्रीयकरण किया गया। सन् १९४९ मे लोहा इस्पात विधान के अनुसार ब्रिटेन के अधिकांश लोहा-इस्पात के कारखानो को सरकारी अधिकार मे कर लिया गया और उनके प्रबन्ध के लिए सन् १९५१ मे एक लोहा इस्पात निगम की स्थापना की गई। परन्तु अक्टूबर १९५१ मे जब फिर चर्चिल सरकार बनी तो लोहा इस्पात उद्योग निजी पूँजीपतियो को दे दिया गया।

भारतवर्ष का स्वतन्त्र होना—युद्धोत्तर काल में सन् १९४७ में भारत को स्वतन्त्रता मिली। साम्राज्य और उपनिवेशो मे कमी होने के कारण ब्रिटेन के व्यापार क्षेत्रो में संकुचन हुआ। यो कहना अधिक ठीक होगा कि ब्रिटेन को कच्चा माल खरीदने और निर्मित माल बेचने के लिए बाजारो का युद्ध-पूर्व जैसा लाभ न रहा।

प्रतिरक्षा पर व्यय—ब्रिटेन ने युद्धोत्तर काल मे बजट मे प्रतिरक्षा (defence) पर अधिक व्यय किए हैं। इसके मुख्य कारण ये है, (क) पश्चिमी और पूर्वी राष्ट्रो मे, विशेषकर तीन बड़े पश्चिमी राष्ट्रो तथा सोवियत सघ के बीच शीत युद्ध चलते रहना तथा तृतीय विश्व युद्ध को संभावना; (ख) एशिया मे साम्यवादी लहर को दबाना। इन व्ययो के कारण, ब्रिटेन को आर्थिक पुनरुत्थान के लिए कम राशि मिल सकी।

पुनरुत्थान कार्य-क्रम—युद्ध से विनष्ट उद्योगो, जहाजो, मकानो, इत्यादि का फिर से निर्माण और पुनरुत्थान करने का ब्रिटेन के सम्मुख भारी कार्य था। इसके लिए ब्रिटेन को सयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, इत्यादि से अधिक सहायता मिली। ब्रिटेन ने युद्ध के पश्चात् कुछ ही वर्षों मे विकास कार्य-क्रम मे आशानुरूप सफलता प्राप्त की यद्यपि युद्ध-पूर्व काल की सी स्थिति तो नही प्राप्त हो सकी है।

अन्य कठिनाइयाँ—ब्रिटेन को युद्धोत्तर काल मे जिन अन्य कठिनाइयों का सामना करना पड़ा उनमे मुद्रा-स्फीति और खाद्याभाव मुख्य थी। विदेशी विनिमय की कठिनाइयो के कारण डालर तथा स्वर्ण कोषो का पतन हुआ।

प्रश्न

1. Describe and account for the changes in the structure and organization of British Industry after the war of 1914-18.

2. Discuss the effects of the Second World War on the British economy.

3. What were the main problems facing Great Britain in the post-war period? How did she overcome them?

विस्तृत अध्ययन के लिए पुस्तकों की नामावली

[BIBLIOGRAPHY]

1. **Allen :** British Industries and their Organisation.
2. **Ashley :** Economic Organisation of England.
3. **Ashley :** The Tariff Problem.
4. **Ashton, T. S. :** The Industrial Revolution (1760-1830).
5. **Ashworth, W. :** An Economic History of England.
6. **Bhir & Pradhan :** Modern Economic Development
7. **Briggs & Jordon :** An Economic History of England
8. **Burn, Duncan (Edited by) :** The Structure of British Industry, a symposium, Vol. I, 1958.
9. **Clapham, Sir John :** An Economic History of Modern Britain.
10. **Clapham, Sir John :** The Bank of England, A History.
11. **C. O. I, London :** Britain, an official handbook.
12. **Cole, G. D. H. :** British Social Services.
13. **Court, W. H. B. :** A Concise Economic History of Britain from 1750 to Recent Times.
14. **Crosland, C. A. R. :** Britain's Economic Problems.

15. **Cunningham, W.** : The Growth of English Industry and Commerce.
16. **Dubey, R.** : Economic Development of England
17. **Egerton** Short History of British Colonial Policy.
18. **Fay, C. R.** : Great Britain from Adam Smith to the Present Day.
19. **Flanders, Allan** : Trade Unions.
20. **Hadley** · Railroad Transportation.
21. **Hobhouse, L. T.** : The Labour Movement.
22. **H. M. S. O.** : British System of Taxation.
23. **H. M. S. O** : Everybody's Guide to National Insurance, 1958.
24. **Jackman** : Transportation in Modern England
25. **John Price** : British Trade Unions.
26. **Jones, G P. & Pool, A. G.** : A Hundred Years of Economic Development in Great Britain (1840-1940).
27. **Knowles** : Economic Development of *Great Britain during the* 19th century.
28. **Knowles** Industrial and Commercial Revolutions.
29. **Marsh, David C.** National Insurance and Assistance in Great Britain (Pitman).
30. **Meredith, H. O.** : Economic History of England (Pitman).
31. **Ogg & Sharp** : Economic Development of Modern Europe.
32. **Pigou, A. C.** : Economic Position of Great Britain.
33. **Panandikar, Dr. S. G.** : The Economic Development of Great Powers.

34. **Rees** :	Short Fiscal and Financial History of England 1815-1918).
35. **Ross** :	British Railways.
36 **Sarkar, D S.** :	Modern Economic Development of Great Powers.
37. **Srivastava, C. P.** :	Economic Development of England
38 **Southgate, G. W.** :	English Economic History.
39 **Webb** :	History of Trade Unionism.